जनवादी कवि नागार्जुनः चिन्तन और संवेदना

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की
पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबंध
का सारांश

2005
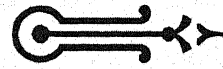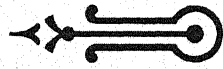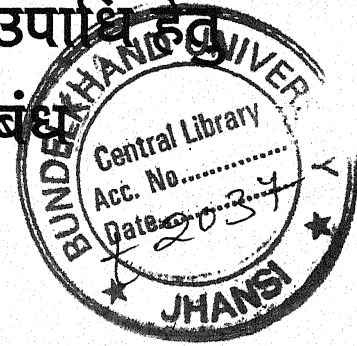
शोध निर्देशक

डॉ. नीलम मुकेश
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई
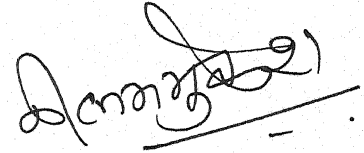
शोध छात्रा

नवता
गांधी कॉलेज, कैम्पस
राजेन्द्र नगर, उरई

शोध केन्द्रः दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि नवता ने मेरे निर्देशन में ''जनवादी कवि नागार्जुनः चिंतन और संवेदना'' शीर्षक शोध प्रबंध पूरा किया है। यह शोध प्रबंध मौलिक है। शोधछात्रा ने इस शोध कार्य को पूरा करने में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित नियमों के अनुरूप उपस्थित होकर पी–एच.डी. अध्यादेश का अनुपालन किया है। यह शोध प्रबंध अपने मूलरूप में शोध छात्रा के व्यक्तिगत परिश्रम का परिणाम है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करती हूँ।

(डॉ. नीलम मुकेश)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई

विषय सूची

भूमिका

जनवादी चेतना के प्रतिनिध कवि नागार्जुन जनआंदोलन के समर्थक थे और सम्प्रदाय वाद की चेतना का विरोध करते थे। जनता की मांगो, आवश्यकताओं को लेकर जनता के साथ आंदोलन करना नागार्जुन का धर्म था, जिसे उन्होंने व्यवहारिक जीवन में भी अपनाया और काव्यगत् चिंतन में भी। वर्ग–संगठन और वर्ग–संघर्ष के समर्थक कवि नागार्जुन हमारी पीढ़ी के प्रतिनिधि कवि है।

नागार्जुन के काव्य के सन्दर्भ में अनेक तथ्य आज भी प्रासंगिक है। इसी आलोक में प्रस्तुत शोध प्रबंध के अन्तर्गत उनकी काव्य चेतना पर नये सिरे से विचार किया गया है। शोध विषय के प्रथम अध्याय में क्रमशः नागार्जुन के काव्य का संक्षिप्त परिचय, काव्यगत सोच और संवेदना, काव्यगत सोच और संवेदना के बदलते मानदंड और कवि नागार्जुन के काव्य में वैचारिक उन्मेष पर शोध कार्य किया गया है। जिसमें कथ्यगत प्रयोग एवं शिल्पगत प्रयोग के नाना प्रकार के आयामों पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय में नागार्जुन की काव्यगत संवेदना पर विशद विवेचना की गई है। उनके काव्य के कथ्यगत एवं शिल्पगत संवेदना को शोध का आधार बनाया गया है।

शोध प्रबंध के चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में नागार्जुन के काव्य की युग परक एवं युगान्तर प्रभाव सृष्टि पर शोध परक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। और अन्त में नागार्जुन के काव्य का शोधपरक अनुशीलित उपसंहार एवं परिलब्धि का विवेचन ध्यातव्य है।

कविता जिन अर्थों में जन–भावनाओं की अभिव्यक्ति कही जाती है, नागार्जुन का काव्य उसी यथार्थ का दर्पण है। कवि नागार्जुन ने करोड़–2 दलित–पीड़ित मानवों को 'मानवता का दूषित–गलित अवयव' मानकर उनके हितों की रक्षा का जो भार उठाया था, उस पर अनेक विचारों और आदर्शों की छाप स्पष्ट हैं।

जीवन के कुछ क्षण महत्वपूर्ण होते है, जिनमें व्यक्ति कुछ कर गुजरने की प्रेरणा लेता है। डी. वी. कॉलेज, उरई से एम. ए. करने के बाद मुझे शोध करने की प्रेरणा हिन्दी विभागाध्यक्ष आदरणीया डॉ. नीलम मुकेश ने दी। हिन्दी विभाग के अन्य शिक्षकों में डॉ. दिनेश चन्द्र द्विवेदी, डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय ने मुझे शोध कार्य में प्रवृत होने के लिए प्रेरित किया। मैं इन गुरूजनों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। सम्प्रति डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. अतुल बुधौलिया ने भी मुझे शोध कार्य में सहयोग प्रदान

किया, धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। मेरे परिजनों ने भी इस कार्य में प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है, जिनमें आदरणीय माँ श्रीमती शीला समाधिया, अग्रजा डॉ. निशा, अग्रज डॉ. दिवस कान्त, सम्मान्य श्री महेश कुमार शर्मा, आदरणीय श्वसुर डॉ. राधाचरण बादल, आदरणीय मम्मी श्रीमती पुष्पलता बादल एवं पति श्री नीलेन्द्र बादल प्रमुख है। मेरी अनुजा दिव्या को इस स्थल पर विस्मृत नहीं किया जा सकता; इसी प्रिय छोटी बहिन ने मुझे विवश कर शोध कार्य पूरा करने के लिए पल प्रति पल प्रोत्साहित किया। मुझे प्रिय छोटी बहिन दिव्या की इस प्रकृति पर गर्व है। प्रिय चित्रांश, हर्ष (चुनमुन) को भी स्नेहिल भावना प्रदान करती हूँ, जिन्होने अपने नटखट कौतूहल में मुझे न घेरकर शोध–कार्य में व्यस्त रहने दिया।

पूज्य पिता डॉ. एन. डी. समाधिया ने मुझे शोध कार्य करने के लिये उन्मुख किया। उन्हें औपचारिक न होकर इस स्थल पर अनेकशः नमन करती हूँ।

डी. वी. कॉलेज के पुस्तकालय के अधिकारियों, कर्म–चारियों को भी धन्यबाद ज्ञापित करती हूँ, उन्होंने समय–समय पर पुस्तकें प्रदान करके सहयोग किया।

नवता
नवता

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

(अ) नागार्जुन के काव्य का संक्षिप्त परिचय

नागार्जुन की पहली कविता 1935 में विश्व बन्धु साप्ताहिक (लाहौर) में 'राम के प्रति' छपी। मैथिली में इनकी कुछ कवितायें और उपन्यास भी छपने लगे थे। संस्कृत में भी इन्होने काव्य रचना की। लेनिन शताब्दी में साहित्य अकादमी में एक पर संवाद लेनिन पर संस्कृत प्रशस्ति रची और पढ़ी। 'सरस्वती' में लम्बी मूंछो वाले एक मुंडित व्यक्ति का फोटू छपा और यात्री नाम से कविता भी छपी। इन्होने संस्कृत पालि मैथिली तथा हिन्दी में बहुत सारी कवितायें लिखी और जगह जगह जाकर पढ़ी। इसी समय कवि ने मैथिली में कुछ 'कितबियाँ' लिखकर 8–8 पेज की लोकप्रिय शैली में छपवाई और खुद ही बेचना शुरू किया। जनता क्या चाहती है ;कवि ने जगह–जगह जाकर पहचान लिया था।

नागार्जुन के हिन्दी में प्रकाशित काव्य संग्रह पन्द्रह हैं। इनके अलावा 'चित्रा' और 'पत्रहीन नग्न गाछ' उनकी मैथिली कविताओं के संग्रह हैं। मैथिली साहित्य पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला। विद्यापति के गीत, मेघदूत और गीत गोविन्द के अनुवाद इन्होने हिन्दी में प्रकाशित कराये हैं। हिन्दी कविताओं का लेखन नागार्जुन का एक वैशिट्य रहा है। सितम्बर 59 को डा. रामविलास शर्मा के नाम एक पत्र में बाबा नागार्जन ने लिखा था ''मै कवि तो नहीं, मामूली साहित्यकार भी नहीं हूँ। हाँ आदमी बनने की कोशिश जरूर है ''यह आदमी बनने की कोशिश ही वस्तुतःहिन्दी के हिमालय सदृश व्यक्तित्व वाले कवि नागार्जुन की जीवन पर्यन्त साधना का रहस्य सूत्र है। बाल्मीकि, कालिदास, विद्यापति, कबीर, रवीन्द्र, और निराला की समृद्ध परम्परा को अपने में संजोये हुये नागार्जुन एक चर्चित व्यक्तित्व रहे हैं।

नागार्जुन ने संस्कृत, मैथिली,और हिन्दी की कविताओ को प्रकाशित कराकर सभी का ध्यान आकर्षित किया था और 'गन्ध–रूप–रस–शब्द–स्पर्श' की सघन संवेदना से समृद्व एक ताजा और प्रतिभा कवि स्वर हिन्दी कविता के रिक्त में सम्भव हुआ था। 'कालिदास' 'उनको प्रणाम, रजनीगन्धा, बादल को घिरते देखा है, जया, रवि

ठाकुर आदि कविताओं की रचना उन्होंने की। इन कविताओं के माध्यम से एक ओर जहॉ काव्य परम्परा के सान्निध्य में विकसित नितान्त मौलिक और हार्दिक प्रकृति चित्र पहली बार हिन्दी कविता में सम्भव हुये, वहीं एक नयी तरह की सामाजिक चेतना भी लक्ष्य की गई, जिसमें भारतीय करूणा और वर्गीय चेतना का मिला–जुला पुट था। 'कालिदास' कविता में जहाँ 'सच सच बतलाना' वाली तर्जनी उठी मुद्रा में 'इन्दुमती के मृत्यु शोक में /अज रोया या तुम रोए थे ?'' जैसे प्रश्न किये थे और उन प्रश्नों के ब्याज से कविता को कवि के स्वयं के भोगे हुये यथार्थ के रूप में रेखांकित किया गया था; वहीं 'रवि ठाकुर' कविता में कवि ने अपने वरेण्य कवीन्द्र रवीन्द्र से पूछा था; ''गुरुदेव मेरे /दाढ़ी यह तुम्हारी शुकनास सी सफेद है। चाचा करीम में और तुममें क्या भेद है ?तुम भी शुकनास, वह भी शुकनास। किन्तु तुम श्री निवासी अभी भी फुर्ती से कपड़ा बुनता है। सुनता हूँ, अन्त तक तुम भी रहे/ बुनते किरणो की जाली !''यह एक नये तरह का कवि स्वर था जिसमें भद्रलोक के वाक्य कार्मिक चेतना की पहचान की गई थी। इसी सामाजिक चेतना ने एक वंचित –विकलांग बच्ची के विवश जीवन के सम्मुख कवि को ले जाकर खड़ा किया और उसकी आंखो से वर्ग सचेत करूणा जीवन की स्रोत स्वामिनी बनकर फूट निकली; ''वह बोल नही सकती। लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है। काफी है सूझ–समझ उसमें सुख है दुख है अभिलाषा है। माँ बाप गरीब न कर सकते कुछ प्रतीकार बहरापन का सोच होगा, पकड़ा देंगे, कोई पथ जीवन यापन का/बन सकती है वह चित्रकार /ले सकती है वह नाच सीख /जिससे न किसी पर पड़े भार। जिसे न मांगनी पड़े लेकिन यह तो बस सपना है। चलता भी कुछ बस अपना है। कैसा असह्य कितना जर्जर। यह मध्यवर्ग का हो जिसमे लेखा!/ मैने झांका तो यह देखा/बाहर सफेद, अंदर धुंधला। क्या कर सकता वह बाप भला। बहरी–गूंगी उस बच्ची की शिक्षा दीक्षा का इन्तजाम।........उस लड़की का है नाम जया। नागार्जुन के काव्य संग्रह हिन्दी, मैथिली और अनूदित प्रमुख रूप से उद्धत किये जाते हैं, किन्तु खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तालाब की मछलियां, तुमने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, युगधारा, भस्मांकुर, पत्रहीन, नग्नगाछ, गीत गोविन्द, मेघदूत आदि का विशेष महत्व है। 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ कवि के जनचेतना का राजनीतिज्ञ व्यंग्य है–

खिचड़ी विप्लव देखा हमने
भोगा हमने क्रान्ति विलास
अब भी खत्म नहीं होगा क्या
पूर्ण क्रान्ति का भ्रान्ति विलास
प्रवचन की बहती धारा का
रूद्ध हो गया शान्ति विलास
खिचड़ी विप्लव देखा हमने
भोगा हमने क्रान्ति विलास
मिला क्रान्ति में भ्रान्ति विलास
मिला भ्रान्ति में शान्ति विलास
मिला शान्ति में क्रान्ति विलास
मिला क्रान्ति में भ्रान्ति विलास[1]

कविता जिन अर्थो में जन–भावनाओं की अभिव्यक्ति कही जाती है, जिन सन्दर्भो में उसे यथार्थ का दर्पण माना जाता है, जिन संभावनाओं के कारण उसमें जीवन दायिनी शक्ति की खोज की जाती है, आदि उन सभी दृष्टिकोंण से यदि हिन्दी की समकालीन/जनवादी कविताओं का मूल्याकंन किया जाये तो कविता की एक नयी पृष्ठभूमि तैयार हो सकती है। क्यों कि हिन्दी कविता की भटकती हुई दिशा को भावनाओं के आग्रहपूर्ण पथ को एक नयी जीवंत शक्ति इस धारा के भीतर कविता को मिलती है। इसके पीछे युगीन कवियों की गहरी सोच और संवेदना की भूमिका दिखायी पड़ती है। यथार्थ की तल्खी, जीवन की संवेदना और भविष्य की संभावनाओं के साथ जिन कवियों ने हिन्दी कविता को एक नई दिशा दी, उनमे सबसे ऊँचे स्वरो में से एक स्वर जनवादी कवि नागार्जुन का है। डा.हरिनारायण मिश्र लिखते हैं–''नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तल्खी, भारतेन्दु की करूणा और निराला की विनोद–वक्रता का विलक्षण सामंजस्य है।''[2]

'तालाब का मछलियाँ' कविता का वैचारिक उन्मेष द्रष्टव्य है–
पोषित–पालित चिर संरक्षित
छोटी बड़ी मछलियों की अब मची हुई लूट

परिधि गई है टूट
वन्या के प्लावन से सहमा पुष्करिणी की ....
रोहू, व्यारी, भाकुर, सौरा
भुनचट्टी और नैनी
एक—एक से बढकर सुन्दर
स्वाद और स्पष्टणीय
उठा लीजिये
अजी आपको कौन चाहिये
उठा लीजिये वही कि जिस पर मन चलता हो
कौन भला टोकेगा!
कौन भला रोकेगा!
कोशी की धारा ने आकर तोड़ दिया है भिण्डा
नही रहा पहले अधिपतियों का पोखर पर
नाम मात्र भी स्वत्व
बहुत दिनों के बाद मिली है
आज घूंट इस बंधे हुये पानी को
स्फूर्ति नहीं है
वेग नहीं है
दिशा नहीं है, अन्तः पुरिका चटुल शफरियाँ
भूल गई है स्वाभाविक गति
प्रखर स्रोत में आसानी से
कैसे पहुँच सकेगी ?
तो क्या यह उद्वेल परिप्लावन इनका यों
सत्यानाश करेगा ?
तो क्या बंधी भीड़ वाली पोखर ही
थी इनके उपयुक्त ?[3]

राजनीति विपन्नता को देखकर नागार्जुन की मानसिक चेतना अत्यधिक उद्वेलित रही है। मिथिला के गाँव की अभाव ग्रस्त स्थिति से लेकर दिल्ली तक जन सामान्य की इमरजेन्सी 'शाक' की संवेदना से उनकी चेतना साक्षात्कार करती है।

शासन की नीतियों की संवेदना से लेकर सत्ता तक के गलियारों तक वे भटकते हैं। और यथार्थ वादी दृष्टि से युक्त होने के कारण सब कुछ बीनते, बटोरते, चलते हैं। इस पृष्ठभूमि में नागार्जुन की चेतना कहीं न कहीं क्रान्ति का वाहक बनकर उभरती है। उसकी भाषा में पीड़ा झलकने लगती है। उसके भावों में आक्रोश उभरता है और वह जनवादी हो जाता है–

तुमने कहा था
मरने के बाद
तुम्हारी राख जमीन पर छिड़क दी जाय
...तुम्हारी राख गंगा में डाल दी जाय.....
राख वाली जमीन में
निश्चित ही उपजेंगे प्रचुर अन्न ....
लेकिन टिड्डों का हमला रूकेगा कैसे ?
राख वाली नदी का जल
निश्चित ही अधिक निर्मल होगा...
लेकिन, मगर कहाँ जाँयेगे ? [4]

नागार्जुन की दृष्टि में समुचित प्रतिरोध और क्रान्ति का तालमेल कभी नहीं हुआ। उन्होने जब–जब क्रान्ति का चित्र खींचा उसमें सदैव जनता की बढ़ती हुई भूमिका को सर्वोच्च स्थान दिया। क्रान्तिकारी स्वप्न में नागार्जुन लाखों लोगो के रहनुमा हैं। वे खुद बन्दूक लेकर क्रान्ति नहीं कर रहे हैं। उनकी रहनुमाई में सारे श्रमजीवी आगे बढ़ रहे हैं। मध्यमवर्गीय, निम्नवर्ग उनका साथ दे रहा है–

आओ हम सब चलें, राष्ट्रपति भवन पधारें
महामहिम के जूतों की आरती उतारें
जीरादेई की धरती अब भी रोती है
फसल नहीं है, धूल उड़ाकर खुश होती है
बैठ गए हैं कानों में जो उंगली डाले
उनके सर पर हाँथ बने हम चम्पीवाले
जादूगर हैं, सब का होश दुरूस्त करेंगे
व्रत लेते है, दुखियारों का दैन्य हरेंगे
है अनमोल हमारी धूल ! धूल हमारी, धूल हमारी, धूल।
है अनमोल हमारी धूल।[5]

नागार्जुन का मानव वाद एक ओर वैज्ञानिक चिन्तन की ओर अग्रसर है तो दूसरी ओर समाज के अतंर्विरोधों के खिलाफ एक सजग रचनाकार की तीव्र प्रतिक्रिया

से सम्बद्ध है। उनकी इस चेतना का आधार किसान आन्दोलन से बना था। उन्होंने बिहार में किसान आन्दोलन के जनक स्वामी सहजानंद से पत्र व्यवहार किया। स्वामी जी ने उनसे कहा कि ''क्या करोगे पुरातत्व का, पुरालेख का, नये तत्व से जूझो नये लेख को बांचो''। नागार्जुन की इस यात्रा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है ''नागार्जुन जितने क्रान्तिकारी सचेत रूप से हैं उतने ही अचेत रूप से भी है।''[6]

''भगवान अमिताभ, सहचर मै चाहती
चाहती अवलंब, चाहती सहारा
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
ह्दय की बात लो, कहती हूँ आज मै
कोई एक होता
कि जिसको
अपना मै समझती.......
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मै होती''[7]

नागार्जुन का पहला कविता संकलन था 'युगधारा' और हाल का संकलन है 'ऐसे भी हम क्या!!' अब तक कुल मिलाकर नागार्जुन के निम्नलिखित कविता संकलन प्रकाशित हुये है–1–युगधारा, 2–सतरंगे पंखो वाली, 3–प्यासी पथराई आँखे, 4–तालाब की मछलियाँ तथा अन्य कविताएं, 5–हजार हजार वाँहो वाली, 6–खिचड़ी विप्लव देखा हमने, 7–तुमने कहा था, 8–पुरानी जूतियों का कोरस, 9–ऐसे भी हम क्या....ऐसे भी तुम क्या,।

वस्तुतः 'युगधारा' 'सतरंगे पंखो वाली' और 'प्यासी पथराई आँखें' तक तो क्रम ठीक चलता है। परन्तु उसके बाद बिगड़ जाता है। 'सतरंगे पंखो वाली' तथा 'प्यासी पथराई आँखें' की रचनायें बाद के संग्रहो में आती है; 'तालाब की मछलियाँ' संग्रह की सारी रचनाएँ बाद के संकलनों में आ जाती हैं और इस संग्रह को फिर नहीं छापा जाता। 'युगधारा' तो लम्बे अन्तराल के बाद दुबारा छपती है, परन्तु इन संकलनो के अलावा नागार्जुन के कुछ पैम्पलेट–नुमा कविता संकलन भी समय–समय पर प्रकाशित

हुये हैं, मसलन 'प्रेत का बयान; 'अन्न पचीसी' आदि, किन्तु बाद के संकलनों में इनकी रचनाएं शामिल कर ली गई हैं। कहने का कुल तात्पर्य यहाँ इतना ही है कि नागार्जुन की रचनाशीलता का पुस्तकों के रूप में व्यवस्थित प्रकाशन नहीं हो सका। पत्र-पत्रिकाओं में वे लगातार छपती गई और उन्हें संकलित किया जाता रहा बहुत बड़ी संख्या ऐसी रचनाओं की है जो आज भी पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी है। बाबा की आदत डायरी में तमाम कविताएं लिख लेने की थी। नई रचनाएं भी पहले डायरी में आती है, फिर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिये भेजी जाती थी। नागार्जुन घुमन्तु थे। एकाधिक बार 'यात्राओं में उनकी डायरियाँ खो गई और पहले की प्रसिद्ध रचनाओं के साथ ताजा रचनाएं भी हमारे समक्ष आने से वंचित हो गईं। यह है नागार्जुन की रचनाओं और उनके प्रकाशन का हाल। परन्तु इस स्थिति का दायित्व शायद नागार्जुन पर नहीं हम पर है, हमारी व्यवस्था पर है।

नागार्जुन जीवित रचनाशीलता के प्रतीक हैं, उनकी सर्जना आधी शताब्दी के समय को समझते हुये अपने तरोताजा रूप में आज भी मिलती है। वे अपने को दुहराते नहीं, सर्जनशीलता तथा उम्र के हर दौर में नई राहें खोजने की उनमें शक्ति है, सामाजिक यथार्थ के रू-ब-रू होकर उससे टकराने में, उसे बदलने के संघर्ष में अन्यो के साथ कन्धें से कन्धा भिड़ाकर उनकी मदद करने में वे पूरी तरह जाग्रत हैं।

रचनाकार नागार्जुन के बहुआयामी व्यक्तित्व की छाप गहराई से उनकी कविताओं में अंकित है। इन कविताओं का संसार नहीं है। जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नर जगत, नरेतर वाह्य जगत् और उससे भी आगे समूचे चराचर जगत की संज्ञा दी है, नागार्जुन की कविता इन सबको अपनी परिधि में समेटती है। असाधारण और साधारण सब उसके दायरे में है, और सबके भीतर एक ऐसे रचनाकार की मानवीय सम्वेदना का तार विद्यमान है, जो इस अनन्त रूपात्मक जगत् की अनेक रूपा भावराशि को संजोए उसके एक-एक परिदृश्य से अपने मन तथा ज्ञान की सारी इंद्रियों की सजगता से एकात्म है। नागार्जुन की कविता उनकी वैयक्तिक संवेदना के मार्मिक अंशो को उजागर करती है तथा इसमे वे कविताएं भी है जो उनके सामाजिक सारोकारों को वैश्विक स्तर तक पहुचती है। जिन कविताओ में कवि की निजी संवेदनाएं मुखरित हुई है वहाँ भी कवि नितांत मानवीय है।, अपने को बाहर की दुनिया से भी जोड़े हुये है। अपने अंचल तथा अपनी धरती से घनिष्ट रूप मे जुड़ा होकर भी

वह आंचलिक नहीं है अपने राष्ट्र से एकात्म होते हुये भी राष्ट्र की सीमाओं में बद्ध नहीं है। वह आंचलिक और राष्ट्रीय होते हुये भी अन्तर्राष्ट्रीय है, साधरण जन का है चाहे वह कहीं का भी जन क्यों न हो। उसके लिये 'सर्व भूमि गोपाल की है।' नागार्जुन ने कुछ कवितायें दाम्पत्य प्रेम पर भी लिखी हैं। उनकी 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता काफी प्रसिद्ध है परन्तु 'यह तुम थी' कविता से कदाचित पाठक उतना परिचित नहीं है। दाम्पत्य प्रेम को अभिव्यक्ति देने वाली कविताएं और भी हैं। कुछ बंगला भाषा में भी है। दाम्पत्य प्रेम की इन कविताओं की चर्चा हम आगे करेंगे, यहाँ महज इतना ही कहना है कि दाम्पत्य प्रेम की इन कविताओं में भी दम्पत्ति का एकालाप नहीं है, सब कुछ को परे हटाकर दीन–दुनिया से बेखबर अपना एक अलग संसार बसाने की रोमानी मानसिकता नहीं, यहाँ भी अपनी धरती, घरद्वार गाँव–जवार के आत्मीयो का स्नेह पूर्ण स्मरण और उनके साथ भी एक मार्मिक संवाद है। नागार्जुन ने अपनी कविताओं में अनुभव का एक नया संसार रचा है। रवि बाबू में उन्हें करीम चाचा की याद आती है। वे समूची मनुष्यता के प्रति प्रेम और समर्पण का भाव देखते है, उनके प्रति इस कारण विनत होते है कि सम्पन्नता भी उनकी मानवीय संवेदना को मद्धिम न कर सकी। निराला का जीवन उन्हे संघर्ष में भी अडिग रहने की प्रेरणा देता है। और कामरेड लेनिन में उन्हें संतप्त मनुष्यता की मुक्ति के मसीहा के दर्शन होते हैं। कहने का मतलब यह है नागार्जुन की ये कवितायें बड़े सात्विक मनोभाव में जन्मी कविताएं है। उनकी कविताओं में कवि की मनः स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है जिसे उनकी भाषा तथा शैलीगत भंगिमाओ में लक्ष्य किया जा सकता है। केदार नागार्जुन के आत्मीय हैं और उन पर लिखी गई उनकी कविता अनेक अर्थो में एक विशिष्ट कविता है। अपने समान धर्मा, समवयस्क, समकालीन, रचनाकार के प्रति ऐसी निश्छल हार्दिकता कम ही दिखाई देती है। केदार पर लिखते हुये नागार्जुन जैसे स्वयं केदार मय हो गये हैं और बिना किसी अति रंजना के उन्होंने बुन्देलखण्ड की धरती के इस कवि को उसकी धरती के सारे ऐतिहासिक और भौगोलिक वैशिष्टय के साथ उसके अन्तर्बाह्य की समूची वास्तविकता में बड़े ही मनोयोग से प्रस्तुत किया है। अपनी आन्तरिक लय में अटूट और एकतान। नागार्जुन की कल्पना, यथार्थ का उनका पर्यवेक्षण, अनुभूति और विचार की समरसता, काव्यात्मक वैशिष्टय के साथ प्रस्तुत कर देने वाली उनकी चित्रात्मक भाषा और शैली कितनी प्रभावी है इसका उदाहरण उनकी कविताओं में भरा है।

नागार्जुन हिन्दी कविता में एक व्यंग्यकार के रूप में विशेष रूप से जाने जाते हैं। सामाजिक व्यंग्य की जो परम्परा भारतेन्दु युग के बाद अवरूद्ध हुई सी जान पड़ती थी, कविता के प्रगतिशील, यथार्थ युग में आकर नागार्जुन तथा दूसरों के द्वारा वह फिर से जीवन्त हुई। इसे हिन्दी कविता के लिये बहुत शुभ मानना चाहिये। यथार्थ की जमीन पर ही व्यंग्य अपने पांव रोपता है। 'ग्रामदेवता' कविता में कोमलकांत कल्पना के लिये विख्यात पन्त व्यंग्य की जमीन पर उतरते हैं। उनका व्यंग्य उनकी तमाम सारी कोमल कल्पनाओं को मात देता है। निराला सन् 36 के बाद व्यंग्य के क्षेत्र में बड़ी सामर्थ्य के साथ आते हैं और उसे एक मानक ऊँचाई पर पहुँचाते है। नागार्जुन में निराला और भारतेन्दु की सही व्यंग्य परम्परा अपनी नई जमीन पाती है। नई जमीन इसलिये की नागार्जुन एक प्रतिबद्व रचनाकार हैं और उनकी प्रतिवद्धता साधारण जन की मुक्ति के वैज्ञानिक दर्शन से है, फलतः साधारण जन के दुःख दैन्य तथा शोषण मूलक व्यवस्था की उनकी समझ बहुत साफ समझ है और जब तक एक गहरी मानवीय करूणा के तहत वे साधारण जन के यातना के जिम्मेदार वर्तमान शोषण मूलक समाज व्यवस्था के हिमायतियों पर वज्र बनकर टूटते हैं, उठाई गीरो के शासन तन्त्र पर, युद्धखोरों के युद्धोन्माद पर तथा पाखण्डियों और धूर्तो के समाज तन्त्र पर तिलमिला देने वाली व्यंग्य बाणो की बौछार करते है उनके मुखौटो को उतारते हुये उनके उपर चढ़े सभ्यता के लिबास को तार तार करते हुये उनकी असलियत खोलते हुये, उन्हें सबके सामने नंगा करते है, उनकी मखौल उड़ाते है उन पर फब्तियां कसते है, चिकोटियां काटते हैं कि यह सब कुछ एक बड़े लक्ष्य के लिये करते है, बड़ी गहरी संम्वेदना तहत करते है, बड़े मानवीय सरोकारों के तहत करतें है। सामन्तवादी ,साम्राज्यवादी –पूँजीवादी गठजोड़ का भण्डाफोड़ करने वाले देशी विदेशी शासक शोषक वर्गो कें कुचक्र का पर्दाफाश करने वाले, साधारण जन के दुःख दर्दसे प्रेरित होकर नागार्जुन के ये व्यंग्य हिन्दी कविता की बड़ी मूल्यवान उपलब्धि हैं।सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन के बड़े सशक्त माध्यम के रूप में नागार्जुन ने इन व्यंग्यो का इस्तेमाल किया है। नागार्जुन यों भी इस हथियार को चलाने में माहिर हैं। नए अंदाज में विविध प्रकार की मनःस्थितियो में, कभी हल्के–फुल्के, कभी बड़े मारक और गहरे रूप में कभी क्रोध से आगबबूला होते हुये कभी मसखरी करते हुये कभी नितान्त गम्भीर बनकर और कभी निहायत शरारती मुद्रा में पात्र, प्रसंग और अवसर के अनुरूप भाषा और शैली लय और तान के अनूठे मेल–मिलाप में वे इन व्यंग्यास्त्रों को चलाते

हैं। बहुत बड़ी ताकत हैं उनके ये व्यंग्य, बहुत बड़ी सम्पदा है यह उनकी, उनके सामर्थ्य की पूरी अनुकूलता में। आधुनिक कविता के व्यंग्य लेखकों में वे सिरमौर हैं। राजनीति, समाजतन्त्र, अर्थनीति, शासन–तन्त्र, धर्मनीति, देश–विदेश के नेता, समाज के, नौकरशाह, थैलीशाह, राजनीतिक छुटभैये, चापलूस, बटमार, साधू–सन्यासी, पीर–फकीर,पण्डित–मौलवी सब उनके व्यंग्यो की लपेट में आए हैं और सबकी असलियत उन्होनें खोली है। वे आधुनिक कविता के कबीर हैं।

जाहिर है कि जिसकें पास व्यंग्यों की इतनी विशाल पूँजी हो, उसमें कुछ अपेक्षाकृत बहुत सीधा तथा स्पष्ट भी शामिल हो गया हो, व्यंग्य व्यंग्य न रहकर अभिधा पर उतर आया हो तो आश्चर्य नही होना चाहिये,परन्तु साहित्यिक पैमाने पर उसमें कोई कसर भले ही देखी जाऐ, उनका कथ्य अकाट्य ही रहेगा। परन्तु हम नागार्जुन को उनके उन व्यंग्यो के लिए महत्व देते हैं, उनकी उस प्रतिभा के कायल हैं जो अपने युग के बड़े सटीक व्यंग्य लेकर सामने आई है। ऐसे व्यंग्य जिनकी मिसाल नहीं है, मसलन प्रेत का बयान, मन्त्र, तालाब की मछलियाँ, मांजो और मांजो, वे और तुम, तो फिर क्या हुआ, घिन तो नही आती, आओ रानी, भूले स्वाद बेर के, तीनो बन्दर बापू के, छब्बीस जनवरी पन्द्रह अगस्त जैसी व्यंग्य रचनाएं भुलाने की चीज नही है। इनके अलावा उनके ढेरों राजनीतिक व्यंग्य है। उनकी शासन की बन्दूक, रचना और फिर इन्दु जी पर लिखी गई इनकी तमाम नुक्कड़ कविताऐं तथा 'बाघिन'; 'पैने दाँतो वाली' जैसी उनकी रचनाएं, नेहरू पर 'तुम रहु जाते दस साल और' कामयाब योजना पर 'खड़ाऊ थी गद्दी पर' और मोरार जी गुलजारी लाल नन्दा आदि के अलावा सम्पूर्ण क्रान्ति अथवा खिचड़ी विप्लव पर लिखी गई उनकी छोटी मझोली रचनाऐं विदेशी महाप्रभुओं जैसे 'महाप्रभु जानसन' पर लिखी कविता आदि –कविताएं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन व्यंग्यो की परिधि बड़ी व्यापक है। सामाजिक, राजनीतिक व्यंग्यो की इतनी विपुल और इतनी सार्थक सम्पदा आधुनिक युग के किसी भी रचनाकार के पास नही है। नागार्जुन ने इस लिहाज से भारतेन्दु और निराला की परम्परा को समृद्ध ही नहीं किया अधिक एक नई परम्परा की शुरूआत भी की है।

नागार्जुन देश, जनता तथा धरती के कवि हैं। देश, जनता तथा धरती उनके यहाँ अमूर्त न होकर एकदम सगुण साकार है, अपने उनके लिए महज एक भौगोलिक इकाई ही नही एक सजीव सत्ता है। जिसे उन्होने और बुराइयों के साथ जाना समझा है, पेश किया है।

देश और देश की जनता देश और देश की धरती, उनके लिये कभी अलग–अलग नही रहें। उन्होने उनके हर्ष विवाद, सुख–दुख आशाऐं–आकांक्षाऐ, उनके स्वप्न तथा संघर्ष सबको अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। नगर तथा गाँव सब उनकी दृष्टि की परिधि में रहे है और सबको उनके सामाजिक जीवन की संगति में उन्होने भ्रपूर देखा, भोगा और जिया है। इनकी पर्त–पर्त से वे वाकिफ है, इनके रंग–रेशे से उनका परिचय है । उन्हें इन पर गर्व भी है और कोफ्त भी। किन्तु इनकी जो सारभूत सच्चाई है वह उनकी निगाह से कभी ओझल नही हुई। देश की धरती के नरक को भोगती हुई ,किन्तु उससे उबरने के लिए आकुल और संघर्षरत साधारण जनता के प्रति वे सम्पूर्ण मन, वचन, तथा कर्म से समर्पित रहे हैं। जन शक्ति, श्रमजीवी, जनता तथा इस जनता के जीवन को उन्होने निहायत संजीदगी से अपनी समूची मानवीय तथा रचनात्मक सम्वेदना से उससे पूर्णतः एकात्म होकर चित्रित किया है। साधारण जन की व्यथा को धरती माता के कष्ट को तथा अपने देश की छाती पर अंकित दंशो को उन्होने बार बार आकुल होते हुये चूमा, सहलाया और पुचकारा है, आहत हुये हैं उनके दुख–दैन्य से, उल्लसित हुये है उनके जागने और करवटें लेने से। वे भागीदार बने हैं इस देश की धरती और जनता की मुक्ति के प्रत्येक अभियान में, उसके बेहतर जीवन के लिए छेड़े गए हर संग्राम और इसी का परिणाम है देश, धरती और जनता का वह बहुआयामी सामाजिक यथार्थ जो नागार्जुन की कविता के इतने पारदर्शी रूप में सामने आया है कि उनकी कविता सामाजिक यथार्थ की जीती जागती प्रतिमा बन गई है। नागार्जुन के काव्य में ऐसी कविताओं की संख्या सबसे अधिक है जो मौजूदा देश –दशा से, यहाँ के निवासियो के बहुरंगी जीवन से, यहाँ की धरती की वस्तुनिष्ठ गाथा से हमें निहायत प्रामाणिक तरीके से परिचित कराती हैं । उनकी कविताओं में छल–कपट फरेब और उससे जूझते–लड़ते और हार–हारकर भी नए मोर्चे बाँधने वालो का सौन्दर्य है राजनीति, समाजनीति, तथा तिलिस्म है और उनकी गिरफ्त में फँसे, उन्हे खोलने के लिए संकल्पबद्व साधारण जन की आस्था विश्वास तथा मेहनत है, इसमें देश तथा धरती का नरक बनाने वालों की साजिश है और इस साजिश को चकनाचूर करने के लिए कटिबद्व–श्रमरत जनता की अदम्य निष्ठा है, यातना और दुख के बावजूद इसमें साधारण जन के हर्षोल्लास के क्षण हैं, तथा सारी सुविधा को बटोरे रहने के वावजूद जनशक्ति के उफान से घबराएं महामहिमों तथा महन्तों के भयभीत चेहरे भी। अकाल, बाढ़, महामारी, दमन–चक्र, अन्याय, अत्याचार की हरिजन

गाथाएँ हैं। शान्ति और अहिंसा की कविता भी है, और गोलियाँ तथा बन्दूको की चर्चा भी। कहने का मतलब यह कि नागार्जुन की कविताओ में सामाजिक यथार्थ का रूप इतना बहुआयामी, बहुरंगी और वैविध्यपूर्ण है कि उसके माध्यम से अपने देश के और विदेश की भी मौजूदा सम्पूर्ण छवि को बड़ी सफाई और प्रमाणिकता से देखा जा सकता है। ये कविताएं नहीं जीती–जागती हकीकतें हैं; उस युग और व्यवस्था की, उन लोगों और उनके क्रियाकलापों की, जिनके बीच हम जी रहे हैं, जिनका हम अंग हैं। नागार्जुन हिन्दी के उन कवियों में हैं, जिन्होने अपनी प्रतिबद्धता को ही नहीं अपनी पक्षधरता को भी ऐलानिया तौर पर स्पष्ट किया है, और जैसा कि हम कह चुके हैं, यह पक्षधरता है वर्ग–विभक्त मौजूदा समाज व्यवस्था में उनकी ओर से बोलना, उनके अभियानों में सुख –दुख में भागीदारी निभाना। जो मजलूम है, यातना ग्रस्त है, शोषित है, सर्वहारा है, दलित और पीड़ित है उनकी मुक्ति के लिये, यातना तथा सामाजिक अन्याय से इनकी मुक्ति के लिये नागार्जुन सदैव हिरावल में शिरकत करने वाले रचनाकार हैं। वे एक्सन के कवि हैं। और लोकतांत्रिक जन संघर्ष से लेकर गुरिल्ला मानसिकता में उत्तर कर वे नये अभियानों की बात करते हुये उनमें कूद पड़ने को भी तत्पर हैं। हमने जिस हरिजन गाथा का जिक्र किया है, सत्ता के सारे दमन चक्र तथा आतंक के माहौल में भी उसमें उन्होने 'मंगल सूत्र' के प्रेमचन्द की भाँति अपने इस विश्वास को व्यक्त किया है कि देवता बने रहने के दिन लद गये, दरिन्दो से जूझने के लिये हथियार उठाने होंगे। हरिजन गााथा' तथा विहार के भोजपुरी अंचल के नये अभियानों की उनकी तरफदारी उनके साहस औरा निर्भीकता का ही नहीं उनकी अदम्य जन निष्ठा का भी परिचय देती है। नागार्जुन सच पूछा जाये तो, हर कोण से निहायत तरोताजा सम्वेदना के धनी हैं। उन्होंने अछूती जिन्दगी के जीवन्त पहलुओं से और जानी बूझी जिन्दगी के पेचीदे तेवरो से, काव्य शिल्प की नई भंगिमाओ से परिचित कराया।

कठोर और कोमल का समन्वित रूप ही नागार्जुन की कविता है और यही नागार्जुन के मनुष्य का परिचय है। अपनी अनेक कविताओं में वे नितांत करूणार्द्र तथा अतिशय सम्वेदना भावुकता के स्तर तक उदार और तरल दिखाई पड़ते है। जबकि 'गुलाबी–चूड़िया' 'दूधिया निगाहो में; 'यह कैसे होगा' 'यह क्यों कर होगा; 'कैसा लगेगा तुम्हे; 'एक मित्र को पत्र; 'आओ प्रिय आओ' जैसी कविताओ में बेहद कठोर

आक्रामक दृढ़ और मानवीय अस्मिता के धनी रचनाकार और व्यक्ति के रूप में सामने आतें है। उनकी एक कविता है, 'प्रतिहिंसाही स्थायी भाव है मेरे कवि का' ,इस कविता में वे अपने को, अपने कवि स्वभाव को, अपनी मूल कवि सम्वेदना को परिभाषित करते हैं। अपना सही परिचय देते हैं। शासक–शोषक तन्त्र के खिलाफ उनका गैर समझौता वादी रुख उनके कवि जीवन के प्रारम्भ से लेकर अंत तक वैसा ही विद्यमान रहा है। पश्चिम बंगाल का छद्‌म चुनाव हो, जिसे उन्होने प्रहसन की संज्ञा दी है। अथवा शासन का जगह–जगह चलने वाला दमन चक्र जिसकी उन्होने तीव्रतम भर्त्सना की है उसके हिमायतियों को वह फिर कितनी भी ऊँची कुर्सी पर क्यो न बैठा हो एक पल के लिये भी नहीं बख्शा है। नेहरू और इन्दिरा गाँधी पर लिखी कविताएं हमारे इस कथन का प्रमाण हैं कि इस जन क्रांति को सत्ता का कैसा भी आतंक, कैसा भी प्रलोभन कभी दबा और झुका नहीं पाया। उनके संकल्पो का पैनापन उनके स्वभाव की दृढ़ता और निर्भीकता तथा अपने लक्ष्य के प्रति उनकी अदम्य निष्ठा का सबसे अच्छा परिचय उनकी ऐसी ही कविताएं देती हैं जहाँ वे अपनी प्रतिबद्धता को पूरी ऊर्जा से बड़ी से बड़ी चुनौतियों के बीच भी अभिव्यक्त करते हैं। नागार्जुन हिन्दी कविता के मंच पर छायावाद के परवर्ती दौर में आते हैं। संस्कृत, हिन्दी और मैथिलि कविता की समृद्ध परम्परा को आत्मसात करके निखरा हुआ उनका कवि व्यक्तित्व उसी समय अलग से ही पहचाना जाने लगता है। चूंकि वे प्रगतिशील आन्दोलन के पहले उत्थान के रचनाकार हैं और प्रारम्भ से ही प्रतिबद्धता की जमीन पर मजबूती से खड़े होकर अपने कवि का परिचय देते हैं; अतएव गहरे से गहरे रोमानी मूड में भी धरती तथा युग के यथार्थ से वे अलग नहीं हो पाते। कविता के जो शाश्वत विषय माने गये हैं। मसलन प्रेम और प्रगति आदि इनके क्षेत्र में उतरते हुये भी और साधिकार उतरते हुये अपनी पहचान पूर्ववर्ती मानसिकता से भिन्न बनाते हैं। संस्कृत कविता की क्लासिकल भंगिमाओ को वे लोक जीवन की अनुकूलता में नया संस्कार देते हैं और विद्यापति की 'देसिल बयना' को सही मायनों में लोकलयों की मिठास से भर देते हैं, तथा हिन्दी कविता की भक्तिकाल की समर्पण भावना को किसी अलक्षित सत्ता के सगुण साकार जनदेवता से जोड़ते हुये जैसे नयी ऊर्जा दे देते हैं। यही नागार्जुन की मौलिकता है, यही उनका प्रदेय है कि वे परम्परा को रूढ़ि न बनने देकर सचमुच में शक्ति का एक स्रोत, नये अभियानों का प्रारम्भ बिन्दु बनाते हैं।

प्रेम जैसे विषय पर छायावादी कवियों ने भी खूब लिखा है और अपनी रोमानी संवेदना के अनुरूप बहुत अच्छा भी लिखा है। प्रेम छायावाद में नारी–पुरूष के शारीरिक सम्बन्धों का अतिक्रमण का आत्मा की गहराइयों तक पहुँचा है; एक दिव्य, अभूतपूर्व देवी प्रेरणा बुन सका है। संयोग और वियोग दोनों आयामों पर वह कलुषित नहीं है, सात्विक ही बना रहा है। एक ऊँचाई दी है उसे छायावाद के प्रसाद, पन्त, और निराला जैसे कवियो नें। जहाँ वह लौकिक मानवीय तथा शारीरिक सम्बन्धो की विवेचना करता है वहाँ भी उसका एक स्तर है, वह सांकेतिक है, कुण्ठाहीन है, सच्चे और सात्विक राग से प्रेरित है। काल्पनिक भावी पत्नी के प्रति, काल्पनिक प्रेयसी कै प्रति, और इस जमीन पर भी वह बहुत अधिक आदर्शात्मक, बहुत स्वप्निल और बहुत वायवीय है। कुल मिलाकर, छायावादी कवियो की प्रेम–भावना सूक्ष्म, सांकेतिक प्लेटोनिक, तथा प्रेम को एक दिव्य प्रेरणा, एक दिव्य अनुभूति मानने की है। वहाँ नारी पुरूष के बीच के इस प्रेम को यदि लाँघने की कोशिश हुई है तों या तो रहस्यवाद के अन्तर्गत जहाँ भी वह नारी पुरूष दायरे में बँधे होते हुये भी ईश्वर या ब्रम्हा को ही पुरूष के रूप में मानकर चला है, जैसे महादेवी में प्रेम का एक और आयाम छायावाद में प्रकृति तथा मानव प्रेम का है, किन्तु अपनी व्याप्ति में भी उसकी मूलवर्ती जमीन रोमेण्टिक ही है, आदर्शात्मक और वायतीय ही है। राष्ट्र या मनुष्य वहाँ ईकाई के रूप में ही अधिकतर उभरते हैं; जीवित सत्ताओं के रूप में कम। तथापि छायावाद की उपलब्धियों में उसकी प्रेम विषयक कविताएं निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण हैं। निराला जैसे कवियों में छायावाद की सीमाऐं टूटी भीं है तथा प्रेम और भी अधिक मूल्यवान बनकर उनकी रचना में अभिव्यक्त हुआ है। उसमें नए आयाम भी जुड़े हैं। वह वात्सल्य और दाम्पत्य तक भी बड़े समर्थ रूप में पहुँचा है।

प्रगतिशील कविता के युग में कविता का नजरिया ही बदल जाता है और नजरिया बदलने के क्रम में कविता की एक अधिक वास्तविक सजीव दुनिया हमारे सामने खुलती है। प्रायः प्रगतिशील कविता की उपलब्धियों के बारे में पूछा जाता है, इस नीयत से, गोया प्रगतिशील कविता की अपनी कोई खास उपलब्धियाँ न हो, उसे आसानी से उपेक्षा की वस्तु बनाकर छुट्टी पाई जा सकती है। बात जब सही नियत से शुरू न होगी तो वह खत्म भी वदनीयत से ही होगी और इसी का परिणाम है कि प्रगतिशील कविता की बात आते ही उसकी जो छवि सामान्य पाठक के मन में आती

है वह मजदूर–किसानों की दुख और शोषण गाथा की शोषक सत्ताओं के अन्याय और उन पर आक्रोश बरसाने वाली कविता की छवि होती है। वह राजनीतिक तथा स्थूल सामाजिक विषयों को लेकर चलने वाली कविता की छवि होती है, वह समाज वाद मार्क्सवाद की विचारधारा से जुड़ी कविता की छवि होती है। प्रगतिशील कविता जीवन की समग्रता की कविता है, वह एक मुकम्मल कविता है, जिसके दायरे में मनुष्य का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन अपने समूचे अन्तर्वाह्य के साथ अभिव्यक्त हुआ है, प्रगतिशील कविता की इस छवि को जान–बूझकर पूर्वाग्रहों के तहत नहीं उभारा गया है।

कुछेक अपवादों को छोड़कर यह नहीं कहा गया कि प्रगतिशील कविता छायावाद के आगे की कड़ी है, और उसकी उपलब्धियाँ वस्तु और शिल्प दोनों आयामों पर छायावाद के आगे की उपलब्धियाँ है, बल्कि सच्चाई यही है। वह एक जीवन्त दृष्टि की कविता है, और दृष्टि की इसकी जीवन्तता ने जीवन के हर पहलू को जिसे भी उसने छुआ है, एक जीवन्तता दी है। वह व्यक्ति का वैयक्तिक जीवन हो या सामाजिक जीवन। खैर हम इस बात को आगे न बढ़ाकर महज प्रेम और प्रकृति जैसे विषयों के दायरे में जिनके सन्दर्भ में छायावादी कविता को अप्रतिम माना गया है, मात्र नागार्जुन की कविता का साक्ष्य लेकर यह दिखाना चाहेंगे कि इन क्षेत्रों में भी प्रगतिशील कविता छायावाद के आगे की उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकी है, और जो उससे कम मूल्यवान भी नहीं है। शेष प्रगतिशीलो की चर्चा हम यहाँ नही करेगें। जिनके काव्य में प्रेम और प्रकृति का पूरा–पूरा नया संसार अपनी सारी वास्तविकता में अपने समूचे सौन्दर्य तथा व्याप्ति में मौजूद है। हम यहाँ अपने को नागार्जुन तक ही सीमित रखेंगे और बतायेंगे कि प्रगतिशील कवि महज सामाजिक क्रांति पर ही नहीं लिखता जो कि उस पर भी लिखता है और एक मानवीय जिममेदारी के तहत लिखता है, वह व्यक्ति जीवन की कोमल सम्वेदनाओं को भी अपनी दृष्टि तथा संवेदना की परिधि में लाताहै, और पूरी सामर्थ्य कें साथ लाता है।

प्रेम कविताएं नागार्जुन ने उसके सारे आयामों को मूर्तिमान करते हुये लिखी है। उनके यहाँ प्रेम महज स्त्री पुरूष सम्बन्धों के राग को ही अन्तिम मानकर नहीं रह गया है, वरन् उससे आगे अंचल, देश देश की धरती तक व्याप्त हैं। यह सब कुछ नागार्जुन में एक बड़े मानवीय तथा सामाजिक आशय के तहत आया है और बड़े विस्तार और

गहराई के साथ आया है। मनुष्य, देश तथा धरती के प्रति नागार्जुन की प्रेम भावना से पाठकों का अंतरंग परिचय है, किन्तु 'यह दंतुरित मुस्कान''जया' जैसी वात्सल्य की कविताएं भी भुलाने की चीज नहीं है। जहाँ तक स्त्री–पुरूष के बीच के प्रेम समबन्धो का प्रश्न है, सचमुच नागार्जुन ने उसे अधिक नहीं छुआ है, वास्तविक संवेदनाओं के अन्तर्गत हुआ है। परकीया प्रेम, काल्पनिक प्रेम तथा प्रेम के प्रचलित समारोहों का आयोजन करने का अवकाश जरूर उन्हें नहीं रहा परन्तु दाम्पत्य प्रेम को जिन थोड़ी सी कविताओ में उन्होने अभिव्यक्ति दी है वे दामपत्य को उसकी सही गरिमा भी देती हैं। शुक्ल जी ने प्रेम को लम्बे साहचर्य का परिणाम माना है, और यह साहचर्य उसे निरन्तर गहराता है, ऐसा भी कहा है नागार्जुन की यह रचनाऐं लम्बे साहचर्य जनित इस दाम्पत्य प्रेम को उसकी सारी गहराई और ऊर्जा के साथ अभिव्यक्त करती हैं। 'यह तुम थी' में 'तुम' और कोई नही, कवि की प्रिया उसकी पत्नी है, और गूलर कचनार भी और कोई नही, अपेक्षित बुढापा ही है, यह कविता दाम्पत्य प्रेम की उन कविताओं में है जिसकी मिशाल नही है न छायावाद में और न उसके बाद। 'सिन्दूर तिलकित भाल; कविता अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्व है जिसमें आरम्भ के दिनों में कवि को अपनी प्रियतमा पत्नी और उसके 'सिन्दूर तिलकित भाल' की याद आती है और उसके बाद ही याद आता है अपना प्यारा अंचल प्यारी धरती उसके लोग और उसकी प्रकृति कमल 'कुमुदिनि–तालमखाना आदि कवि इनमें भी एक वेहतर परिवेश से जुड़ा है, पूरे आत्मीयता के साथ। प्रकृति नागार्जुन रचनाओं में, अपने सारे रंग रूपों में सारी मुद्राओं में सारे सम्भार के साथ आई है। प्रकृति के प्रति इतना उन्मुक्त और खुला हुआ अनुराग,उसके प्रति इतनी ललक भरी आत्मीयता, उसके आकाशीय और धरती से जुड़े वैभव की इतनी सूक्ष्म और गहरी पकड़, उसका इतना बारीक और सम्वेदनामय पर्यवेक्षण आधुनिक कविता में कम ही मिलेगा। बहुत बड़ी संख्या है नागार्जुन की प्रकृति कविताओं की।उनकी प्रसिद्व कविता है' 'बादल को घिरते देखा है,' यह कविता उनके 'युगधारा' संकलन में सबसे पहले प्रकाशित हुई थी। यह नागार्जुन की अपनी देखी हुई प्रकृति है जिसका वे बार–बार उल्लेख करते हैं । कालिदास का यक्ष, उसका रामगिरि, उनकी अलका उनकी व्योमगंगा तो कल्पित थी, किन्तु नागार्जुन बड़े विश्वास से कहते हैं कि वे जो कुछ चित्रित कर रहे हैं वह अपना देखा है। बात कालिदास के प्रकृति चित्रण को कल्पित कहने और अपने को वास्तविक बताने की नही बल्कि बात यह है कि नागार्जुन के यहाँ प्रकृति रोमानी नही, काल्पनिक नहीः

अंलकारों सें सजी सजाई नही, वायवी नही, एक सजीव वास्तविकता है। अपने समूचेपन में, अपनी सारी मुद्राओं में। धरती और आकाश, गाँव और नगर, सब तक उनकी व्याप्ति है। प्रकृति के साधारण–असाधरण सारे रूप उनके यहाँ है। उसका सौन्दर्य और उसकी कुरूपता, दोनों ही उन्हें प्रिय है। उसके मनोहारी रूपो के प्रति भी उनकी अनुरक्ति है उसके रौद्र रूपों के प्रति भी उनमें दुराव नहीं है। वसन्त शरद और हेमन्त ऋतुयें उन्हें जितनी प्रिय हैं, ग्रीष्म,शिशिर पावस सें भी उन्हें उतना ही प्यार है।

हिमालय और उसके शिखरों से भी नागार्जुन को बेहद मोह है।' अमल–धवल गिरि' शीर्षक कविता के अलावा हिमालय उनकी कविताओं में बराबर मौजूद है। उसकी प्रकृति को बड़े मोहक और वास्तविक रूपरंगो में नागार्जुन ने अपनी तमाम् कविताओं में चिन्हित किया है।

(ब). काव्यगत सोच एवं संवेदनाः परम्परा एवं प्रयोग

अभी थोड़े दिन पहले तक हिन्दी के रिसर्च स्कालर आधुनिक कविता और स्वयं प्रगतिशील कविता पर 'रिसर्च' करते समय नागार्जुन का नामोल्लेख करना भी जरूरी नही समझते थे। लेकिन इसके बावजूद कवि नागार्जुन आज हिन्दी साहित्य की जीवंत वास्वविकता है। निराला के बाद नागार्जुन को छोड़कर आधुनिक हिन्दी कविता की कल्पना भी नही की जा सकती। अपनी काव्य शक्ति से नागार्जुन ने निराला की तरह साबित कर दिया है कि अपने युग का जनकवि रिसर्च–स्कालरों और भाष्यकारों का मोहताज नही होता। देश की साधारण जनता से कवि का लगाव जितना गहरा और आत्मीय होगा कविता के वर्ण और आस्वाद में उतनी विविधता होगी,कवि की सम्वेदना उतनी ही सघन होगी,कविता का यथार्थ वाद उतना ही गम्भीर होगा। अपनी कविता के प्रत्यक्ष उदाहरण के जरिये नागार्जुन ने यह भी साबित कर दिया कि जनता के जीवन और उसकी संस्कृति से प्राण संबधित होकर कविगण खुद को तरह तरह के कलावादी–सौन्दर्यवादी रुझानों से भी युक्त रख सकते हैं। तारीफ की बात यह है कि नागार्जुन इन प्रवृत्तियों से बचकर अपनी कविता को उस मंजिल पर पहुंचा सके हैं जहाँ लोक प्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के बीच अर्न्तद्वन्द्व या अर्न्तविरोध नहीं रहता, पूर्ण संतुलन और सामंजस्य स्थापित हो जाता है। नागार्जुन काव्य का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि उनकी कविता स्थान विशेष की कविता न होकर पूरे हिन्दी प्रांत की और पूरे देश की कविता है। नागार्जुन मूलतः मैथिली भाषी है। 'यात्री' नाम से मैथिली में कविता भी लिखते हैं नागार्जुन ने प्रारम्भ में अवधी और व्रज में काव्य रचना का अभ्यास किया था। आरम्भिक जीवन में संस्कृत पढ़ते हुये वैधनाथ मिश्र जब नागार्जुन नही थे' संस्कृत के अलावा अपनी अवधी और व्रज की कविताओं से पुरुस्कार जीतते थे। उसी से अपना खर्च चलाते थे। इसके अलावा 'लेनिन शतकाम' आदि अनेक महत्वपूर्ण कविताएं उन्होने संस्कृत में रची हैं।

पालि, प्राकृत, और बँगला आदि पर जैसा अधिकार नागार्जुन का है, वैसा हिन्दी के शायद ही किसी कवि का हो। नागार्जुन का अधिकांश जनवादी काव्य खड़ी बोली हिन्दी में है। खड़ी बोली ऐतिहासिक कारणो से जनपदीय 'बोली' से उपर उठकर पूरे हिन्दी प्रान्त की जातीय भाषा के आसन पर पहुँच गयी।

नागार्जुन के काव्य आस्वाद में विविधता है, उनके काव्य की भाषा में भी

विविधता है। नागार्जुन के जीवन के अनुभवो में विविधता है, काव्य के आस्वाद और भाषा की विविधता का अनुभव वैविध्य से घनिष्ठ संबंध है।

नागार्जुन अत्यन्त 'दीन हीन कृषक कुल' में उत्पन्न हुये और घुमक्कड़ी वृत्ति उन्हें अपने पिता से विरासत में मिली। स्वतंत्र रूप से जीवन बिताते हुये अपने इस जन्मजात संस्कार की प्रेरणा से वे देश–विदेश भ्रमण करते रहे। अपने जीवन में शायद ही कभी, कहीं कुछ वर्ष रुककर टिके हों। इस घुमक्कड़ीपपन का दुष्परिणाम यह हुआ कि आय का नियमित स्रोत न बन सका और वे सफल गृहस्थ न बन सके। इस सांसारिक असफलता के बावजूद घुमक्कड़ीपन का जो लाभ उनके कवि को मिला उसे हम उनकी कविता में सहज ही देखते हैं। भारत के पूर्व–पश्चिम उत्तर–दक्षिण सब तरफ के जीवन और सब तरफ की प्रकृति से नागार्जुन का प्रत्यक्ष परिचय है। जीवन की विपुल अनुभव–राशि किसी कवि की चेतना को किस रूप में ढालती है, नागार्जुन की कविताएं इसका अकाट्य उदाहरण हैं।

वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' का नागार्जुन के रूप में उदय तब हुआ जब उन्होने बौद्व धर्म की दीक्षा ली। आजकल कुछ लोग इस घटना को बढ़ा–चढ़ाकर इस रूप में पेश करते है कि ब्राम्हण कुल में उतपन्न होने का पाप धोने के विचार से बैद्यनाथ मिश्र बौद्ध बन गये। (कृष्णा सोंवती, आलोचना–56–57) इससे परिणाम यह निकलेगा कि नागार्जुन की काव्य चेतना किसी न किसी रूप में ब्राम्हणवाद से आक्रांत है। बौद्ध धर्म में उनकी दीक्षा इस आक्रांता की प्रतिक्रिया है। लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है। 'आलोचना' के इसी अंक में एक और साक्षात्कार में नागार्जुन ने बौद्ध बनने की अपनी कथा बताई है। राहुल सांकृत्यायन द्वारा अनुदित 'संयुक्त निकाय' पढ़कर उन्हें इच्छा हुई कि यह ग्रंथ मूल रूप में पढ़ा जाये। पालि सीखने का संभव उपाय था लंका जाकर वहाँ के बौद्ध मठ में रहना। नागार्जुन वहाँ पालि पढ़ते थे। "मठ में रहना और भिक्खु न होना, इसमें बड़ी झंझटबाजी थी। कायदा यह होता है कि जो भिक्खु बन गया सो उच्चतर आसन का अधिकारी हो गया। मठ में उम्र में छोटा शिष्य भी ऊँचे आसन पर बैठता था। मठ में जितने भी शिष्य हमसे संस्कृत सीख रहे थे, सब भिक्खु थे। वे बैठे ऊँची कुर्सी पर, हम बैठे नीची कुर्सी पर। उन्होने कहा कि गुरू जी, यह ठीक नही लगता। अन्य भी कई बातो में भी भिक्खु गैर–भिक्खु में इतना–2 फर्क कि क्या बताऐं। तो हमने कहा चलो, शिष्यो की ही बात मान लो।"

यह है नागार्जुन की बौद्ध बनने की कथा। अगर ब्राम्हणवादी संस्कार की आक्रांता की प्रतिक्रिया के कारण वे बुद्ध की शरण में जाते तो ब्राम्हण संस्कारों के प्रति उग्रतापूर्ण प्रदर्शनवाद का परिचय देते, बौद्ध संघो के प्रति भावुकतापूर्ण श्रद्धा की झलक दिखाते, इस आलोचनात्मक विवेक से कार्य न लेते। नागार्जुन का जन्म अत्यन्त साधरण किसान परिवार में हुआ था। यह संयोग की बात है कि वह परिवार ब्राम्हण था। ब्राम्हणवाद का दंभ वहाँ नहीं हो सकता था। यह दंभ तब होता जब उनका वातावरण ऐश्वर्य सम्पदा और विधि–निषेधों–अनुष्ठानों से बना होता।

जिस तरह यायावरी प्रवृत्ति नागार्जुन को सहज संस्कार के रूप में मिली, उसी तरह अभाव और आलोचनात्मक विवेक भी उन्हें सहज संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ। अंतर इतना था कि घुमक्कड़ीपन की प्रवृत्ति पिता से मिली और आलोचनात्मक विवेक अभावग्रस्त जीवन और पिता की मानवीय कमजोरियों से उत्पन्न विषम पारिवारिक स्थिति के दबाब से। यह संस्कार ऐसा है कि नागार्जुन ब्राम्हण कुल में, जन्म लेकर भी ब्राम्हण नही है। वे 'लक्ष्मी' को सम्बोधित करके बड़ी सरलता से यह व्यंग्य कर सकते है कि

जय जय हे महारानी
दूध को करो पानी
आपकी चितवन है प्रभु की खुमारी
महलों में उजाला
कुटियों पर पाला
कर रहा तिमिर प्रकाश की सवारी।[8] (हजार–हजार बाहों वाली)

इस लक्ष्मी का आसन कमल है, वाहन उल्लू है और पति विष्णु है जिसका निवास है क्षीरसागर। वह वहाँ लक्ष्मी के 'चितवन' की खुमारी में ऐसे पड़ा हुआ है जैसे रीतिकालीन नायिका का प्रेमी। इस विष्णु के बारे में नागार्जुन का 'मन करता है कि

मै उस अगस्त्य –सा पी डालूँ सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल–वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखाई दे[9] (हजार–हजार बाहों वाली पृ. 31–32)

ठीक इसी तरह बौद्ध संघो के अपने अनुभव–ज्ञान से सम्पन्न होकर उन्होनें 'भिक्षणी' की कल्पना की है। वह मजबूरियों के कारण बचपन में ही बुद्ध की शरण में

आ गयी। युवावस्था के साथ उसकी नारी–सुलभ आकांक्षाएं जागने लगी। वह बुद्ध के प्रति आकृष्ट होती है। हीनयान–महायान समझ चुकने के बाद अब वह मानव–संबधो का सहजयान जानना चाहती है;

भगवान अमिताभ, सहचर मै चाहती
चाहती अवलंब ,चाहती सहारा
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
हृदय की बात लो, कहती हूँ आज मै–
कोई एक होता
कि जिसको
अपना मैं समझती.....
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता, स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मै होती।"[10] (युगधारा,19)

स्वभावतः बुद्ध के प्रति उसके आकर्षण का कारण है मातृत्व की भूख। यह उसकी मानवीय आकांक्षा है। संघो के नियम इस मानवीय आकांक्षा पर पांबदियाँ लगाते हैं। नागार्जुन ने इन पांबदियो के मुकाबले में मनुष्य की सहज अभिलाषाओं को रख दिया है और इसके लिए बुद्ध के जीवन में एक कल्पित स्थिति को माध्यम बनाया है। धर्म के प्रति, कम से कम बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धावान व्यक्ति धार्मिक विधान और मानवीय आंकाक्षा की टक्कर दिखाकर संघबद्व धर्म की निरर्थकता कभी उजागर न करता।

इससे परिणाम यह निकलता है कि नागार्जुन ने बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद, उसके साहित्य और व्यवहार का अध्ययन करने के बाद अपने चिंतन और अनुभव को समृद्ध किया, लेकिन अपने सहज आलोचनात्मक विवेक को उन्होंने कभी त्यागा नहीं। नागार्जुन की काव्य चेतना का पहला संघर्ष धर्म की जकड़बन्दी के खिलाफ चला। उन्होनें यह भली–भाँति अनुभव किया कि समकालीन जीवन में धर्म की कोई प्रगतिशील सामाजिक भूमिका नही रह गयी है। वह धनिक जनों की संपदा और साधारण जनों की विपदा से सम्बद्व है। वह साधारण जन को तरह–2 के अमानुषिक और अप्राकृतिक विधि–निषेधों में उलझाता है, जीवन को निरर्थक मानकर उससे पलायन का उपदेश देता है, और उस तरह जनसंघर्षों को कुंठित करके वर्तमान भेदभाव और अन्याय–उत्पीड़न की रक्षा करता है। यही कारण है कि नागार्जुन 'हे

हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान'[11] कहकर (हजार–हजार बाहों वाली, पृ. 15) मानव चेतना से दैवी शक्तियों का आतंक उतार फेंकते है। वे परम्परा से जुड़ते हैं, लेकिन उसे अविवेकपूर्वक स्वीकार नहीं कर लेते। यह नागार्जुन की काव्य चेतना का मानववादी आधार है।

नागार्जुन का यह मानववाद एक सजग चिंतन की ओर अभिमुख है और दूसरी तरफ समाज के अंतर्विरोधों के खिलाफ एक सजग रचनाकार की तीव्र प्रतिक्रिया से सम्बद्ध है। नागार्जुन की इस चेतना का आधार निर्मित हुआ किसान आंदोलन में उनकी भागीदारी के बीच। लंका के बौद्धमठ में नागार्जुन जो अनुभव कर रहे थे, उसे देखते हुए वहाँ उनका अधिक दिन ठहरना अंसभव था। उन्होनें विहार में किसान आंदोलन के जनक स्वामी सहजानंद से पत्र व्यवहार किया और हिंदुस्तान वापस लौट आये। स्वामी जी ने उनसे कहा कि 'क्या करोगे पुरातत्व का, पुरालेख का, नये तत्व से जूझो, नये लेख को बाँचो।'

बाद को जब नागार्जुन राहुल जी के साथ तिब्बत यात्रा पर रवाना हुए तो बीच से ही वापस लौट आए। कहते है तबीयत खराब हो गयी थी। लेकिन– यह बात भी मन के किसी कोने में थी कि वर्तमान से मुँह मोड़कर अतीत में भागना ठीक नही।'' लौटकर नागार्जुन सहजानंद के साथ किसान आन्दोलन में सक्रिय रूप से जुड़ गये। 'दोवर्ष में तीन बार जेल गये। (आलोचना, 56–57)

लेकिन राहुल जी नहीं लौटे। वे अतीत की तरफ बढ़ते गये। राहुल जी किसान आन्दोलन का सूत्रपात करने वालों में सहजानंद के सहयोगी थे। वे वर्तमान से अतीत तरफ गये। नागार्जुन अतीत से वर्तमान की ओर आये। दोनो की यात्रा उनके संगत इतिहास बोध का परिचायक है। उनके इतिहास बोध का महत्व यह है कि दैय शक्तियों के अंधविश्वास और आतंक से मुक्त होकर वे निरंतर आगे बढ़ते गये। उनकी यह प्रगति जन–आंदोलनो से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध का नतीजा है। नागार्जुन की काव्य चेतना के निर्माण और विकास में उनके जीवन की इस यात्रा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

डा. रामविलास शर्मा ने लिखा हैकि ''नागार्जुन जितने क्रान्तिकारी सचेत रूप से है , उतने ही अचेत रूप से भी है।''[12] (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ.141) नागार्जुन के सहज संस्कार और सजग विचारधारा में विरोध नहीं है। इसका कारण

यह है कि अपने जीवन की स्थिति से, अपने विविध अनुभवों के प्रसंग में नागार्जुन की चेतना की जो आधारभूमि तैयार हुई है उसकी स्वाभाविक परिणति क्रांतिकारी दिशा में ही हो सकी। इससे उनके सृजन पर यह प्रभाव पड़ा कि व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनिक रूप में ढालने का जटिल कार्य नागार्जुन ने अत्यन्त सरलतापूर्वक किया। आधुनिक कविता में यह कार्य सबसे अधिक सफलता के साथ निराला ने किया था। 'सरोज स्मृति' उनकी इस विशेषता का अन्यतम उदाहरण है। निराला के बाद यह परम्परा भी नागार्जुन के काव्य में ही विकसित हुई। 'सिंदूर तिलकित भाल– उनकी इस सफलता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

यह बात सच है कि नागार्जुन ने जितना अध्ययन परम्परागत वाङ्मय का और सांस्कृतिक परम्परा का किया है उतना विज्ञान और अर्थशास्त्र और मार्क्सवाद का नहीं किया है। इसलिए उनकी राजनीतिक मान्यताओं मे उतार–चढ़ाव दिखाई देता है। उनमें दार्शनिक गम्भीरता की कमी पाई जाती है लेकिन यह बात भी सच है कि उन्होने जितना अध्ययन जनता के यथार्थ जीवन का किया है उतना उनके समानधर्मा अन्य कवियों ने नहीं किया है। नागार्जुन ने अपने किताबी अध्ययन को अपने व्यावहारिक अनुभव–ज्ञान में आत्मसात कर लिया है।

जनजीवन में अविच्छेद संबंध और सांस्कृतिक परम्परा का विपुल ज्ञान उन्हें था इसका एक परिणाम यह हुआ कि नागार्जुन की कविता में सांस्कृतिक गरिमा आयी है। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक मान्यताओं में असंगतियों के बावजूद उनकी प्रतिक्रियाएँ जनता के हित के विरूद्व कभी नहीं जाती।नागार्जुन का सचेत और अचेत भाव बोध जनता के साथ अभिन्न रूप में जुड़ा है। स्वभावतः जनता के जीवन को कष्टमय और कलहपूर्ण बनाने वाली प्रत्येक वस्तु नागार्जुन की घृणा का पात्र है। उनकी यह घृणा कितनी प्रचंड है, इसे समझना कठिन नहीं है। 'बताऊँ' शीर्षक कविता का आरंभ इस प्रकार होता है–

बताऊँ ?
कैसे लगते हैं–
दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण।[13]
(हजार–हजार बाहों वाली, पृ.54)

एक आत्यंतिक परिस्थिति का चित्र खींचकर नागार्जुन ने समाज के अंतर्विरोध पर जैसा प्रहार किया है वैसा दूर–दूर से बौद्धिक सहानुभूति जताने वाले कवियों के लिये संभव नही है। 'बताऊँ' ? के साथ भेद खोलने वाली जो मुद्रा है उससे नागार्जुन एक तरफ पाठक समुदाय से–जनसाधरण से सीधा, विश्वास का रिश्ता जोड़ लेते हैं और दूसरी ओर यह ध्वनित कर देते हैं कि उनकी घृणा उनके अपने अनुभवों का निचोड़ है। अपने अनुभव के बल पर नागार्जुन इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि देश की दरिद्रता का उपचार करने की जगह उस कोढ़ पर मणिमय आभूषण का श्रृंगार करने वाला समाज अमानवीय है। नागार्जुन को हर प्रकार की अमानवीयता पर मूलभूत रोष है। उनका यह रोष उनकी कविता में सर्वत्र व्याप्त है। वह कहीं व्यंग्य में ढलकर व्यक्त हुआ है, कहीं चुनौती और ललकार के स्वर में प्रकट हुआ है, वह कहीं इस अमानवीय शासन सत्ता के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिनिधियों का उपहास करने सामने आता है, कहीं प्रकटतः आदर श्रद्धा और 'मंत्र कविता' का रूप लेकर उभरता है। वह हर जगह काव्यात्मक ही है, ऐसी बात नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि नागार्जुन को जितनी घृणा वर्तमान समाज व्यवस्था से है, वे उस पर अपना आक्रमण उतना ही केन्द्रित करते जाते हैं। नागार्जुन की काव्य चेतना का यह पक्ष जन–जीवन के साथ इनकी सक्रिय हमदर्दी से जुड़ा है इस लिये वे खून सने जबड़े की निंदा करके अपने 'जाहिल बाने' से ही चिपक रहने का सुझाव नहीं देते। वे इस समाज को बदल कर ऐसा समाज लाने का स्वप्न देखते है जिसमें–

सेठों और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम
खेत खान दुकान मिलें सरकार करेगी दखल तमाम
खेत मजूरों और किसानों में जमींन बँट जायेगी
नहीं किसी कम करके सिर पर बेकारी मड़रायेगी[14]

यह काम वही सरकार करेगी जिसे दरिद्र देश की धनिकों से–सेठों–जमींदारों से मोह न हो, जिसे श्रमिक जनता से किसान मजदूर से प्रेम हो। नागार्जुन समाज के अंतर्विरोधों से जुड़े हुये अत्याचार और उत्पीड़न को अनुभव करते हैं। इसके लिये जिम्मेदार लोगों से तीव्र घृणा करते हैं और इस स्थिति को बदल कर न्याय और समता पर आधारित समाज की रचना करने वाली श्रमिक जनता से नाता जोड़ते हैं। नागार्जुन की काव्य चेतना का यह अत्यंत सबल पक्ष है कि वे श्रमिक जनता से

तादात्म्य स्थापित करते हैं और उसके दृष्टिकोंण को स्वांगीभूत करते हैं। जनता के साथ नागार्जुन का यह तादात्म्य न कल्पित है, न आरोपित। 'हरिजन गाथा' में चमरटोली के जो पुरोहित संत गरीबदास आते हैं वे कवि के ही प्रतिरूप हैं। बालक के जन्म पर उसके परिजन–पुरजन चिंतित और विमूढ़ अवस्था में हैं। संत गरीबदास बालक की हथेलियों में हथियारों के निशान देखते हैं और जान लेते हैं कि इसने सूक्ष्म रूप में विपदा झेली है। वह पैदाइश के साथ ही हथेलियों में हथियारों के निशान लेकर पैदा हुआ है।

जिन भाष्यकारों को नागार्जुन की यह प्रखर और पक्षधर चेतना खलती है वे कभी उनके विचारों को तोड़–मरोड़ कर पेश करते हैं। नागार्जुन की एक प्रसिद्ध कविता है 'वसन्त की अगवानी'। प्रकृति पर हर तरफ बसंत का उल्लास छा गया है, दूर अमराई में कोयल बोलती है, वृक्ष वनस्पतियों की टूटी शाखाओं में पोर–पोर, टहनी–टहनी दहकने लगती है अलसी के नीले फूलों पर आकाश मुस्काता है, चिपके गालों पर भी कुंकंम न्योछावर हो जाता है।रंगो के इस उल्लास में जब सारा संसार बसंत की अगवानी करने के लिये बाहर निकलता है, तो ठौर–2 पर सरस्वती माँ खड़ी दिखाई देती है। वे प्रज्ञा की देवी हैं। वे सहज उदार हैं। वे अपने अभिवादन में झुके आस्तिक–नास्तिक सभी को संबोधित करती है–

''......बेटेलक्ष्मी का अवमान न करना
जैसी मै हूँ, वैसी वह भी माँ है तेरी
धूर्तो ने झगड़े की बातें फैलायी है
हम दोनों ही मिल जुल कर संसार चलाती
बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेगें
जन जीवन का यान तभी आगे निकलेगा।।''[15]

इस विवरण से स्पष्ट है किआज लक्ष्मी और सरस्वती में संतुलन नहीं है, धूर्तों ने उनमें झगड़े की बात फैला रखी है। प्रज्ञा की देवी अपनी संतानों को यह ज्ञान देती है कि बुद्धि और वैभव का अलगाव मिटाकर ,दोनो को जोड़कर ही जन–जीवन की प्रगति संभव है। ऐसा तभी होगा जब धूर्तो की चाल नाकाम कर दी जायेगी।

यह भ्रम नागार्जुन को नहीं है। वे अपनी कविताओं में बार–बार दिखाते हैं कि पूंजीवाद का आधार है मुनाफा और सूद, इसलिये श्रमिक जनता के हितों से उसका

अनिवार्य विरोध है। नागार्जुन पूंजीवाद के दमनकारी चरित्र पर जितनी कविताओं में और जितने तरीके से लिखते हैं, उसे देखकर उनके दृष्टिकोंण के बारे में भ्रम की गुंजाइश नहीं रह जाती है। इस कविता में भी लक्ष्मी को सरस्वती से, वैभव को बुद्धि से अलग करने वालों को धूर्त कहकर वे अपनी मान्यता का यथेष्ट संकेत कर देते हैं।

अगर नागार्जुन साम्यवादी रंग मे रंगे है तो उनके विचारो को पूंजीवादी चिंतन के दायरे में घसीटने का प्रयास आलोचक की किस बुद्धिमानी का परिचायक है ? फिर नेहरू की 'समाजवादी' नीति सच थी या सपना, यह अब तक अवश्य ही उजागर हो चुका है। अपनी भावना के रंग में रंगकर नागार्जुन के दृष्टिकोण को गलत सही रूप में व्याख्यायित करने से विचारों में असंगतियां उत्पन्न होती है। व्यक्ति नागार्जुन के सम्मुख सामाजिक हितों और विचारों के निमित्त है। उन्हें लक्ष्य करके वे सामाजिक या राजनीतिक परिस्थियों पर टिप्पणी करते हैं–

आओ रानी हम ढोयेगें पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की[16]

यह लिखकर नागार्जुन व्यक्तिगत रूप से नेहरू की निंदा नहीं करते। रानी एलिजावेथ के स्वागत में खड़े भारतीय शासक वर्ग की समझौता वादी नीति को आक्रमण का लक्ष्य बनाते हैं। 'रानी' और 'जवाहर लाल' ब्रिटेन और भारत की राजसत्ता के प्रधान हैं। भारत स्वतंत्र हो गया है, लेकिन अभी भी ब्रिटेन की महारानी की पालकी का बोझ भारतीय जनता के कंधे पर आयेगा। भारतीय जनता की कीमत पर साम्राज्यवाद का पोषण स्वतंत्रता के बाद भी नहीं रुका, बल्कि भारत के पूंजीवादी नेताओं ने खुद को ब्रिटिश साम्रज्य से सबंद्ध रखा। इस कविता में नागार्जुन ने इस साँठ गाँठ पर व्यंग्य किया है। उनके व्यंग्य का कमाल यह है कि वह सभी तरह के छदम् को उद्घाटित कर देने की क्षमता रखता है।

उसी तरह जो 'जगत तारिणी प्रकट हुई है नेहरू कें परिवार में वह नागार्जुन के व्यंग्य का सर्वाधिक शिकार बनी है। उसने दहते हुये कांग्रेसी शासन को नया जीवन दिया है। सन्1967 में जो कांग्रेस आठ राज्यों में अपोजीशन में आ गई थी। उसकी स्थिति बूढे शेर जैसी हो गई थी। 1971 आते–2 इस 'जगततारिणी' छल–बल कौशल से हाल यह हो गया कि–

संविधान की रूई रूपहली भद्रलोक धुनते हैं

देवि तुम्हारे स्टेनगनों से तरूण–मुंड भुनतें है[17]

डायन के गुर सीखकर आँत चबाने वाली इस 'जगततारिणी के फरेब पर नागार्जुन कहतें है;

मंहगाई की सूपनखा को कैसे पाल रही हो

सत्ता का गोबर जनता के मत्थे डाल रही हो...

पग'पग तुम लगा रही हो परिवर्तन के नारे

जन युग की सतरंगी छलना, तुम जीती हम हारे..[18]

यह देवी कंकालो से अपने नव सामन्तों और महाजनों की रखवाली करने में ऐसी व्यस्त है कि कवि पुराने अनुभवों के आधार पर आगाह करता है–

अपनी गर्दन आप काट लो, करो प्रगति साष्टाँग

द्रवित न होगें किंचित भी तुम पर पिशाच गौरांग

इसी प्रकार अरविंद की आलोचना करते हुये नागार्जुन ने लिखा है;

हे विभ्रांत बुद्दिजीवी तुम बने हुये हो भारी भ्रम गुणगान

शासक शोषक वर्ग तुम्हारा क्यों न करें गुणगान......[19]

स्पष्ट है कि नागार्जुन के व्यंग्य का निशाना वह बनता है जो शोषक शासक वर्ग से संबद्व होकर जनता को ठगने या कुचलने की बदनीयत रखता है। नागार्जुन परिस्थितियों और वस्तुओं में अंतः सम्बन्ध देखते हैं। इसलिये सामाजिक विधान की असंगतियों को राजनीति से काटकर नहीं पेश करते। यही कारण है कि उनके राजनीतिक व्यंग्य में शासक–शोषक वर्ग के प्रति उनका रोष और घृणा तथा दबी–कुचली जनता के प्रति उनका आत्यंतिक ममत्व एक साथ विद्यमान है। वे इस भ्रम में नही पड़ते कि चमत्कार से पूंजीपतियों का ह्रदय परिवर्तन हो जायेगा और वे मुनाफा खोरी बंद करके जनजीवन के उत्थान का वीणा उठा लेगें। वे जिस 'जगततारिणी' के डायन रूप को 'कार्तूसों की माला होगी, होगा दृश्य अनूप कहकर चित्रित करते हैं, उसे नफा खोर सेठों की अपनी सगी माई' के रूप में देखते हैं। नागार्जुन की काव्य चेतना का स्वरूप यथार्थ वादी है वह भावुकता से कोसों दूर है।

अयथार्थवादी भावुकता के बलबूते पर नागार्जुन जैसा समर्थ व्यंग्य लिखना

असंभव है। कुछ विद्धान खुलकर नागार्जुन के विचारों को पूंजीवाद का पिछलगुवा नहीं कह पाते। वे अपनी व्याख्या में दूसरे प्रकार का कौशल दिखलाते हैं। उदाहरण के लिये विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की राय' नागार्जुन अपनी कविताओं में उस अभिजात मानसिकता का विरोध करते हैं जो मामूली आदमी की उपेक्षा करती है। इसी अर्थ में वे कवि की पक्षधरता को इतना तटस्थ और नकारात्मक नही मानते। वे मामूली आदमी की उपेक्षा करने वाले कुलीनतावाद का विरोध तो करते ही हैं, मुख्य बात यह है कि नागार्जुन इस मानसिकता के सामाजिक आधार को भी देखते हैं। वे यह देखते हैं कि वर्गविरोध वाले समाज में ऐसी मानसिकता अनिवार्यतः उत्पन्न होती है। यह मानसिकता मणिमय आभूषणों की चमक–दमक का प्रतिबिम्ब है और कोढ़ी–कुढ़ब तन को घृणा का पात्र समझती है, उससे वे केवल अभिजात मानसिकता के विरोधी नही बनते बल्कि इस मानसिकता को जन्म देने वाली समाज व्यवस्था के भी विरोधी बनते हैं।

नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होने श्रमिक जनता की आधार भूमि से समाज के प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समस्या पर दृष्टिपात किया है। 'वे और तुम' कविता के उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है, कविता यहाँ पूरी उद्धत है–

वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन ?
उनीदीं घड़ियों में चुरती है
वे हुलसित हैं
अपनी ही फसलों में डूब गये हैं
तुम हुलसित हो
चितकबरनी चाँदनियों में खोये हो
उनको दुख है
तरूण आम की मंजरियों को पाला मार गया है
तुमको दुख है [20]
काव्य संकलन दीमक चाट गये हैं।

कविता में दो खण्ड है। पहला खण्ड मजदूर और मध्य वर्ग को अपने सामने रखता है। दूसरा खण्ड किसान और मध्यवर्गीय बुद्विजीवी को ! दोनों खण्डों में सामान्य है मध्यवर्ग, उसके मुकाबले में नागार्जुन ने क्रमशः मजदूर वर्ग और मध्यवर्ग के सामाजिक कार्यकाल को यानी श्रम–प्रक्रिया में उनकी भूमिका को, उनकी भौतिक चिंताओं–आकाँक्षाओं को और इनके परिणाम स्वरूप उनके सांस्कृतिक जीवन को (भौतिक परिस्थितियों के संस्कारगत परिणामों को) उभारते हैं। लोहा पीटने वाला– कठिन शारीरिक श्रम करने वाला – मजदूर पत्तर जोड़ने की चिंता में रहता है। फिर भी ठहाके लगाता है। वह अपनी जिंदगी की घुटन को ठहाकों में घोलकर कुंठाओं से बचाता है। जिंदगी के घुटन उसके कठिन संघर्षो का परिणाम है। और ठहाका श्रम–प्रक्रिया से जुड़ने पर मिलने वाले नैतिक तेज का परिणाम है। इसी तरह दूसरे खण्ड में दो प्रसंग है। अपनी मेहनत से फसल पैदा करने वाला वह किसान खेत में अपने श्रम को फलीभूत होते देखकर हुलसित होता है। और आम की नयी मंजरियों पर पाले का प्रकोप देखकर उसे आघात पहुचाँता है। मजदूर–किसान की ये चिन्तायें उनके सुख–दुख अनुभूतियाँ उनके भौतिक श्रम से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ी है। इसे नागार्जुन अपनी दृष्टि और संवेदना का आधार बनाकर इसके मुकाबले मध्यवर्गीय जीवन को रख देते है।

स्पष्ट है कि नागार्जुन की चेतना मध्यवर्गीय दृष्टिकोण पर नही,श्रमजीवी किसान, मजदूर के दृष्टिकोण पर आधारित है। इसी दृष्टिकोण से वे मध्यवर्ग पर भी कविता लिखते हैं। जहाँ मध्यवर्गीय जीवन की घुटन और विवशता का चित्र खींचते हैं, वहाँ भी अपने इस विवेक को तिलांजलि नहीं देते । गौर करने की बात है कि धर्म और अतीत की परंपरा के बारे में नागार्जुन जिस आलोचनात्मक विवेक से काम लेते है, वही समकालीन जीवन और राजनीति के बारे में उनके चिंतन के केन्द्र में प्रतिष्ठित है।

नागार्जुन के बारे में वास्तविक सवाल यह उठाया गया कि घुमक्कड़ी और फक्कड़पन से बने अपने यायावर व्यक्तित्व के बावजूद वे श्रमिक जनता की संवेदना और दृष्टि को अपनी काव्य–चेतना का स्रोत और आधार कैसे बना सके हैं। अज्ञेय की एक कविता है 'दूर्वाचल' इसमें उन्होने यायावर के जीवन को उसकी स्वाभाविक वृत्ति और उसके रागात्मक संसार को चित्रित किया है।

पार्श्व गिरि का नम्र नीड़ो में
डगर चढ़ती उमंगो सी ।
बिछी पैरो में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
विहग शिशु मौन नीड़ो में
मैने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलासा पुनः आऊँगा।
भले ही बरस दिन अनगिन युगो के बाद।
क्षितिज ने पलक सी खोली।
तमककर दामिनी बोली–अरे यायावर रहेगा याद?[21]

जीवन विधि और रागात्मक संसार के बीच विरोध दिखाकर अज्ञेय ने जिस पीड़ावाद का संकेत दिया है वह नागार्जुन का पक्ष नही है। लेकिन हर जगह भटकने के वाला 'ययावर' नागार्जुन के सन्दर्भ में 'यात्री' प्रत्येक स्थान से प्रत्येक वस्तु से संयुक्त होता है। संसक्ति अनुभव कहता है यह पक्ष उनमें अत्यंत उन्नत स्तर पर विद्यमान है। वे प्रकृति के साथ–2 मनुष्यों से भी अपनापा महसूस करते हैं। इमरजेंसी में जेल–प्रवास के दिनों में उन्होनें एक कविता लिखी थी 'प्रतिबद्ध हूँ। भ्रमवश लोग प्रतिबद्व, सम्बद्व और आबद्व को एक मानकर इसकी गलत व्याख्या करते हैं। नागार्जुन ने इसमें तीन खण्ड लिखे हैं, जिनमें क्रमशः अपनी प्रतिबद्धता, संबद्धता और आबद्धता स्पष्ट की है। दूसरे खण्ड में उन्होंने लिखा है;

संबद्ध हूँ, जी हाँ संबद्ध हूँ–
सचर–अचर सृष्टि से........
.....पल अनुपल से, ग्रह–उपग्रह से, नीहारिका–जल से
अथ से, इति से, अस्ति से, न स्ति से......
सबसे और किस–किस से[22]...
(खिचड़ी विप्लव देखा हमनें पृ.57)

संसार में जो कुछ है, नागार्जुन उससे संबद्ध हैं। सबसे और किसी से नहीं यह रहस्यवाद नहीं है, उनका बेलागपन है। बेलागपन उन्हें पीड़ावाद के दलदल में जाने से रोकता है, वह उन्हें 'अह अहंगुहावासी' होने से रोकता है। नागार्जुन की यायावरी और उनकी बेलाग, संपृक्ति दोनों अभिन्न है। उनकी यह संवेदना उनके प्रखर

राजनीतिक विवेक से जुड़कर उनकी काव्य–चेतना को एक नये धरातल पर पहुँचाती है। इस धरातल पर पहुँचकर नागार्जुन लोककवि के आसन से उठकर हिन्दी के जातीय और भारतीय जनता के प्रति राष्ट्रीय कवि का गौरववाद प्राप्त करते हैं। उनके कवि व्यक्तित्व के इस स्वरूप को नियंत्रित और निर्धारित करने वाली शक्ति है उनकी क्रांतिकारी आस्था, उनका सहज अनुभव विवेक और सजग वर्ग–दृष्टिकोण।

नागार्जुन की जातीय भावना और राष्ट्रीय चेतना उनके श्रमिक वर्गीय दृष्टिकोण पर आधारित है, इसलिए उनके काव्य में मजदूर किसान के सांस्कृतिक जीवन के तत्व पुष्कल रूप में मौजूद है। श्रम–प्रक्रिया से उत्पन्न नैतिक तेज जिस जिंदादिली के रूप में प्रकट होता है उसके कई स्तर हैं। एक स्तर है, जीवन की विषम परिस्थितियों में भी हँसना–तनाव और घुटन की ग्रस्तता को हावी न होने देना। 'तुम और मैं' कविता में श्रमिक जनता के ठहाकों का उल्लेख करके नागार्जुन इसी तथ्य की ओर इशारा करते हैं। कलकत्ता में कुली–मजदूरों के ''कत्थई दाँतों की मोटी मुस्कान'' बेतरतीब मूंछो की थिरकन देखकर नागार्जुन हुलसित होते हैं। और ट्राम में उनके पास खड़े भद्रजन की दुविधा को देखकर खुद ही मजाक बनाते हैं–''घिन तो नहीं आती है ? जी तो नहीं कुढ़ता है ? ''यह परिहासवृत्ति नागार्जुन के व्यंग्य की जान है उनकी इस वृत्ति के पीछें जनता से उनके गहन अपनापे का सुदृढ़ आधार है। इसलिये उनका व्यंग्य चिढ़ाने वाला, तिलमिलाने वाला और हेकड़ी दिखाने वाला है, ऐसा वे नहीं करते है जहाँ किसी तरह की असंगति देखते हैं। डा. नामवर सिंह जब इस व्यंग्य और किसी तरह की परिहास–वृत्ति को 'गंभीर बातचीत में हल्के–फुल्के प्रंसग के रूप में देखते है। तब निराला की 'सरोज–स्मृति' में 'चमरौधे जूते' का प्रसंग देखकर उनकी संस्कार ग्रस्त भावनास आहत होती थी इधर उनका ख्याल बदला है। वे अब मानते है कि ''कबीर के बाद हिन्दी में नागार्जुन से बड़ा दूसरा व्यंग्य कार पैदा नहीं हुआ। ''यह अलग बात है कि पहले कबीर पुरानी बात जान पड़ते थे, उनकी जगह निराला को प्राप्त थी, हिन्दी में व्यंग्य या तो निराला ने लिखे हैं या नागार्जुन ने।'' अब निराला अपदस्थ हो गये हैं, उनकी जगह कबीर आ गये हैं। नागार्जुन अवश्य जहाँ के तहाँ बने हुये हैं। प्रकट हुआ कि नामवर सिंह नागार्जुन को स्थायी रूप से व्यंग्यकार मानते हैं। डा. रामविलास शर्मा आधुनिक साहित्य में व्यंग्य और परिहास की कला को भारतेन्दु और बालमुकुंद गुप्त की परम्परा से जोड़ते हैं। वे इसे कृषक जनता की जिंदादिली के रूप में देखते हैं। वस्तुतः व्यंग्य और परिहास का यह गुण

हिन्दी जाति का और पूरे भारत की किसान–मजदूर जनता का अपना गुण हैं जिसे आत्मसात करके ही नागार्जुन जनकवि बने हैं।

नागार्जुन की जिंदादिली का दूसरा स्तर है कठिन परिस्थितियों में अडिग साहस और धैर्य का। उनका यह गुण भी जनता के प्रति उनके अगाध प्रेम और विश्वास का परिणाम है। नागार्जुन जिस जनता कं कवि हैं उसका जातीय विकास देशी सांमती उत्पीड़न और विदेशी आत्तायियों के विरूद्व संघर्ष के क्रम में हुआ है। यह सही है कि जिस युग के कवि नागार्जुन हैं उसमें हिन्दी प्रदेश का जीवन क्रांतिकारी उत्साह देने वाला उतना नहीं, जितना व्यंग्य की सामग्री देने वाला है, नागार्जुन क्रोध या आदेश कविताओं की तुलना में व्यंग्य वाली कविताओं की सफलता का विश्लेषण करते हुये डा. रामविलास शर्मा ने लिखा था "इसका एक वस्तुगत कारण यह है कि विहार और उत्तर प्रदेश में राजनीतिक जीवन जैसा है–विशेष रूप से वामपंथ की जैसी स्थिति आज है–उससे कवि को क्रांतिकारी उत्साह के बदले व्यंग्य के लिये ही सामग्री अधिक मिलती है।

नागार्जुन ने ज्यों–ज्यों इस वस्तु स्थिति को समझा है, त्यों–त्यों उनका शेष व्यंग्य पर ही अधिक निर्भर हुआ है। लेकिन उनका शेष भी उसी अनुपात में बढा है। इसमें सन्देह नही उनकी चिंता इतनी ही नहीं है कि जीवन जैसा है उसी के अनुरूप कला की रचना का तरीका भी विकसित कर लिया जाय। वे इन परिस्थितियों में जनता की खासकर वामपक्ष की असंगठित अवस्था से चिंतित हैं। वे समझते हैं कि जब तक संगठित होकर मजदूर–किसान संघर्ष न चलायेगें तब तक यही दशा बनी रहेगी। इसलिये उनमें एक तरफ उत्तरोत्तर व्यंग्य निर्भर हुआ है और दूसरी ओर उसने उन्हें अपनी कला की सार्थक भूमिका की खोज के सवाल में भी टकराने को प्रेरित किया है। फलतः उनका रोष कहीं सात्विक स्वाभिमान के रूप में प्रकट हुआ है, कही व्यंग्यपूर्ण हेकड़ी के रूप में। 1976 में इर्द–गिर्द संजय के मेंले जुटा करेगें, कविता में उन्होने लिखा है–

> किधर नही है सेठ, भूमिपति किधर नही है ?
> कौन कहेगा शातिर गुण्डे इधर नही हैं।
> देवि तुम्हारी प्रतिमा से मै दूर खड़ा हूँ
> छोटा हूँ, पर उन बौनो से बहुत बड़ा हूँ[23]

सन् 77 के चुनाव के बाद इस 'देवि' की पराजय पर उन्होनें मानो चिढातें हुये लिखा;

कल तो बाघों पर सवार थी, पड़ी हुई है आज धूल में
दिखते होगे विष के कीड़े हाय उसे अब धूल में [24]

इससे उनके सात्विक और उत्कट रोष की भावना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। 1995 में नागार्जुन ने कवि की हैसियत से अपनी भूमिका पर विचार किया था–"जनता मुझ से पूछ रही है क्या बतलाँऊ ? जनकवि हूँ मै साफ कहूगा क्यों हकलांऊ ?" आगे चलकर उनकी यथार्थ वादी चेतना का जैसे जैसे अधिक निखर हुआ उन्होने हिन्दी प्रदेश की जनता की वस्तु स्थिति समझकर अपनी कला को भी नये दायित्व बोध में जोड़ा। अपनी कविताओं में इस चुनौती को व्यावहारिक रूप में ढालते हुये उन्होने 1979 में कहा;

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का
जन–मन में जो उर्जा भर दे मै उद्‌गाता हूँ, उस रवि का[25]

स्वभावतः उनकी प्रतिहिंसा भी उनकी क्रांतिकारी चेतना का सकरात्मक पक्ष है। नागार्जुन की वाणी में हकलाहट कभी नहीं थी। अंतर केवल यह आया कि उन्होने अपने रोष और जनता की स्थिति को संगत ढंग से समझा है। इसलिये वे अपने रोष को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करके जन–जन में ऊर्जा भर देने के लिये उद्यत् हुये हैं। वे अपने इस प्रयास में सफल हुये है। 'हरिजन गाथा' उनकी इस सफलता का उत्कर्ष है। हरिजन दहन की पार्श्विक पृष्ठ भूमि में एक 'श्याम सलोने' शिशु का जन्म होता है। जब वह गर्भ में था, तथा उसके जनक की हत्या हो गई थी। माताओं के भ्रूण तक इस जुल्म से इतने बेचैन हो गये कि भीतर ही भीतर चक्कर लगाने लगे। बाहरी दुनिया में इन अत्याचारों का वाजिब प्रतिरोध नही है। नागार्जुन दिखाते हैं कि इन भ्रूणों ने सूक्ष्म रूप में यह विपक्ष झेली है इसलिये नव जातक अपनी हथेलियों में बरछा भाला बम वगैरह के निशान लेकर पैदा हुआ है। इस बच्चे का भविष्य बाँचने के लिये संत गरीबदास का रूप धारण करके खुद नागार्जुन पहुंच जाते हैं–

अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलम मिटायेगे धरती से
इसके साथी और संघाती[26]

आड़ी तिरछी रेखाओं में हथियारों के जो निशान है, वे दमन की पीड़ा और भविष्य की संभावना को एक बिन्दु पर जोड़ते हैं। यह बालक दमन के पाशविक वातावरण में पैदा हुआ है और

खान खोदने वाले सौ–सौ मजदूरों के बीच पलेगा
युग की आँचो में फौलादी साँचे सा यह वही ढलेगा[27]

नागार्जुन की यथार्थ वादी चेतना जनता के साथ किस सक्रियता से आबद्ध है इसे 'हरिजन गाथा' में भली भाँति देखा जा सकता है। जुल्म के समकालीन वातावरण में भविष्य का स्वप्न अंकित करके नागार्जुन केवल नारेबाजी वाले अतिरिक्त जोश से नहीं बचे हैं, वरन् उन्होंने जिस कलात्मक संयम का परिचय दिया है, उससे उनकी यथार्थ वादी चेतना के काव्यात्मक उत्कर्ष की सूचना मिलती है।

इस अध्ययन से पता चलता है कि नागार्जुन की काव्य चेतना में उनके व्यक्तित्व के सचेत और अचेत पक्ष उनका अनुभव संवेदन और विचार ज्ञान, अविभाज्य रूप सन्निहित हैं। उनकी यथार्थ चेतना केवल बौद्धिक नहीं है, उसमें उनका भावव़ोध, उनका रागात्मक अंतःसंसार पूरी तरह विद्यमान है। इसलिये वे मानव जीवन के प्रति यथार्थ वादी इतिहास बोध का विकास करते हैं। और साथ ही साथ मानव जीवन और प्रकृति के सम्बन्धों के बारे में वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का परिचय देते हैं।

किसान कुल में जन्म लेने वाले कवि का प्रकृति से अंतरंग परिचय और सघन लगाव हो, यह स्वभाविक है। छायावाद के बाद नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल जितने रूपो में और जितने स्तरों में प्रकृति से उत्प्रेरित होते है, उतना और कोई कवि नही होता। अपने गाँव से देश से दूर पड़े हुए जब नागार्जुन अपनी पत्नी का 'सिंदूर तिलकित भाल' याद करते है, तब काम का उत्साह उतना नही प्रदर्शित करते जितना उस गाँव से उस देश से अपनी ममता व्यक्त करते है। आत्मगतः अनुभूति को वस्तुगतः सार्वनमीन–धरातल पर पहुँचाने के अपने सफल संघर्ष में जब उन्हें पत्नी का 'सिंदूर तिलकित भाल' याद आता है, तब साथ साथ,

याद आते है स्वजन
जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख
स्मृति विहंगमय की कभी थकने न देती पाँख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम

याद आतीं लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू–भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदनी और तालमखान
यााद आते शस्य–श्यामल जनपदों के
नाम–गुण अनुसार ही रक्खे गये वे नाग
याद आते वेणुवन के नीलिमा के निलय अति अभिराम[28](ना. रचना.1, पृ.41–42)

जाहिर है कि पत्नी का प्रेम इस संपूर्ण परिवेश से जोड़ने वाला है। मिथिला की प्रकृति वहाँ के लोग पत्नी याद आते ही कवि के लिए फालतू और निरर्थक नही बन जाते। प्रेम इन सबसे संपृक्ति का निमित्त बन जाता है। इस तरह, पत्नी वहाँ की प्रकृति और मानव समाज के बीच से उभरने वाला प्रतीक बन जाती है।

नागार्जुन के काव्य विवेक का क्रांतिकारी पहलू यह है कि वे प्रेम और देश–प्रेम को आजकल के कुछ 'क्रांतिकारियों की तरह केला खाकर सड़क पर फेंक दिया गया छिलका नहीं मानते। अपने देश और जनपद की प्रकृति से उनका प्रेम उनके पारिवारिक प्रेम और देश प्रेम को एक समग्र रागात्मकता में बाँधने वाला अंतःसूत्र है। इसलिये नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद आवारागर्द नहीं बनते बल्कि गहरे दायित्व–बोध से संपन्न भावना से परिचित होते हैं। वे बहुत दिनों के बाद जब अपने गाँव जाते हैं तब जी भरकर 'पकी सुनहली फसलों की मुस्कान' देखते है,

'अपनी गँवाई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल' छूकर अपूर्व कृतार्थता अनुभव करते है। वे वहाँ रहते है, वहाँ के एक–एक पेड़ पौधे की प्रकृति को पहचानते हैं।

नये–नये हरे–हरे पात......
प्रकृति ने ढक लिये अपने सब गात
पोर–पोर डाल–डाल
पेट पीठ और दायरा विशाल
ऋतुपति ने कर लिये खूब आत्मसात.......[29]

वर्षा और बादल नागार्जुन की संवेदना को अनेक रूपों में उद्दीप्त करते हैं। हेंमत के बादल चार दिनो के रईस है, जैसे तुरंत बोनस पाया हुआ मजदूर , वे किसी

को चिढाने नही अपनी मौज में यहाँ–वहाँ शीतल बूँदे टपकाते जाते है। मानव जीवन और स्वभाव के साथ प्रकृति को जोड़कर देखने की अपनी संवेदना को प्राकृतिक उपादानों से भी अधिक व्यक्त कर देने की, तथा जिन्हे प्रकृति या ऋतुओ का ज्ञान न हो, उनके लिए भी उपनी कविता ग्राह बना देने की कला नागार्जुन में अद्वितीय है। हेंमती बादलो से भिन्न संदर्भ देकर बदलियों के बारे में वे लिखते हैं।

पवन ने बहका लिया था
मेध कुल की पुत्रियां है।
बदलियां है
..ओफ इनसे क्यों डरे हो ?
–कहाँ इनमे बिजलियां है।[30]

प्रकृति से नागार्जुन का ऐसा रिश्ता है कि बंसत की अगवानी करते है। निराला ने अपने संघर्षो की समीक्षा करते हुये लिखा था–

ईर्ष्या कुछ नही मुझे यद्यपि
मै ही वंसत का अग्रदूत
ब्राम्हण समाज में ज्यों अछूत,
मै रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।[31]

निराला पर अपनी प्रसिद्ध कविता 'दधीचि निराला' में नागार्जुन ने उनका मूल्यांकन इस प्रकार किया था–

हे नीलकंण्ठ चुपचाप तुम युग की पीड़ा पी रहे।
बस, लोकोदय की लालसा लिये कथचिंत जी रहे।[32]

निराला ने अपने को 'बंसत का अग्रदूत' कहकर अपना जो मूल्यांकन किया था, नागार्जुन ने उसे स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि अगली पौध के अग्रदूत की तरह बढाकर इस बसंत की अगवानी भी की। निराला काव्य–कला में पारंगत थे, पर रिक्त हस्त थे, आर्थिक पथ पर अनर्थ लिखकर ही स्वार्थ–समर में लगातार हारते रहे थे। इसका यह मतलब नही कि अर्थागमोपाय नही जानते थे, जानते थे, फिर भी ब्राम्हण समाज के धूर्तो से होड़ करने की क्षमता उनमे न थी। वे इतने छोटे थे कि उनसे होड़ लेने की बात निराला सोच भी नहीं सकते थे। निराला अन्न नही छीन सकते थे। 'बंसत की अगवानी 'कविता में नागार्जुन दिखाते हैं कि सरस्वती उन लोगो को धूर्त

कहती है जिन्होने लक्ष्मी से उनके झगड़े की बात फैला रखी है। इन धूर्तो ने लक्ष्मी को अपने वश में कर लिया है। लक्ष्मी इन धूर्तो की कैद से आजाद होकर ही सरस्वती से मिल सकती है। तब बंसत के अग्रदूत को काब्य–कला–प्रवीण होकर रिक्तहस्त रहने की नौबत नही झेलनी पड़ेगी। नागार्जुन अपनी कविताओं में इस सुखमय भविष्य का स्वप्न अंकित करते हैं। जब तक यह भविष्य अग्रदूत की तरह अर्थागमोपाय जानकर भी स्वार्थ समर में संकुचितकाय रहने का रास्ता अपनाते हैं, अपनी कविताओं के जरिये जन–जन में उर्जा भरने का संकल्प लेते हैं, अपने रोष को जनता के रोष में परिणत करने का प्रयत्न करते हैं, जीवन को स्वार्थ का खंडन करते हुये जनता में प्रेम–सौन्दर्य उल्लास की स्वस्थ कृत्तियाँ जागृत करते हैं। नागार्जुन की काव्य–चेतना का उनके युग और जीवन की परिस्थितियों से यह रिश्ता है कि निराला के यहाँ निराशा पराजय अंधकार के चित्र अधिक प्रभावशाली है और नागार्जुन के यहाँ आशा, विजय और विश्वास का स्वर अधिक शक्तिशाली है। निराला के काव्य में दार्शनिक चिंतन की गहराई बहुत अधिक है। उनकी निराशा और पराजय की भावनाएँ अंतिम वर्षो में दृढ़ हुयी है। लेकिन इस स्वर के पीछे दुर्दभ संघर्ष की अविचल पार्श्वभूमि है, इसलिये उनका प्रभाव निराशावादी और पराजयवादी नहीं है। नागार्जुन में दार्शनिक चिंतन की वह गहराई नहीं है, उनके राजनीतिक विचारों में भी उतार–चढ़ाव आता है। लेकिन जनता के जीवन से उनका सक्रिय और अटूट नाता है, समाजवाद के महान ध्येय के प्रति समर्पित अपने संघर्षो में उन्हें आस्था है, जनता के कर्म, संघर्ष और परिवर्तन की क्षमता पर उन्हें भरोसा है, वे जीवन संग्राम में विश्वासपूर्वक उतरने की प्रेरणा देते हैं, इसलिये दार्शनिक स्तर पर निराला के समकक्ष न पहुँचकर भी वे निराला की यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाते हैं।

स. काव्यगत सोच और संवेदना के बदलते मापदण्ड और कवि नागार्जुन :

प्रगतिशील काव्यधारा में नागार्जुन के महत्व पर विचार करते हुए कई सवाल उठते हैं। प्रगतिशील काव्य का भारतीय जनता के जीवन से क्या और कैसा संबंध है? नागार्जुन के काव्य में प्रगतिशील साहित्य के मूल्य किस हद तक व्यक्त हुए हैं ? प्रगतिशील कविता के विकास में नागार्जुन का क्या योगदान है ?

नागार्जुन अन्य प्रगतिशील कवियों से किस रूप में भिन्न या विशिष्ट हैं ? हिन्दी में प्रगतिशील काव्य का आविर्भाव 1935–36 में हुआ। उस समय देश अंग्रेजों का गुलाम था। भारतीय जनता अनेक स्तरों पर अपनी आजादी के लिये लड़ रही थी। प्रगतिशील साहित्य जनता की इस साम्राज्यवाद–विरोधी भावना का साहित्य है। राजनीतिक स्तर पर उसकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का संबन्ध मार्क्सवादी विचारध ारा और गैर मार्क्सवादी–राष्ट्रीय जनवादी–प्रवृत्तियों से है। साहित्यिक स्तर पर इस भावधारा का सम्बन्ध भारतेन्दु युग से लेकर छायावाद तक की पुष्ट साम्राज्यवाद–विरोध ी परम्पराओं से है।

हिन्दी रंगमंच पर जब प्रगतिशील साहित्य का पदार्पण हुआ तब अनेक विचारों–संस्कारों के लेखक उससे जुड़े। यह एक जानी–मानी बात है कि आधुनिक कथा साहित्य के जनक प्रेमचन्द तथा छायावाद के सबसे दृढ़ स्तम्भ निराला और पंत ने अपने रचनात्मक और व्यक्तिगत सहयोग से प्रगतिशील साहित्य के विकास में कैसी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। छायावाद के साथ–साथ गया प्रयाद शुक्ल 'सनेही' और उनके मण्डल के जो लेखक मार्क्सवाद का प्रभाव लेकर देश की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था पर भावुकता पूर्ण ढंग से काव्य–रचना कर रहे थे, उन्होंने भी प्रगतिशील साहित्य के विकास में सहायता पहुंचायी। इनके साथ–साथ सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनंद आदि तरुण मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों ने भी उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। इनसे भिन्न, गांधीवादी ढर्रे पर काव्य रचना करने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी मार्क्सवादी विचारों को विषय बनाकर 'जयिनी' आदि कविताओं की रचना की। इसमें उन्होंने सिद्ध किया कि जिसे पूंजी कहते हैं वह दूसरों को ठगकर जोड़ी जाती है। वह जिन श्रमिकों की मेहनत की कमाई होती है

उन्हीं के साथ पूंजीपति दासों जैसा वर्ताव करते हैं। छायावाद ओर प्रगतिवाद की युगसंधि पर दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल आदि की जो रोमांटिक धारा उत्पन्न हुई थी, वह भी कमोवेश प्रगतिशील साहित्य की मुख्यधारा से जुड़ गयी। प्रगतिवाद का यह प्रभाव कैसा था, इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि आगे चलकर प्रयोगवाद नई कविता आदि व्यक्तिवादी–कलावादी साहित्य का उत्थान करने वाले लेखक भी खुद को उसके प्रवाह में बहने से रोक नहीं सके थे। लक्ष्मीकांत वर्मा की राय है कि सभी लेखक इसलिये एकजुट हुये कि कम्युनिष्ट पार्टी और उसके लेखक संघ (प्र. ले. सं.) संघ ने जैसे सांस्कृतिक आन्दोलन छेड़ रखा था, इससे जुड़े बिना न प्रचार मिल सकता था, न प्रतिष्ठा ही संभव थी।

इससे प्रकट है कि प्रगतिशील काव्यधारा ने देश की सभी साम्राज्यवाद–विरोधी सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को सूत्रबद्ध करके ऐसा कार्य किया कि उसके विरोधी भी अपने–अपने कारणों से खुद को उससे दूर रखने में कठिनाई अनुभव करने लगे। जिस तरह साम्राज्यवाद–विरोधी स्वाधीनता संग्राम के अनेक स्तर थे, उसी तरह प्रगतिशील कविता के भी अनेक स्तर थे। कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाला स्वाधीनता संग्राम समझौतावादी नीति का अनुसरण करता था। कांग्रेस के पीछे बड़े पैमाने पर किसान मजदूर अवश्य थे, लेकिन उसका नेतृत्व पूंजीवादी नेताओं के हाथ में था, क्रांतिकारियों के नहीं। भारतीय पूंजीपति वर्ग मुख्यतः उत्पादन करने वाला वर्ग है। उसे अपना माल बेचने के लिए बाजार की जरूरत होती है। अंग्रेज अपने माल की बिक्री और ब्रिटेन को कच्चे माल की सप्लाई के लिये भारत को पिछड़ी हुई मण्डी बनाकर रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यहाँ जमींदारी प्रथा का चलन लागू किया था और पुराने भारतीय उद्योग–धन्धों का नास किया। स्वभावतः कांग्रेस के पूंजीवादी नेतृत्व का अंग्रेजी राज से अंतर्विरोध था।

हम सभी अपने व्यावहारिक अनुभव से जानते हैं कि श्रम और संपदा में जन्मजात वैर होता है। भारत में पूंजीवाद का जो विकास अंग्रेजी राज में हुआ, उसकी प्रगति धीमी थी, लेकिन मजदूर किसान से उसके हितों का टकराव विद्यमान था। फलतः कांग्रेसकी साम्राज्य–विरोधी भूमिका की अपनी सीमाएं थीं। वह अंग्रेज शासकों और सामंती महाप्रभुओं के गठबन्धन से तटस्थ रहकर निर्णायक संघर्ष चलाने के पक्ष में नहीं थी। वह उसी हदतक अंग्रेजों से लड़ना चाहती थी जिस हद तक मजदूर–किसानों

के संघर्ष को काबू में रखने के लिये समझौते की गुंजाइस बनी रहे। यह अकारण नहीं है कि गांधी जी ने असहयोग और सत्याग्रह तो चलाया, लेकिन लगान बंदी का डटकर विरोध किया। उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर 'स्वदेशी आन्दोलन चलाया' उनका कहना था कि चरखे से सूत कात कर सारे देश को कपड़ा सुलभ किया जायेगा। लेकिन वे यह समझते थे कि ऐसा कर पाना हंसी–खेल नहीं है। बाकी सभी काम–काज ठप्प करके सिर्फ सूत कातकर कपड़ा बुना जाये तभी देश कपड़ा पहन सकता है। उसकी नीति यह थी कि 'विदेशी' के बहिष्कार से देशी उद्योग–पतियों के लिये बाजार बनेगा।

कॉंग्रेस के भीतर भी जो लोग उनकी इस नीति से असंतुष्ट थे, उन्होंने 'कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी' का निर्माण किया। इस दल के नेता थे आचार्य नरेन्द्र देव और श्री जयप्रकाश नारायण। ये लोग मार्क्सवादी नहीं थे लेकिन वे यह महसूस करने लगे थे कि ''मार्क्सवाद ही साम्राज्यवाद–विरोधी शक्तियों को उनके अंतिम ध्येय तक पहुंचा सकता है।'' साहित्य के क्षेत्र में 'हसं', 'जागरण', 'विश्वामित्र', 'आज' आदि अनेक पत्र–पत्रिकाओं में विभिन्न रुझान के लेखक अपने–अपने ढंग से समाजवाद, साम्यवाद, मार्क्सवाद आदि के महत्व पर प्रकाश डाल रहे थे। मार्क्सवाद के इस बढ़ते हुये प्रभाव से चिंतित होकर अंग्रेजों ने पाबंदियों का दौर शुरु कर दिया। उन्होंने कम्युनिस्ट विरोधी अभियान तेज कर दिया और कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया। श्री पट्टामि सीतारमैया ने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास' में बताया है कि 1930–34 के बीच अंग्रेजों ने 'राजद्रोह' के आरोप में 348 पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन पर कानूनी रोक लगायी थी। 'राजद्रोह' का मतलब यह था कि ये पत्र–पत्रिकायें स्वराज का पक्ष लेती हैं ; किसानों की मुक्ति, समाजवाद, नवजागरण आदि की चर्चा करती थीं।

प्रगतिशील साहित्य जनता के हित की तरफदारी करता है। देश की इस अवस्था से उसके तटस्थ रहने की कल्पना नहीं की जा सकती। उसमें स्वाधीनता का जो सपना देखा है वह देश की जनता में बढ़ते हुये समाजवादी विचारों से दृढ़ संबंधा रखता है। डॉ. रामविलास शर्मा ने कांग्रेस के स्वाधीनता संग्राम की असंगतियों पर तीव्र व्यंग्य के स्वर में लिखा है :

"देशभक्ति के काम में रुपये दिये हजार –
चमक उठा इस पुण्य से फिर खोया व्यापार।
न इसको लूट बताओ जी। (लोक युद्ध 28 अक्टूबर 1945)

शासक है अंग्रेज। उनके विरुद्ध देश भक्ति का संग्राम चला रही है कांग्रेस। सेठ विशेष ने हजार रुपये देशभक्ति के काम दिये। फिर भी व्यापार चमक उठा। इसके लिये शासक से परमिट–लाइसेंस बगैरह कैसे मिल गया ? इसी तरह जब 1946 में अंग्रेजी झण्डे के नीचे अंतरिम सरकार की स्थापना हुई और कांग्रेस के नेता गद्दी पर बैठ गये, तब श्री गिरिजाशंकर माथुर ने लिखा :

मेरी मानवता पर रक्खा गिरि कासा सत्ता सिंहासन,
मेरी आत्मा पर बैठा है विषधर–सा सामंती शासन,
मेरी छाती पर रखा हुआ साम्राज्यवाद का रक्त–कलश,
मेरी धरती पर फैला है मन्वंतर बनकर मृत्यु दिवस।[33]

नागार्जुन की कविताओं में मनुष्य के शोषण के तीनों रूपों–साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध तीव्र रोष का जो भाव दिखाई देता है, वह प्रगतिशील काव्यधारा से उनके अभेद्य संबंध का प्रमाण है।

आरम्भ में प्रगतिशील काव्य एक व्यापक साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षका काव्य था। समाजवादी विचारों के प्रभाव से उसमें साम्राज्यवाद से मुक्ति को सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति के साथ जोड़ कर देखा गया। आजादी मिलने पर साम्राज्यवाद के साथ ही साथ देशी सामंतों और उद्योगपतियों से भारतीय जनता का अंतर्विरोध उभर कर सामने आ गया। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण कांग्रेस ने जब अंग्रेजों से आजादी ली तब ब्रिटिश 'कामन्वेल्थ' में बने रहने और उसके आर्थिक संगठन 'स्टर्लिंग एरिया' से भारतीय अर्थतंत्र को जोड़े रखने का समझौता भी किया। यह बात भारत की साधारण जनता के हितों के अनुकूल नहीं थी। जो लोग मजदूर–किसान की कल्पना करते थे, उन्होंने इस समझौते का विरोध किया। नागार्जुन इन लोगों के साथ थे। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में इस समझौते से भारतीय जनता को होने वाली हानि का चित्रण किया है। जब रानी एलिजाबेथ भारत आईं तब नागार्जुन ने लिखा

आओ रानी हम ढोएगें पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की

आजादी की पहली वर्षगांठ पर उन्होंने 'जन्मदिन नये शिशु राष्ट्र का' कविता लिखी :

आज ही तुम मिल गये थे दुश्मनों से, गुनहगारों से,
छोड़कर संघर्ष का पथ
भूल कर अंतिम विजय की घोषणायें
भौंक कर लम्बा धुरा तुम सर्वहारा जनगणों की पीठ में[34]

जो साहित्यिकार 'सर्वहारा जनगणों' अपने विवेक की कसौटी नहीं मानते थे या प्रचार–प्रसार की लालसा लेकर प्रगतिवाद से जुड़े थे वे आजादी के बाद उससे अलग हो गये। इनमें से अनेक सरकारी संस्थानों से बड़े–बड़े सेठाश्रयी पत्र–पत्रिकाओं से जुड़ गये। इन्होंने प्रगतिशील साहित्य के विरुद्ध जोरदार संगठित अभियान चलाया उनके इस अभियान को '45'–46 से कांग्रेस द्वारा शुरू किये गये कम्युनिस्ट विरोधी अभियान से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस अभियान के फलस्वरूप नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल जैसे अनेक कवि, जो पहले अपने को घनघोर मार्क्सवादी कहते थे, मार्क्सवाद के विरोधी हो गये।

प्रगतिशील लेखकों में अनेक ऐसे थे जो समझते थे कि कांग्रेस से सहयोग करके उसके नेताओं का हृदय परिवर्तन कर देना चाहिए ताकि वे 'सर्वहारा जागरण' के प्रति अपने व्यवहार से दुःखी हों और विकास का सही रास्ता अपनायें। ये लोग, प्रगतिशील आन्दोलन के भीतर रहकर मांग करते थे कि विदेशी शासक के चले जाने से प्रगतिशील आन्दोलन की भूमिका खत्म हो गई, इसीलिए उसे भंग कर देना चाहिए। आज भी कुछ लोगों के चिंतन में इन गलत विचारोंका असर दिखायी देता है। इन लोगों में उन्हें भी गिनना चाहिए जो समझते हैं कि अंग्रेजों के चले जाने से प्रगतिशील आन्दोलन की जरूरत नहीं रह गयी इसलिए वह खत्म हो गया। इस तरह सोचने वालों के साथ मजेदारबात यह है कि इन्हीं में से ज्यादातर भारत में अंग्रेजी हुकूमत को बहुत प्रगतिशील मानते हैं। अगर अंग्रेज प्रगतिशील थे तो उनके खिलाफ प्रगतिशील आन्दोलनकी जरूरत क्या थी ? उसे वास्तव में अंग्रेजों के जाने के बाद शुरु होना चाहिए था। इन विचारकों की दृष्टि से यह छूट जाता है कि प्रगतिशील

आन्दोलन अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ कांग्रेस की नीति से नहीं चलता था, उसकी प्रेरणा का केन्द्र था भारत का किसान–मजदूर जिसे नागार्जुन ने 'सर्वहारा जनगण' कहा है। नागार्जुन के विचारों में इस तरह का अंतर्विरोध नहीं था। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, डॉ. रामविलास शर्मा आदि उन साहित्यकारोंमें थे, जो प्रगतिशील साहित्य के बाहर–भीतर सभी विरोधियों के गलत विचारों से संघर्ष कर रहे थे। जो लोग प्रगतिशील साहित्य के भीतर रहकर उसका विरोध करते थे, उन्होंने प्रयोगवाद नई कविता के प्रति वैसा ही ढुल–मुल रुख अपनाया, जैसा कांग्रेस के प्रेति।

बाहर–भीतर के इन विरोधियों से प्रगतिशील आन्दोलन की धारा क्षीण हुई प्रयोगवाद नई कविता का असर अधिक दिखने लगा। प्रगतिशील कवियों में मुक्तिबोध और शमशेर भी प्रयोगवाद नयी कविता के साथ चले गये। उन्होंने मार्क्सवाद से अपना संबंध नहीं तोड़ा, जैसा नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल ने तोड़ लिया। मुक्तबोध की प्रशंसा करते हुए बहुत से मार्क्सवादी लेखक कहते हैं कि वे नई कविता के भीतर प्रगतिशील जीवन–मूल्यों के लिये संघर्ष करते थे। यह संघर्ष कुछ–कुछ वैसा ही था जैसा कांग्रेस के भीतर 'सर्वहारा जनगण' के लिये संघर्ष। इससे कवि की ईमानदारी का पता अवश्य चलता है, साथ ही साथ उसकी भावुक अव्यावहारिक का भी पता चलता है। उनके संघर्ष से न तो 'नई कविता' प्रगतिशील दिशा में आगे बढ़ी और न ही प्रगतिशील काव्य आन्दोलन को बल मिला। नागार्जुन, केदार, रामविलास आदि अंत तक प्रगतिशील धारा के साथ रहे, प्रयोगवाद नई कविता के प्रवाह में नहीं बहे। इससे पता चलता है कि नागार्जुन उन दृढ़ रचनाकारों में एक थे जिन्होंने प्रगतिशील जीवन मूल्यों को स्वीकार करके अपने साहित्य की दिशा निश्चित की और अपनी रचनात्मक सक्रियता से प्रगतिशील साहित्य के विकास में निरन्तर सहयोग दिया। अन्य प्रगतिशील रचनाकारों से नागार्जुन की भिन्नता या विशिष्टता का मूल्यांकन करते समय उनके इस पक्ष को आँख से ओझल नहीं करना चाहिए।

इस परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन के रचनात्मक साहित्य का विवेचन करते समय मुख्यतः दो पहलुओं पर विचार करना चाहिए। एक तो यह कि प्रगतिशील काव्य धारा के अन्य कवियों की तुलना में नागार्जुन की चिंताएं, उनके सरोकार और उनका दृष्टिकोण कहाँ और कैसे विशिष्ट है दूसरा यह कि अन्य प्रगतिशील कवियों की तुलना में नागार्जुन के कवि–व्यक्तित्व का विकास किस दिशा में हुआ है।

नागार्जुन के कवि व्यक्तित्व का विकास उत्तरोत्तर यथार्थ वाद की ऊँचाइयों की

दिशा में हुआ है। छायावादोत्तर हिन्दी कविता में छायावादी रूझान से सर्वाधिक स्वतंत्र रहे हैं, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल। भारत भूषण अग्रवाल, नेचिचन्द्र जैन और प्रभाकर माचवे जैसे कवियों का संस्कार मूलतः यथार्थवादी था या भावुकतापरक और भाववादी, इसका स्पष्टीकरण इसी बात से हो जाता है कि उन्होंने जब मार्क्सवादी विचारों का व्यापक प्रभाव देखा तब उसके साथ जुड़ गये और प्रयोगवाद नई कविता के रूप में अस्तित्ववाद का जोर बढ़ा तब उसके साथ हो गये। भारत–भूषण अग्रवाल ने 'तार सप्तक' के पहले संस्करण के आत्म परिचय में डंके की चोट पर ऐलान किया। ''मार्क्सवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानता हूँ कम्युनिस्ट हूँ।'' यह 1943 की बात है लेकिन जब आजादी के बाद जब 'सप्तक' का दूसरा संस्करण (1966) निकला तब उसके 'परिचय' में उनके यह शब्द जुड़ गये, ''अब कम्युनिस्ट नहीं हूँ। यही नहीं, अब तो लगता है कि जब कहता था तब भी नहीं था।'' उन्होंने अपने व्यवहार से अपनी यह बात साबित कर दी कि 'स्थायी रह सकता नहीं' नीर स्थायी है बस उसका बहाव।''

नेमिचन्द्र जैन ने जहाँ अपने रुमानी और व्यक्तिवादी संस्कारों के बाहर निकल कर मार्क्सवादी ढंग से कविता लिखने की कोशिश की वहाँ अमूर्ति विचारों को और भी अमूर्त और उलझावदार बनाकर प्रस्तुत किया। 'चलो आगे चलो' कविता में मानव–अस्तित्व के विकास का रूपक लेकर द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद का सिद्धान्त–निरूपण इस प्रकार किया :

''तुम में है मेरे अस्तित्व का निषेध
पाकर तुम्हारा सम्पर्क
इस जीवन का नियम
संघर्षका
सक्रिय हो उठता है
.....तुम और मैं इस द्वन्द्व में होंगे समाप्त
.....और नूतन अस्तित्व उसमें से होगा निर्माण
एक नूतन अस्तित्व का .....'' इत्यादि।[35]

कविता हो तो उसमें निहित विचारों और भावों के विवेचन का सवाल भी पैदा हो ! शुक्ल जी कविता के लिये मनुष्य के भाव बोध की महत्ता पर जोर देते थे।

भावबोध के स्तर पर परिचित होकर विचारों में काव्यात्मक गरिमा आ जाती है। इससे कविता की रचना में अमूर्तता का दोष दूर हो जाता है। निराला और नागार्जुन की कविताओं से यह बात हमें सीखने को मिलती है। यह बात कमोवेश प्रभाकर माचवे पर भी लागू होती है। अपने मार्क्सवादी उफान वाले दौर में वे पेड़–पत्तों में भी 'पढ़ रहा हूँ लाल परचम की विजय। गढ़ रहा हूँ मृत्तिका मैं रक्तमय'' की भावना से आक्रांत रहते थे। लेकिन जब उससे दूर हुये तब उन्हें ''गांधी दिल के सहजाकर्षण, मार्क्स दिमाग की ओवरग्रोथ'' जान पड़ने लगे, और प्रगतिशील कविता में ''परिपीड़न प्रेम और प्रचार'' का अनुप्रास समागम दिखाई देने लगा।

नागार्जुन और केदार विचारों को दैनिक प्रयोग के वस्त्र नहीं समझते जिन्हें रोज बदला जाये। इस बात को शमशेर और मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष में भी बड़ी गम्भीरता से देखा जा सकता है। कारण यह है कि उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता संसार और प्रकृति के बारे में उनके व्यवस्थित द्वदिष्टकोण का नियामक तत्व है।

नागार्जुन और केदार की भिन्नता के अनेक स्तर हैं। नागार्जुन के इंद्रियबोध का स्वरूप उनकी इस पंक्तिसे समझा जा सकता है – ''बहुत दिनों के बाद बाप, अब की मैंने जी भर भोगे गंध–रूप–रस–शब्द–स्पर्ष सब साथ–साथ इस भू पर।'' शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गंध नागार्जुन की इंद्रियों पर संवेदना की बरसात करते हैं जिसमें नहाकर नागार्जुन चैतन्य होते हैं, ताजगी से भर उठते हैं और पुनः सामाजिक जीवन की गहमागहमी में उतर पड़ते हैं। केदार वस्तु की संवेदना–मर्म में प्रवेश करते हैं और अपने इंद्रियबोध भावबोध से संपृक्त करके उसे अभिव्यक्त करते हैं स्वभावतः उनमें रागात्मक प्रगाढ़ता का आयाम प्रमुख हो उठता है। ''माँझी न बजाओ वंशी, मेरा मन डोलता। मेरा मन डोलता है, जैसे जल डोलता है। जल का जहाज जैसे पल पल डोलता है। माँझी न बजाओ ......'' (फूल नहीं रंग बोलते हैं,) यह उनके मूलभूत रचनात्मक, अंतःसंसार को समझने के लिए सबसे सहायक कविता है। शमशेर के यहाँ अत्यंत सूक्ष्म इंद्रियबोध का संसार फैलता हुआ दिखता है। उनकी अनभूतियों का धरातल ऐसा है जहाँ शब्द–स्पर्श–रूप–गंध आदि एक–दूसरे में रूपांतरित होते हैं। ''जहाँ शमें डूबकर फिर सुबह बनती हैं। एक–एक और दरिया राग बनते हैं कमल कानूस रातें मोतियों की डाल'' इत्यादि। अथवा, ''आह, तुम्हारे दांतों से जो दूब के तिनके की नोक उस पिकनिक में चिपकी रह गई थी। आज तक मेरी नीदं में गड़ता है।''

इससे उनके काव्य का प्रभाव बहुत कुछ स्वप्नलोक या छायालोक जैसा पड़ता है। यहाँ से रहस्यवाद की दुनिया अधिक दूर नहीं है। शमशेर इस रहस्यवाद के क्षेत्र में भी थोड़ी दूर विचरण कर आते हैं, लेकिन रमते हैं अपने इसी संसार में इस संसार के भीतर वे जिन बिम्बों को ग्रहण करते या रचते हैं, उनका सम्बन्ध स्वप्न लोक की छाया से प्रभावित शमशेर के अंतरंग धरातल से है, इसलिए उनका झुकाव प्रतीकात्मकता की दिशा में है। केदार और नागार्जुन अपनी–अपनी विशिष्टताओं के बावजूद, इस स्वप्नलोक से दूर हैं। इसीलिए उनके काव्य में यथार्थवाद अधिक पुष्ट है, रूमानी संस्कार नगण्य हैं। केदार के यहाँ संवेदना का जो अंतरंग धरातल मिलता है, वह रूमानियत से इसीलिए अलग है कि उसका रचनात्मक प्रतिफल छायालोक की सृष्टि में नहीं होता, बल्कि संसार और एहिक जीवन की सार्थकता और काम्यता व्यक्त करने में होता है। उनकी यह विशेषता उनमें आद्यंत विद्यमान है। यह स्वस्थ धरातल है इसलिए उनके काव्य की प्रगतिशील आत्मा निरंतर अक्षण्ण बनी रही है। नागार्जुन का धरातल अधिक उभरता है। शमशेर के काव्य में उनके रूमानी और रहस्योन्मुख संस्कारों का उनके यथार्थवादी रुझान से अंतर्द्वन्द्व निरंतर चलता रहता है।

शमशेर, केदार और नागार्जुन में एक बात सामान्य है वे अस्तित्ववाद के प्रभाव से मुक्त हैं। नागार्जुन और केदार की काव्य–संवेदना का यथार्थवादी चरित्र उन्हें इस संस्कार से बचाता है। शमशेर के यहाँ एक विशेष प्रकार की आत्मनिषेध की हद को छूने वाली विनम्रता परिव्याप्त है जिससे उनकी समस्याएँ अस्तित्ववाद की ओर अभिमुख नहीं होतीं। कहा जा सकता है कि शमशेर की प्रगतिशीलता कुछ अंशों मे इस निषेधात्मक आधार से भी तय होती है। लेकिन उनकी प्रगतिशीलता का सबल पक्ष है उनका यथार्थवाद जो अपने प्रत्यक्ष अनुभव पर विश्वास रखता है, और जिसके केंद्र में उनकी करुणा है। कला की विशेष संरचना नफासत और बारीकी, शब्दों, चिन्हों और विशेष प्रकार के वाक्य–गठन आदि की प्रधानता के कारण अक्सर शमशेर की सह्रदयता उनकी करुणा उनके काव्य में प्रकट नहीं हो पाती। नागार्जुन और केदार के यहाँ यह समस्या नहीं है, इसलिए उनकी करुणा को उनके काव्य में अनेक स्तरों पर और अनेक रूपों मे मौजूद देखा जाता है।

मुक्तिबोध की स्थिति शमशेर से भिन्न है। उनके यहाँ शांत, सुंदर और सुरक्षित संसार नहीं है। उनके यहाँ जिंदगी के घुटनों से बहती हुई रक्तधारा है, कहीं आग

लग गयी है, कहीं गोली चल गयी है। मुक्तिबोध इस असुरक्षित दुनिया में है कि दुनिया को असुरक्षित छोड़कर खुद को सुरक्षित नहीं बना सकते। वे मुक्ति को अकेले का रास्ता नहीं मानते उनका यह चिंतन उनके मार्क्सवादी विवेक से प्रभावित है।

'तारसप्तक' के पहले संस्करण के अपने वक्तव्य में मुक्तिबोध ने कहा था, ''मानसिक द्वंद मेरे व्यक्तित्व में बहुमूल्य है।'' मार्क्सवाद के प्रभाव में आने से पहले ''मेरा व्यक्तिवाद कवच की भाँति काम करता था।'' मार्क्सवादी बन जाने के बाद उनके ये सहज संस्कार मानसिक द्वंद और व्यक्तिवाद खत्म नहीं हो गये। 1966 में 'तार सप्तक' का दूसरा संस्करण निकला। इसमें अपने सहज संस्कारों के बारे में मुक्तिबोध का यह कथन भी प्रकाशमें आया ''अचानक अंतर्मुख दिशाएँ और भी दीर्घ और गहन होती गयीं। किंतु यह भी एक तथ्य है कि इस आत्मग्रस्तकि बावजूद और शायद उसको साथ लिये लिये मेरा आत्म–संवेदन समान के त्यापकतर छोर छूने लगा।''

मार्क्सवाद के प्रभाव में आने के बाद भी अंतर्द्वद्व और व्यक्तिवाद अथवा अंतर्मुखता और आत्मग्रस्तता का बढ़ते जाना उतना 'अचानक' नहीं था जितना मुक्तिबोध कहते हैं। इसके साथ ही समाज की व्यापकतर छोर छूने की स्थिति भी है। बात दरअसल यह है कि मार्क्सवादी विचारधारा और वर्गदृष्टि ने मुक्तिबोध में अपनी अंतर्मुखत आत्मग्रस्तता यानी व्यक्तिवादसे बाहर निकलने के लिये उथल–पुथल मचा दी। उनके मार्क्सवादी विवेक ने जब उनके बहमूल संस्कारों अथवा अंतर्विरोधों को अनावृत कर दिया तब वे समाज के व्यापकतर छोर छूकर ही संतुष्ट नही होते थे बल्कि अपने मध्यवर्गीय संस्कारों से छुटकारा पाकर सामाजिक संघर्षो के खुद भी हिस्सेदार बनना चाहते थे। इसके लिये सबसे पहले उन्होने अपने मध्यवर्गीय संस्कारों से लड़कर उन्हें दूर करना आवश्यक समझा। उनके अन्तिम दिनों की रचना है 'अंधेरे में'। इस कविता में आत्म संघर्ष का जैसा चित्रण है उससे निष्कर्ष निकलता है कि जनता की कर्ममयी विचारधारा से परिचित होने पर व्यक्ति पहले अपने गैर मजदूर वर्गीय संस्कारों से लडकर उन्हें दूर करेगा तभी वह संघर्ष के सक्रिय मैदान में उतरेगा।

कविता का वाचक नायक–मैं– अंत तक अपनी 'परम अभिव्यक्ति' अनिवार, आत्मसंभवा' को खोजता रह जाता है। वह उसे पता नहीं कारण यह है कि विवेक की

प्राप्ति के बाद संस्कार परिवर्तन का आत्मसंघर्ष और तब कर्म, वह इस बिधि से संघर्ष करता है। इसके विपरीत, व्यवहारिक रास्ता यह है कि विवेक के साथ मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होता है। मुक्तिबोध कर्म को अन्तिम अवस्था मानते हैं, इसलिये अनका सारा संघर्ष आत्मगत धरातल पर चलता है। अपने आत्मसंघर्ष की इस असंगति के कारण ही वे बाहर नही निकल पाते उत्तरोत्तर अधिक उलझते जाते हैं इसलिये वे अस्तित्ववादी किस्म की समस्याओं से बार–बार टकराते है। उनकी यह अनवरत गहन होती हुयी आत्मग्रस्तता उनकी समस्या को अधिक उलझा रही है और साथ ही उनकी अभिव्यक्ति को भी प्रभावित कर रही है। दिनोंदिन उनकी अभिव्यक्ति बढ़ती गयी उसका यही कारण है।

'मुक्तिबोध के यहाँ सामाजिक जीवन के' खासकर निम्न मध्यवर्ग के अनेक सशक्त चित्र आते है। उनमें गहरी भावनात्मक अंतर्वेदना और वास्तविकता के स्पंदन की झलक मिलती है। लेकिन यह सारा चित्रण मुक्तिबोध के संघर्ष के आत्मगत् धरातल से गहरे तौर पर संबद्ध है। यथार्थ के इन चित्रों के जरिये वे अपनी आंतरिक समस्याओं को सुलझाने की कोशिश करते हैं। नागार्जुन और केदारनाथ से मुक्तिबोध की भिन्नता यही है कि ये दोनों कवि उस आत्मग्रस्तता के शिकार नही है जो मुक्तिबोधके काव्य की मुख्य समस्या है। नागर्जुन और केदार बाहरी दुनिया में रमते हैं, उस पर खुलकर अपनी आत्मगत प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हैं। लेकिन वे न तो यथार्थ जीवन की प्रक्रियाओं को आत्मगत धरातल पर घटित होता हुआ देखते–दिखाते हैं, न ही उसे आत्मगत भावों के आरोप सें विकृत और अतिरंजित करते हैं, जहाँ तक व्यक्तिवादी संस्कारों की बात है, नागार्जुन उसे आत्मसंघर्ष के स्तर पर नहीं सर्वथा विजातीय तत्व के रूप में देखते है–

संलित को सुधा बनाये तटबंध
धरा को मुदित करें नियंत्रित नदियाँ
तो फिर मैं ही रहूँ निर्बन्ध
मैं ही रहँ अनियंत्रित
यह कैसे होगा ?
यह क्यों कर होगा ?

मुक्तिबोध और शमशेर के अलावा जो प्रगतिशील कवि प्रयोगवाद–नयी कविता

की धरा में बह गये, उनमे गिरिजा कुमार माथुर महत्वपूर्ण हैं। उनकी काव्य संवेदना पर रूपानियत का असर पर्याप्त था, फिर भी उनके यथार्थवाद में भारत–भूषण–नेमिचंद्र–माचवे आदि से अधिक गहराई थी। उनका मार्क्सवादी विवेक उनके यथार्थवाद को बल देता था और उनकी भावुकता कहीं उसे सिक्त करती थी, कहीं उसका खंडन। लेकिन स्वाधीनता प्राप्ति के बाद वे अधिक दिनों तक प्रगतिशील आन्दोलन के साथ नही रह सके जहाँ नागार्जुन ने अंग्रेज– कांग्रेस समझौते पर व्यंग्य किया " आओ रानी हम ढ़ोयेगें पाली " और केदार नाथ ने कांग्रेसीन राज के दमन का चित्र ख़ींचा'

कामधेनु–सी काँगरेस अब
सुरसा जैसा मुँह बाए है
शासन के अधिकारी नेता
डायर की वर्दी पहनें हैं[36]

वहाँ माधुर ने 'शोषण से मृत' भारतीय समाज के लिये कांग्रेस –शासन को 'नयी जिंदगी' लाने वाली शक्ति के रूप में देखा और उनका 'यह विश्वास अमर है' शोषण और फूट की समस्या तब वे देखते थे, लेकिन उसके समाधान के लिये कांग्रेस से सहयोग की नीति पर अमल करने के समर्थक थे। मार्क्सवादी विवेक और भावुकता के बीच संतुलन जल्दी–2 बदलता था, इसलिये 1946 में अंग्रेजों से मिलीभगत करके गद्दी पाने वाली कांग्रेस की जो आलोचना माथुर ने की थी, सन् 47 में उससे भिन्न उद्गार व्यक्त किये।

स्वभावतः उनकी राह अलग होने लगी थी। औपचारिक रूप से उनका अलगाव 1953 के बाद हुआ, वे माचवे–नेमिचन्द आदि की तुलना मे अधिक देर से अलग हुये। नागार्जुन और केदार के राजनीतिक विचारों में उतार–चढ़ाव आते हैं, लेकिन उनकी दिशा नही बदलती, वे प्रगतिशील धारा से अलग नहीं हटते।

प्रगतिशील कविता के विकास और प्रचार–प्रसार में शिवमंगल सिंह 'सुमन' नरेन्द्र शर्मा और बच्चन आदि का भी कमोबेश महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बच्चन मुख्यतः छायावाद और प्रगतिवाद की युगसंधि पर स्थित हैं। उनमें रूमानी संस्कार इतने प्रबल हैं कि प्रकृति संबंधी कुछ सुंदर और 'बंगाल का अकाल' जैसी जीवंत यथार्थपरक कविताओं को छोड़कर वे और कहीं भी मधुशाला –मधुवाला से बाहर नहीं निकलते। उनका यह संस्कार दिनोंदिन अधिक विकृत हुआ है। यह रूमानियत

छायावाद की तुलना में पतनशील है, क्योंकि इसकी कोई क्रॉन्तिकारी भूमिका और सामाजिक उपयोगिता नहीं है।

नरेन्द्र शर्मा भी मूलतः इसी मनोभूमि के कवि हैं, लेकिन उनमे सामाजिक भावबोध अंचल–बच्चन से अधिक गहरा और व्यापक है, उसी अनुपात में उरमें विकृतियाँ कम हैं। उनके रूमानी काव्य में अंचल की तरह 'नग्न ऊषा' के पीछे 'यौवन मचा देने' वाली 'प्रगतिशीलता' के दर्शन नहीं होते, यह उसका स्वस्थ रूझान है। प्रगतिशील दौर में उन्होने 'बाल रूप है दाल साथियो सब मजदूर किसानों की' और 'यकुम मई' आदि अनेक रमणीय कविताऐं लिखीं। जहाँ उनकी वस्तुपूरक संवेदना उनके सहज संस्कार से मिल गयी है, वहाँ उनकी कविताओं में ओज और प्रवाह दिनकर से कुछ कम, अंचल बच्चन से बहुत अधिक दिखायी देता है। जहाँ यथार्थ उनके सहज संस्कार से एक मेल नहीं हुआ है, वहाँ उनकी कविताऐं हल्का प्रचार बनकर रह गयी है। उनके प्रगतिशील लेखन में इस तरह की कवितायें अधिक हैं, हालाँकि जन आंदोलनों में अपनी कारगर भूमिका निभाने के नाते उनकी सफल–असफल सभी कविताओं ने प्रगतिशील साहित्य को लोकप्रिय बनाने मे उल्लेखनीय योगदान किया।

डॉ0 शिवंमगल सिंह 'सुमन' इन सबमें अधिक समर्थ थे। उनमें यथार्थ जीवन की संवेदना अधिक है, जीवन की कटुताओं और अत्याचारों के प्रति आवेश भी अधिक है, इसलिये उनके काव्य में ओज और पौरूष भी अधिक है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के साथ आयोजित किये गये सांप्रदायिक दंगो की पृष्ठभूमि पर लिखी हुई 'सुमन' की इन पंक्तियों से उनकी यथार्थवादी संवेदना का स्वरूप समझा जा सकता है।

भाई की गर्दन पर भाई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है पुरखों के घर बँटवारा
एक अकड़कर कहता अपने मन का हम लेंगें
और दूसरा कहता तिलभर भूमि न बँटने देंगें
पंच बना बैठा है घर में फूट डालने वाला
मेरा देश जल रहा कोई नहीं बचाने वाला[37]

इस तरह की अत्यंन्त प्रभाव शाली कविताओं को छोड़कर उनकी अनेक रचनाओं में कलात्मक सौन्दर्य नागार्जुन और केदार से कम है, मगर 'दस हफ्ते दस–

साल हो गये मास्को अब भी दूर है।" आदि कविताओं ने अपनी व्यापक लोकप्रियता से प्रगति काव्य के प्रचार– प्रसार में जो भूमिका निभाई, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

नागार्जुन और केदार इन कवियों से अलग होते हैं अपनी संवेदनात्मक गहराई और कलात्मक श्रेष्ठता के कारण। सुमन–नरेन्द्र शर्मा आदि ने प्रगतिशील काव्य की रचना और उसके प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया। लेकिन नागार्जुन और केदार एकनिष्ठ होकर आज तक अपने सृजन के जरिये प्रगतिशील काव्य को नये रचनात्मक क्षितिजों परर पहुंचाते रहे हैं। वे वस्तुतः उसके मेरूदण्ड बन गये हैं। उनके साथ–साथ अनवरत् रूप से खुद को प्रगतिशील काव्य धारा से संबद्ध करके चले है, त्रिलोचन। त्रिलोचन की कविता में सुमन जैसा ओज और प्रवाह नहीं हैं वे कवि होने`क साथ शास्त्री भी है। कवि के रूप में उनके संस्कार किसान जीवन से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। आज कल के कुछ अंग्रेजी पढ़े–लिखे सिद्धान्त कार त्रिलोचन में किसान की पिछड़ी समझ' कहकर उसके इस गुण की निंदा करत हैं। त्रिलोचन अपने अमूर्त (और उलझे हुये) विचारों को मजदूर की विकसित समझ मानने का भ्रम नहीं रखते। उनके काव्य में जहाँ किसान जीवन के कर्म और संघर्ष, आशा और पीड़ा तथा शहर के उपेक्षित–पीड़ित व्यक्तियों के जीवन की घुटन और उनमें छिपी मानवीयता के चित्र हैं, वहाँ उनके संवेदनशील कवि व्यक्तित्व की समर्थ झलक मिलती है। जहाँ उनके किसान मन पर उनका शास्त्री व्यक्तित्व हावी हो जाता है, वहाँ वे जीवन का भरा–पूरा चित्रण न करके देखी–जानी स्थितियों के प्रभाव का वर्णन करते हैं। स्वभावतः उनमें चिंतन की प्रवृत्ति अधिक है।

इस प्रकार की दर्शनाभास वाली कविताओं में 'मिलकर वे दोनो प्राणी'। दे रहे खेत को पानी' (धरती) और सावन–भादौं कीरात में 'हंसता है अकाल तारों के दाँत निकाले (दिगंत) जैसी सहज कविताएं दब जाती हैं। सुमन और नरेन्द्र शर्मा अपने जिस आवेग और ओज से अपनी कविताओं में प्रभाव क्षमता उत्पन्न कर देते हैं, उसके अभाव में त्रिलोचन शास्त्री की चिंतन–प्रधान कविताऐं काफी बेजान लगती है। शास्त्र के आधार पर वे कविताऐं अवश्य कहीं जा सकती है, लेकिन जीवन की मार्मिक परिस्थितियों के अभाव में सहज कतई नहीं कहीं जा सकती। उनमें हृदय को छूने की वह शक्ति नहीं है जिसके बल पर निराला 'स्नेह निर्झर बह गया है। रेत ज्यों तन रह गया है' या बाहर मैं कर दिया गया हूँ। जैसी दार्शनिक गुरूत्व वाली कविताओं में भी

संवेदनात्मक सहजता उत्पन्न कर देते हैं, अथवा नागार्जुन और केदार प्रगतिशील धारा में अपना विशिष्ट महत्व स्थापित कर लेते हैं।

कहा जा चुका है कि केदारनाथ अग्रवाल में रागात्मक प्रगाढ़ता का तत्व उनके स्वस्थ और संयत सौन्दर्य बोध का मुख्य आधार है। केदार जीवन और प्रकृति के बीच जिस अन्यान्य सम्बन्ध को अपने इंद्रिय बोध और भावबोध की शक्ति से अपनी कविताओं में मूर्त करते हैं, वह ऐहिक जीवन की सार्थकता पर बल देने वाला है, उसके प्रति आस्था और विश्वास जगाने वाला है। उनके कवि व्यक्तित्व का यह सबल पक्ष है आद्यांत विद्यमान है। उनकी कविताओं में लम्बे समय तक जीवन के अन्तर्विरोधों , संघर्षों का जो स्वर सुनाई देता है, वह उनके इस मूल स्वर के साथ विकसित हुआ। केदान हिन्दी के उन थोड़े से श्रेष्ठ कवियों में हैं, जिन्होंने औद्योगिक समाज में पिसते हुये, उससे टक्कर लेते हुये मजदूर वर्ग पर अत्यन्त सशक्त कविताएं लिखी हैं।

1. घाट धर्मशालें, अदालतें, विद्यालय, वेश्यालय सारे
   होटल, दफ्तर, वूचड़खाने, मंदिर, मस्जिद, हाट, सिनेमा
   श्रमजीवी की उस हड्डी से टिके हुये हैं, जिस हड्डी को
   सभ्य आदमी के समाज ने टेढ़ी करके मोड़ दिया है।
2. कैसे जियें कठिन है चक्कर
   निर्बल हम बलीन है मक्कर
   निलसन ताबडतोड़ कटाकट
   हड्डी की लोहे से टक्कर[38] (फूल नहीं रंग बोलते है।)

नागार्जुन और रामविलास शर्मा के साथ–साथ केदार ने भी राजनीतिक व्यंग्य लिखने की परंपरा को समर्थ ढंग से विकसित किया है। 'कामधेनु सी कांग्रेस...... जैसी कविताओं के साथ ही जटिल परिस्थितियों को उनके मर्म में पहुंचकर केदार ने जैसे उद्घाटित किया, वह साधारण कवि कौशल के बूते का नहीं है।

बढ़ गया है जीने से ज्यादा न जीना
और आदमी है
कि हंसना नहीं भूलता[39] (आग का आइना)

लेकिन आगे चलकर, एक निश्चित दौर के बाद, उनके काव्य से ये तत्व घटने

लगे। जीवन की परिस्थितियों के प्रति उनकी संवेदशीलता में कमी नहीं आयी, लेकिन उसमें वहैसियत कवि, अपनी सक्रिय भूमिका के प्रति उनका विश्वास घटने लगा। उनका मूल स्वर फिर उभर आया। उनका मूल स्वस्थ है, प्रगतिशील है, लेकिन प्रगतिशील कविता के यथार्थवाद के विकास में उसकी भूमिका सीमित है, स्वयं केदार ने अपने लम्बे रचनात्मक जीवन में इस दिशा में जो कार्य किया है, उसकी तुलना मे पिछड़ा हुआ है।

नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होने अपने यथार्थवाद को निरंतर ऊँचे धरातल पर पहुंचाया है। उनके राजनीतिक व्यंग्य कितने पैने हुये हैं, उनमें जीवन के अंतर्विरोधों की समझ दृढ़ हुई है, उनका भौतिकवादी रूझान अविचल रहा है, इसे हम सभी जानते हैं। 'हरिजन गाथा' और 'छोटी .... बड़ी मछली ......' जैसी कविताओं की रचना करके नागार्जुन ने न केवल अपने आपको, वरन् प्रगतिशील कविता को, हिन्दी साहित्य को मूल्यवान अवदान किया है। उत्तरोत्तर अपने– प्रखर यथार्थवादी और दृढ़ भौतिकवादी उन्मेष के कारण नागार्जुन हिन्दी सहित्य में निराला के बाद सबसे महत्वपूर्ण पद के हकदार हुये।

संदर्भ सूची

1.	खिचड़ी विप्लव देखा हमने	पृ. 17
2.	समकालीन कविता में व्यंग्य विद्रूप	पृ. 100
3.	तालाब की मछलियाँ	पृ. 50
4.	तुमने कहा था	पृ. 39
5.	पुरानी जूतियों का कोरस	पृ. 27
6.	नयी कविता और अस्तित्ववाद	पृ. 141
7.	युगधारा	पृ. 40
8.	हजार–हजार बांहों वाली	पृ. 15
9.	वही	पृ. 31
10.	युगधारा	पृ. 19
11.	हजार–हजार बांहों वाली	पृ. 15
12.	नयी कविता और अस्तित्ववाद	पृ. 141
13.	हजार–हजार बांहों वाली	पृ. 54
14.	वही	पृ. 55
15.	वसन्त की अगवानी	पृ. 44
16.	हजार–हजार बांहों वाली	पृ. 65
17.	वही	पृ. 66
18.	वही	पृ. 43
19.	वही	पृ. 19
20.	वे और तुम	पृ. 25
21.	दूर्वांचल (अज्ञेय)	पृ. 21
22.	खिचड़ी 'विप्लव देखा हमने'	पृ. 57
23.	वही	पृ. 59
24.	वही	पृ. 62
25.	वही	पृ. 67
26.	हजार–हजार बांहों वाली	पृ. 64
27.	वही	पृ. 77

28. नागार्जुन रचनावली पृ. 257
29. वही पृ. 58
30. वही पृ. 60
31. सरोज स्मृति निराला पृ. 219
32. दधीचि निराला पृ. 20
33. काव्य संकलन (गिरिजा कुमार माथुर) पृ. 114
34. हजारो–हजारों बांहो वाली पृ. 80
35. वही पृ. 82
36. नागार्जुन रचनावली पृ. 213
37. काव्य संकलन (डॉ.शिवमंगल सिंह 'सुमन') पृ. 55
38. वही (केदान नाथ अग्रवाल) पृ. 66
39. वही पृ. 54

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

नागार्जुन के काव्य में वैचारिक उन्मेष

विचार तत्व एक युग्म शब्द है, जो विचार और तत्व के संयोग से बना है, जिसका अर्थ है विचारों की वास्तविक स्थिति। 'चर' धातु में 'वि' उपसर्ग तथा 'घञ्' प्रत्यय के संयोग से 'विचार' शब्द निष्पादित हुआ है, जिसका शब्दार्थ चिन्तन, विमर्श, तत्वार्थ चिन्तन होता है। वास्तव में जो कुछ मन में सोचा गया अथवा सोच कर निश्चित किया जाये वही विचार है। हिन्दी के प्रायः सभी शब्दकोशों में विचार शब्द का यही अर्थ स्वीकार किया गया है।[1अ] 'विचार' चिन्तन से सम्बन्धित होने के कारण मूलतः दर्शनशास्त्र का पारिभाषिक शब्द था, परन्तु शनैः शनैः इसका प्रयोग मनोविज्ञान आदि विविध शास्त्रों के साथ साहित्य में भी होने लगा।

मनोविज्ञान में स्वीकार किया गया है कि सामान्य बुद्धि की प्रक्रिया का नाम चिन्तन है, जो तथ्य प्रस्तुत हों, उसके सम्बन्ध को हृदयंगम करने के लिए यह मानसिक प्रक्रिया अनिवार्य होती है। इन्द्रियबोध अथवा भावना से भिन्न भाव या प्रत्यय पर मानसिक केन्द्रीयकरण की परिणति ही विचार है। इन्द्रिय–बोध के अतिरिक्त पदार्थों के समस्त 'अभिज्ञान' को विचार शब्द से अभिहित किया जाना चाहिए।[1ब] दर्शन शास्त्र में चिन्तन अनिवार्यतः प्रयोजनीय है, जिसके लिए विचारों, बिम्बों, प्रतीकों की अपेक्षा की जाती है।[1स]

आम आदमी के शोषण, उत्पीड़न तथा तिरस्कार से नागार्जुन आहत होकर मात्र भावाकुल होकर आँसू ही नहीं टपकाते प्रत्युत् उनकी मनीषा इन परिस्थितियों के कारण और समाधान के लिए निष्कर्षपरक स्थापनायें करती हैं। हिन्दी प्रदेश के लघुमानव को उन्होंने वैश्विक मानवता के उत्पीड़न वर्ग के रूप में चिन्हित किया था, जिसकी निरक्षरता और विपन्नता की परम्परा से उन्होंने अपनी भीष्मता को जोड़ कर संघर्षवन्ती संचेतना के विद्रोही स्वर मुखरित किए। "उनक काव्य में अन्याय, दमन और शोषण से उपजी कटुता व्यक्त हुई जिसने उन्हें ऐसी वैचारिकता से जोड़ा कि इन शोषक परिस्थितियों के विरुद्ध वह एक चिन्तन प्रस्तुत कर सके।"[1द]

नागार्जुन की वैचारिकता वस्तुतः भौतिकवादी जीवन–दर्शन पर मजबूती से

खड़ी हुई है। इस जीवन–दर्शन का लक्ष्य उत्पीड़न और शोषण को नियमित मान कर स्वीकार कर लेना नहीं है, बल्कि अपने हक–अपने हिस्से के सुख के लिए संघर्षपूर्ण प्रयत्न करना है। जीवन और जगत् सम्बन्धी अपनी विशिष्ट मान्यताओं के कारण नागार्जुन की विचारधारा ने नवीन मूल्यों और मानदण्डों को जन्म दिया, जिनकी दिशा प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं से नितान्त भिन्न है। प्रभाव की दृष्टि से नागार्जुन की वैचारिकता मार्क्सवाद के निकट है, किन्तु इसकी अपनी श्रव्य अस्मिता और मौलिकता है। नागार्जुन की आयु जब मात्र तीन वर्ष की थी तभी 1914 ई. में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जो 1919 ई. तक चलता रहा। इस युद्ध से सारा विश्व प्रभावित हुआ। इस महायुद्ध का कारण उपनिवेशवाद था, जिसका उद्देश्य ही शोषण और उत्पीड़न है।

यही काल भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के उत्कर्ष का काल है; जिसका जाने अनजाने में प्रभाव नागार्जुन पर पड़ा ही था। मार्क्सवाद के प्रथम उत्कर्ष के अन्तर्गत सन् 1918 से लेकर 1922 तक के पांच वर्षों का समय लिया गया है। इसके एक छोर पर प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दमन–नीति का आरम्भ और दूसरे छोर पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चलने वाला भारत का प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन है। द्वितीय उत्कर्ष काल के अन्तर्गत् सन् 1923 से सन् 1930 तक के आठ वर्षों का समय लिया गया है। यह दो राष्ट्रीय आन्दोलनों के बीच का युग है, जिसमें राजनीतिक जागरण की लहर देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंची है। स्वतंत्र मार्क्सवादी राजनीतिक संस्थाओं का जन्म हुआ है और मार्क्सवादी विचारधारा से परिचालित मज़दूर आन्दोलनों का सूत्रपात सन् 1931 से सन् 1936 तक के छः वर्षों का समय लिया गया है। यह युग द्वितीय राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलताजन्य प्रतिक्रिया से प्रारम्भ होता है।[2] सोवियत संघ की प्रगति के फलस्वरूप देश में मार्क्सवाद के प्रति आस्था का विकास हुआ, समाजवादी आन्दोलनों को बल मिला। यहाँ तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्दर भी समाजवादी दल का निर्माण हुआ, जिसकी इन दिनों उत्तर प्रदेश में सरकार चल रही है। ''सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना होती है और इस प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में भी मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित एक आन्दोलन चल पड़ता है। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से लेकर सन् 1942 के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन तक के युग में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रकाश में इस युग

से सम्बन्धित मार्क्सवादी काव्य–चेतना का विश्लेषण किया गया है। 1942 के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन तथा 1939 से 1945 तक चले द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेजों की निर्बल हुई साम्राज्यवादी शक्ति के फलस्वरूप यह युग साम्यवादी विचारधारा के लिए अति अनुकूल युग आया है।"[3]

उपर्युक्त परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक चेतना से प्रभावित भारत की सामाजिक स्थितियों में बाबा नागार्जुन जैसे व्यक्तित्व का उद्‌भव और विकास हुआ। उक्त परिस्थितियों ने तत्कालीन साहित्य जगत को भी एक दृढ़ पीठिका प्रदान की थी, किन्तु यह ध्यातव्य है कि साहित्य किसी युगविशेष के राजनीतिक और आर्थिक क्रिया–व्यापार का सीधा–सादा यांत्रिक प्रतिफलन मात्र नहीं है। उसके स्वरूप निध ारिण में हमारे इन्द्रिय बोध से लेकर हमारे भाव–बोध और विचारों की, हमारे विविध समाजगत और व्यक्तिगत संस्कारों की इतनी जटिल प्रक्रिया समाहित रहती है कि उसका यथात्य, निर्भ्रान्त आकलन दुष्कर है। उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति कालिशः होती है। नागार्जुन ने इन परिस्थितियों का प्रभाव तो ग्रहण किया ही था किन्तु उसे ज्यों का त्यों व्यक्त न करके उसे अपनी निजीजीवनी प्रतीतियों के आल–बाल में विकसित चिन्तन से प्रादुर्भूत बटवृक्ष के माध्यम से क्षुद्रित, तृषित, वंचित, दलित, शोषित, पीड़ित, क्लांत मानवता को शीतल छाया प्रदान की थी।

'भाव' और 'विचार' मनुष्य की दो मूल अन्तःवृत्तियाँ हैं। इन दोनों के आधार पर एक तीसरी वृत्ति और बनती है, वह है 'भाव–विचार मिश्र''। साहित्य–स्वरूप की दृष्टि से इन वृत्तियों के प्रमुख तीन रचनात्मक भेद हैं :– काव्य, कथा व नाट्य तथा रचना–शिल्प की दृष्टि से उनकी क्रमशः तीन शैलियों–पद्य, गद्य और चम्पू।[4] साहित्य के विषय–वृत्ति और रचना–शिल्प के इस भेद क्रम में परस्पर एक वैज्ञानिक संगति है–भाव का पद्य से, विचार का गद्य से तथा भाव–विचार मिश्र का चम्पू से। प्रबध विधा में विषय और शैली इन दोनों के इस भेद क्रम की रचनात्मक संगति क्रमशः महाकाव्य, उपन्यास एवं नाटक रूप में है अथवा खण्डकाव्य, कहानी और एकांकी के रूप में। अर्थात् सहज रूप से पद्य शैली में विचार–मूलक प्रबन्ध विषय की प्रस्तुति महाकाव्य या खण्डकाव्य है, गद्यशैली में विचार–मूलक प्रबन्ध विषय की अभिव्यक्ति उपन्यास या कहानी है और चम्पू शैली में भाव विचार मिश्र एकांकी है। किन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'भाव–मूलक' विषय में 'विचार–मूलक–तत्व' का

सर्वथा लोप नहीं है, उसकी गौणता अवश्य है। इसी तरह 'विचार–मूलक' विषय में भी 'भाव' का भी सर्वथा अभाव नहीं है–किन्तु प्रधानता 'विचार' तत्व की है। भाव–विचार भिक्षु में भाव और विचार दोनों की लगभग लगभग मात्रा अनिवार्यतः होती है। इसमें किसी की प्रधानता या गौणता का प्रश्न ही नहीं होता। इस प्रकार काव्य भावबहुल विधा है तथा कथा विचार–प्रधान साहित्य और नाट्य भाव विचार मिश्र की निष्पत्ति है। "जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन जिस शास्त्रीय आधार पर महाकाव्य में प्रस्तुत होता है, वही उपन्यास और नाटक में होता है। वस्तु का अध्ययन पंचसन्धियों के अनुसार तीनों विधाओं में सम्पन्न किया जाता है। नाटक के दृश्य पक्ष की पूर्ति रंगमंच पर अभिनय की कला के माध्यम से और उपन्यास में चरित्र–चित्रण एवं विश्लेषण के माध्यम से सम्पन्न होती है। यह स्वीकृति अवश्य है कि उपन्यास के सम्पूर्ण चरित्र–चित्रण में नाटकीयता गुण रूप में विद्यमान रहती है : लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उपन्यास में दृश्य गुण प्रधानतः संवाद को छोड़कर भी मुखर जाये। गद्य और पद्य के मूल अन्तर को यदि छोड़ दिया जाये तो महाकाव्य एवं उपन्यास में अधिक दूरी नहीं है। एक भावात्मक है दूसरा विचारात्मक है।"[5]

कोई भी कवि जब कवि कर्म के लिए प्रतिबद्ध होता है तो उसे समकालीन परिवेश के सन्दर्भों के बीच से गुजर कर काव्य यात्रा समाप्त करनी पड़ती है। उसे उस तेवर, मिजाज और मुहावरे को समझना–अपनाना पड़ता है, जिसमें उसके समय की कविता लिखी जाती है। छंदों से गुजर जाने के लिए उदग्र नागार्जुन जैसे रचनाधर्मी को भी उन अदृश्य सीमाओं से प्रभावित होना पड़ता है, जो काल से उपजे सत्य के कंधों पर सवार होकर अदृश्य लक्ष्मण रेखायें खींचते रहते हैं। किसी भी सृजनधर्मी को इन रेखाओं के अन्दर रहने अथवा इनका अतिक्रमण करने को द्वन्द्व का साक्षात्कार करना ही पड़ता है। स्वीकार और अस्वीकार के इस तनावपूर्ण बिन्दु पर खड़े होने का सबूत देकर ही वह कविता की यांत्रिक एकरूपता से बच सकता है और अपनी प्रयोजनवती सार्थक काव्यात्मक संभावनाओं का भरोसा दिला सकता है। नागार्जुन की कविताओं को पढ़कर अनुसंधित्सु को प्रतिभासित हुआ कि विद्रोह और आक्रामकता के मुहावरे से लैस तत्युगीन काव्य–संचेतना से गुजरते हुए भी नागार्जुन ने अपनी संवेदनाओं को 'सोच' के कवच में निबद्ध रखने की चेष्टा की है। डॉ. रामविलास शर्मा ने कश्मीर में हिन्दू राजा हरीसिंह के विरुद्ध बहुसंरक्षक मुसलमान और हैदराबाद के निजाम के विरुद्ध हिन्दू जनता के संघर्ष का उल्लेख किया है। उनका कहना है कि

यदि यह संघर्ष सफल होते तो साम्प्रदायिक समस्या बहुत कछ अंकुश में होती और जनवादी क्रान्ति की प्रगति बहुत सुगम होती। राम–जन्मभूमि और बाबरी मस्ज़िद विवाद से फैली तनातनी और दंगों की पृष्ठभूमि में यह समझना कठिन नहीं है कि हिन्दू–मुस्लिम समुदायवाद के साथ पूंजीवाद वर्ग का सुधारवादी नेतृत्व किस तरह अन्दरूनी साठ–गांठ करता है। अकारण नहीं है कि यह सुधारवादी नेतृत्व आज फिर से 'रामराज्य' का वादा करके सामुदायिक भावनाओं का दोहन करने और वामपक्ष की प्रगति को नियंत्रण में रखने का प्रयास कर रहा है। नागार्जुन ने उक्त दोनों घटनाओं पर कवितायें लिखी थीं, जिनमें उनकी साम्प्रदायिकता विरोधी तथा जनवादी समर्थन सेच अन्तर्निगूढ़ित है। ये कवितायें हैं ''हजार–हजार बाहों वाली'' (पृष्ठ 48 और 137) तथा ''पुरानी जूतियों का कोरस'' (पृष्ठ 37–40)। इन कविताओं में जो विचारधारा प्रवाहित हुई है वह अन्याय और शोषण के विरुद्ध जनवादी आंदोलन को संघर्षशील धरातल प्रदान करती है। प्रगतिशील आंदोलन के विघटन के बाद प्रयोगवाद–नई कविता के भीतर रह कर 'मुक्तिबोध' ने बहुत संघर्ष किया था। उनका संघर्ष इसलिए जटिल है कि एक ओर वे बहुत सी वैचारिक मनोवैज्ञानिक गुत्थियों और विसंगतियों में फंसे हुए हैं, दूसरी ओर जनता से हमदर्दी रखने के कारण शीतयुद्ध आदि की साम्राज्यवादी रणनीति से भरसक लड़ते हैं। 69–70 के दौरान साहित्य में जनवादी विचारधारा के आगे आने के लिए संघर्ष आरम्भ किया। किन्तु स्वाधीन भारत की बहुत सी व्याधियों को 1947 के सत्ता हस्तान्तरण से निरपेक्ष मान कर देखा गया। परिणामस्वरूप साहित्यिक आदर्श के रूप में प्रगतिशील लेखकों की बजाय नई कविता पर ही दृष्टि रूक गई और मुक्तिबोध की एक ऐसी छवि निर्मित हुई कि वे अन्तर्विरोधों से मुक्त, वैचारिक अनुमानों से बहुत ऊपर, देश–काल के तीनों आयामों को सम्यक् रूप में देखने वाले विलक्षण पुरुष थे। मुक्तिबोध को स्वतः प्रमाण मानकर आलोचना के मान ही नहीं स्थिर किए गए, नई कविता के वैचारिक आधारों की खोज भी की गई, जिनमें अस्तित्ववाद का उल्लेख तक प्रासंगिक न रहा, नई कविता पूंजीवाद संस्कृति का मंच है, यह घोषणा तो की गई, पर प्रगतिवाद और नई कविता के अन्तर्विरोधों को विभिन्न वर्गों के सांस्कृतिक संघर्ष के रूप में देखने का प्रयत्न नहीं किया गया। नागार्जुन समेत प्रगतिशील लेखकों का मात्र भर्त्सना के लिए उल्लेख किया गया।[6]

कुछ विद्वानों के हृदय अधिक विशाल हैं। वे मुक्तिबोध और नागार्जुन को एक समान 'क्लासिक कवि' का दर्जा देते हैं। ''उन्हें यांत्रिक मार्क्सवादियों में डॉ. रामविलास

शर्मा का लेखन 'सिर्फ आलोचना के घटियापन' का उदाहरण मालूम हुआ''[7] उनके उत्कृष्ट विवेक में नागार्जुन की जनवादी छवि 'सैनिक कवि का नक्शा' लिए अवतरित होती है। इस तरह के बन्दूकधारी मार्क्सवाद की विस्तृत चर्चा मिलेगी। यहाँ उल्लेख्य यह है कि वर्गों की सांस्कृतिक भूमिका नजर अन्दाज करने से जनवादी क्रान्ति के प्रति भी आग्रहपूर्ण समझ ही विकसित होती है।

प्रगतिशील साहित्य और नई कविता का संबंध और इसका चिन्तन समझने के लिए क्रमशः श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय और नागार्जुन की राजनीतिक कविता का विश्लेषण करने से निष्कर्ष निकलता है कि श्रीकान्त वर्मा सत्ताधारी वर्ग के शाासक पक्ष से, रघुवीर सहाय उस वर्ग के प्रतिपक्ष से तथा नागार्जुन उस वर्ग के जनवादी विकल्प से जुड़े कवि हैं। मुक्तिबोध का चिन्तन जनवादी है, जो क्रान्ति को आवश्यक तो समझता है, लेकिन पूंजीवादी नेतृत्व की प्रगतिशीलता से भी आकृष्ट है। आलोचना–साहित्य में चाहे जितने भ्रम बने हुए हों, कविता की वर्तमान मुख्य धारा लिए नागार्जुन की जनवादी कविता का महत्व उभर रहा है। इब्तबार रब्बी में मुक्तिबोध और नागार्जुन का रचनात्मक अन्तर समझाते हुए लिखा है –

''मुझे लगता है कि मुक्तिबोध ने हिन्दी कविता को बहुत ऊँचाई पर खड़ा कर दिया। काफी ऊँचा मंच, बड़ा विशाल मच खड़ा कर दिया।. . . . .पर मैं मूर्खता की हद तक बहुत विनम्रता से यह कहने की धृष्टता कर रहा हूँ, कि इस विशाल ढाँचे में प्राण नहीं हैं, स्पंदन नहीं है, कैनवास पर खाली लकीरें हैं. . . . . . पंडितों की पहुंच है वहाँ, जन सामान्य के लिए बीहड़ है वह कविता। इसी लिए शायद 'लकड़ी का रावण' और ब्रह्म राक्षस है वहाँ।. . . . . .जो काम अधूरा रह गया था, उसे नागर्जुन पूरा करते हैं। वह उसमें घास का हरा रंग भरते हैं। कोयल की कूक, आग की गंध, चावलों की महक, यानी जीवन से ओत–प्रोत कर देते हैं। नागार्जुन की कविता में क्रान्ति का खोखला नारा नहीं, आम आदमी की जिन्दगी के हक के लिए लगातार लड़ाई की सोची समझी नीति है।. . . . . .एक दो मनुष्य नहीं, इस देश की जनता उन्हें प्रेरित करती है रचना के लिए और उसकी रचना मात्र समय काटने के लिए नहीं, महज फैशन के लिए नहीं बल्कि आम आमदी को मुनासिब सहूलियतें मुहैय्या कराने के लिए हैं।''[8]

'निराला' ने इतिहास और दायित्व को गम्भीर बोध से सम्पन्न जिस नये

यथार्थवाद का विकास किया वह भक्ति आंदोलन और भारतेन्दु युग की संघर्षशील परम्परा की अगली कड़ी है। नागार्जुन यह कड़ी तोड़ कर आगे नहीं बढ़े इस कड़ी से जुड़ कर, उसकी संघर्षशील आस्था से अनुप्रमाणित होकर उन्होंने अपनी कविता में अपने ढंग से अपने समय की तमाम चुनौतियों को स्वीकार किया। कवि के संघर्ष का उसके निजी संघर्षों का भी स्वभाव जितना बहिर्मुख अथवा सामाजिक होता है, उतना ही वह आत्मग्रस्तता और आत्मानुराग से दूर रहता है, निजी पीड़ाओं को सामाजिक या सार्वजनिक धरातल तक उठा ले जाता है।

नागार्जुन अन्याय और विषमता के लिए भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और अफसरशाहों को जिम्मेदार मानते हैं। खुद को उनके आमने सामने रख कर सीधी चोट करते हैं। नागार्जुन अपने अनुभव से व्यवस्था की अमानवीयता और जनता की घुटन को पहचान कर जनता को इससे मुक्ति दिलाने का चिन्तन करते हैं। उनका यह चिन्तन है सुधार के ध्येय की चेतना का प्रसार, शोषणवादी व्यवस्था का आमूल परिवर्तन, इस परिवर्तन के लिए अन्याय, दमन और शोषण के विरोध का क्रान्तिधर्मी संकल्प, भ्रष्ट पूंजीवादी नेताशाही—नौकर शाही के विरुद्ध आंदोलन और ऐसा सब कर सकने के लिए प्रकृति के कलात्मक जान पड़ने वाले प्रतीक चुन कर जनता को जाग्रत करना। नागार्जुन का मत है कि सभ्यता और संस्कृति की विराट उपलब्धियाँ अपने आप नहीं होतीं, उसके लिए आग पैदा करनी होती है –

"हवा और पनी की तरह
वह विरासत में नहीं मिलती
उसे पैदा करना होता है
उन हाथों के खिलाफ़
जिन्होंने
कभी
आग पैदा नहीं की
सिर्फ
उसे तापते रहे।"[9]

विचार हवा में पैदा नहीं होते निश्चित सामाजिक परिवेश ही निश्चित विचारों को जन्म की पृष्ठभूमि तैयार करता है। इसलिए नागार्जुन की प्रगतिआग्रही सोच

मानव–विकास की निश्चित यात्रा सम्पन्न करके ही अपना आकार ग्रहण कर सधी है जो कि इसके परिप्रेक्ष्य में अनेक तत्व पूंजीभूत रूप में समुच्चयित हैं। वस्तुतः नागार्जुन की सोच की पृष्ठभूमि में आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति, बुद्धिवाद के विकास और स्वतंत्रता तथा बराबरी के लिए होने वाले राजनैतिक सामाजिक संघर्षों का काल सापेक्ष सत्य है।

वैचारिक धरातल पर विभिन्न देशी–विदेशी विचारकों की अवधारणायें हैं। वर्गसा के अनुसार कोई रहस्यपूर्ण जीवन–शक्ति ही विकास–क्रम में नूतन स्तरों की उद्भावना का कारण है। जहाँ रूढ़िवादी विकासवाद ने विकास की क्रिया को मात्र परिणामस्वरूप परिवर्तन की प्रक्रिया माना, वहां सृजनात्मक विकासवाद इसे मात्र गुणात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया मानता है। इस प्रकार विकास की धारणा अपने समस्त विकास और अपनी उदात्त कल्पनाओं के अनन्तर एक अंधी गली में आकर रुक गई।[10] रूढ़िवादी विकासवाद, नत्योदभावना और सृजनात्मक विकासवाद और उसके क्रम में आई नवीन उद्भावनाओं की व्यवस्था नहीं कर सके। इस आवश्यकता की पूर्ति अब तक के विकासवादी चिन्तन की उपलब्धियों का उपयोग करते हुए तथा मार्क्स और एंजेल्स द्वारा प्रतिपादित द्वद्वात्मक भौतिकवाद से अनुप्रमाणित होते हुए नागार्जुन ने प्रगति और विकास की धारणा को अध्यात्मवाद की अंधेरी गली से बाहर निकाल कर एक ठोस वैज्ञानिक और सामाजिक सोच का आधर दिया –

> "धन्य–धन्य यह दुहरी–तिरही मुस्कान. . . .
> वज्रपान, गुप्तयान
> मात हुए सभी पंथ
> खुल गए गाथा–ग्रन्थ
> तैयार हों कुछऔर पुत्र दत्तक
> पूरा हो तीसरा–चौथा सप्तक
> खुदा करे पा आओ चाकरी हजारों की. . . .
> . . . . .उधर है न्यूयार्क इधर फारमसा
> बीच में लटक रहा फ्रीडम ऑफ कल्चर।"[11]

'गुप्तयान' और 'बीच में लटक रहा' का उल्लेख सांस्कृतिक स्वाधीनता के नारे का सार तत्व बताने के लिए पर्याप्त है। नागार्जुन ने 1982 में उपलब्ध हुई स्वाधीनता

की शक्तियों को सांस्कृतिक अतीत और धर्म–पुनरुत्थान में लगाया जा रहा था। इस सारे प्रयत्न का वर्ग–चरित्र 'अनुकूल प्रचार', 'अभिपात', 'अस्मिता' और कारों के काफिले से स्पष्ट है –

''सुगन्धित आडम्बर. . . . . .
रंगीन अंगों का अ–छोर ज्वार
अनुकूल प्रचारों के शंखनाद
. . . . . अभिपात 'अस्मिता का रिहर्सल !
क्या था आखिर यह सब ?
क्या होता है ''जानकी जीवन'' ?
कारों का काफिला ? खीर–पकवान ? फोटो फिल्म ?[12]

यह काफिला जहां जाकर रुकता है, उसके लिए नागार्जुन ने कहा है –''अनुदान–पोषित कला केन्द्रों की एक प्रशासकीय श्रृंखला।''[13]

नागार्जुन की अपनी जीवन यात्रा इससे उल्टी रही है। उनका ज़िदगी तथा समाज के प्रति एक नज़रिया था और वह इसी नज़रिये के आलोक में अपने जीवन को आगे बढ़ाते गये। वे सनातन धर्म से निकल कर उत्तरोत्तर जनवाद और समाजवाद की ओर बढ़ते गए। अपनी व्यक्तिगत सुख–सुविधाओं तथा स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए मुकलिसी, गुरवत, अन्याय, शोषण, प्रपीड़न, अंधविश्वास, अवांछित परम्पराओं तथा कुंठित रीति–रिवाजों के उन्मूलन के प्रयास में आजीवन लगे रहे।

नागार्जुन ने बौद्ध धर्म की दीक्षा भी ग्रहण की थी। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के उपरान्त, उसके साहित्य और व्यवहार का अध्ययन करने बाद अपने चिन्तन और अनुभव की समृद्ध किया लेकिन अपने सहज आलोचनात्मक विवेक को उन्होंने कभी नहीं त्यागा। नागार्जुन की काव्य–चेतना का पहला संघर्ष धर्म की जकड़बन्दी के विरुद्ध चला। उन्होंने यह भली भांति अनुभव किया कि समकालीन जीवन में धर्म की कोई प्रगतिशील सामाजिक भूमिका नहीं रह गयी है। वह धनिकों की संपदा और जन सामान्य की विपदा से सम्बद्ध है। वह साधारण जन को विविध अमानविक और अप्राकृतिक विधि–निषेधों में उलझाता है, जीवन को निरर्थक मानकर उससे पलायन का उपदेश देता है। नागार्जुन की वैचारिकता पलायन को कभी स्वीकृति नहीं देती। वह जीवन की प्राकृतिक आवश्यकताओं आकांक्षाओं को भी मान्यता देते हैं। तभी तो

बौद्ध संघों के अपने अनुभव–ज्ञान से सम्पन्न होकर उन्होंने 'भिक्षुर्ण' की कल्पना की है। वह मजबूरियों के कारण बचपन में ही बुद्ध की शरण में आ गयी। युवावस्था के साथ उसकी नारी–सुलभ आकांक्षायें जागने लगीं। वह बुद्ध के प्रति आकृष्ट हुई। हीनयान–महायान समझ चुकने के बाद अब वह मानव सम्बन्धों का सहजयान जानना चाहती है –

"भगवान अमिताभ, सहचर मैं चाहती
चाहती अवलम्ब, चाहती सहारा
देकर तिलांजलि मिथ्या संकोच को
हृदय की बात को, कहती हूँ आज मैं –
कोई एक होता
कि जिसको
अपना मैं समझती. . . .
भूख मातृत्व की मेरी मिटा देता ;
स्त्रीत्व का सुफल पाकर अनायास
धन्य मैं होती।"[14]

नागार्जुन ने मानव चेतना से दैवी शक्तियों का आतंक उतार फेंकने का सबल उपक्रम किया है। उन्होंने भगवान को 'काल्पनिक' करार दिया है –

"हे ! हमारी कल्पाना के पुत्र
हे ! भगवान।"[15]

नागार्जुन परम्परा से जुड़ते हैं, किन्तु उसे अविवेकपूर्ण स्वीकार नहीं कर लेते। यह नागार्जुन की काव्य–चेतना का मानववादी आधार है। नागार्जुन का यह मानववाद एक तरफ वैज्ञानिक चिन्तन की ओर अभिमुख है और दूसरी तरफ समाज के अन्तर्विरोधों के खिलाफ एक सजग रचनाकार की तीव्र प्रतिक्रिया से सम्बद्ध है। नागार्जुन की इस चेतना का आधार निर्मित हुआ किसान आंदोलन में उनकी भागीदारी के बीच दैवी शक्तियों के अंधविश्वासों और आतंक से मुक्त होकर वह निरन्तर आगे बढ़ते गये। उनकी यह प्रगति जन–आंदोलनों से उनके घनिष्ट संघर्ष का नतीजा है।

जन–जीवन से अविच्छेद्य सम्बन्ध और सांस्कृतिक परम्परा का विजुल ज्ञान–हास

एक परिणाम् यह हुआ कि नागार्जुन की कविता में सांस्कृतिक गरिमा आई है। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक मान्यताओं में विसंगतियों के अनन्तर उनकी प्रतिक्रियायें जनता के हित के विरुद्ध कभी नहीं जातीं। नागार्जुन का सचेत और अचेत चिन्तन जनता के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। स्वभावतः जनता के जीवन को कष्टमय और कलहपूर्ण बनाने वाली प्रत्येक वस्तु नागार्जुन की घृणा की पात्र है। उनकी यह घृणा कितनी प्रचण्ड है, इसे समझना कठिन नहीं है। 'बताऊँ' शीर्षक कविता का आरम्भ इस प्रकार होता है –

''बताऊँ ?
कैसे लगते हैं –
दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण।''[16]

एक आत्यंतिक परिस्थिति का चित्र खींच कर नागार्जुन ने समाज के अन्तर्विरोध पर जैसा प्रहार किया है, वैसा दूर–दूर से बौद्धिक सहानुभूति जताने वाले कवियों के लिए संभव नहीं।

'बताऊँ' ? के साथ भेद खोलने वाली जो मुद्रा है, उससे नागार्जुन एक तरफ पाठक समुदाय से–जन साधारण से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। अपने चिन्तन से नागार्जुन इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देश की दरिद्रता का उपचार करने की जगह इस कोढ़ पर मणिमय आभूषण का श्रृंगार करने वाला समाज अमानवीय है। अमानवीय ही शोषण का आधार है। शोषण, अन्याय तथा उत्पीड़न के विरुद्ध उनकी लेखनी ने निरन्तर आग उगली है। उनका कहीं चुनौती और ललकार के स्वर में प्रकट हुआ है। वह शोषणवादी समाज में परिवर्तन चाहते हैं। वह 'खून से सने जबड़े' की निंदा करके अपने 'जाहिल बने' से चिपके रहने का नपुंसक सुझाव नहीं देते। वे इस समाज को आमूल–चूल परिवर्तित करके ऐसे समाज का सृजन चाहते हैं –

सेठों और जमीदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम
खेत–खान–दूकान–मिलें सरकार करेगी दखल तमाम
खेत–मजूरों और किसानों में जमीन बंट जायेगी
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मड़रायेगी
यह काम वही सरकार करेगी जिसे
दरिद्र देश के धनिकों से

सेठों और जमीदारों से
मोह न हो।"[17]

नागार्जुन कोरी और तिलबिली भावुकता को पसन्द नहीं करते। वह 'बुद्धि' के पक्षधर हैं –"बुद्धि और वैभव दोनों यदि साथ रहेंगे जन–जीवन का मान तभी आगे निकलेगा।"[18]

डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट नागार्जुन की उपर्युक्त पंक्तियों को उद्धृत करके निष्कर्ष निकालते हैं–"वस्तुतः पूंजीवाद के दोषों का एक मात्र कारण ही बुद्धि का अभाव है। यदि पूंजी के साथ प्रज्ञा का समावेश हो जाये तो पूंजीपति शोषण और अत्याचार के स्थान पर स्वयं निर्धनों को ऊपर उठाने का प्रयास करने लगेंगे।"19

(अ) कथ्यगत प्रयोग :

नागार्जुन की कविता काव्य–इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यद्यपि विविध विरोधी आलोचनाओं तथा दृश्य–अदृश्य अवरोधों के चक्रव्यूह में नागार्जुन की जन समर्थक और शोषण विरोधी विचारधारा को फंसाने की चेष्टा की गई। इन बाधाओं–विरोधों के बावजूद नागार्जुन की जीवन्त काव्य–धारा का प्रवाह रूद्ध न हो सका। सामाजिक सरोकारों तथा युगीन परिवेश में मौजूद 'लघुमानव' विरोधी सन्दर्भों को खाड़ फेंकने तथा देश के दरिद्र वर्ग का खून चूसने वालों के खिलाफ उनके कथ्य की 'लाल' प्रस्तुतियाँ अपनी जंग जारी रखने में कामयाब हुईं। आम आदमी को उसके हिस्से की रोटी, पानी, धूप, जमीन, मुस्कान तथा इज्जत मिले–इसके लिए 'कलम' तथा 'कृत्य' से लड़ाई लड़ने वाले जांबाज नागार्जुन को शोषणवादी शक्तियों ने हासिए पर धकेलने की पूरी कोशिश की। इन शक्तियों की मानसिकता रोटी, हड़ताल और राजनीति से जनवादी सरोकार की कविता को कविता मानने के पक्ष में नहीं थी। ये लोग ऐसी कविता का अंश मानने से इन्कार करते रहे। वस्तुतः बदली सामाजिक परिस्थितियों तथा बदले चिन्तन के कारण बदले हुए सामाजिक बोध तथा सोच–विचारों के कारण कविता का मगज–मिजाज भी परिवर्तित होता है, तो उसकी भूमिका के अनुरूप ही आलोचना के मूल्यों एवं मानदण्डों में भी बदलाव आना चाहिए। युग की नब्ज की पकड़ यदि रचनाकार के लिए अनिवार्य है, तो समीक्षकों में भी इस परिवर्तन के तत्वों को समझने की तमीज़ चाहिए।

यह एक सच्चाई है कि नागार्जुन की कविता ज़िन्दगी की असलियत से सीधा साक्षात्कार करती हुई कुछ कहने में चूकती नहीं। वह ज़िन्दगी से जुड़े अनेक सवालों का वाज़िब उत्तर ढूँढ़ने के क्रम में काफी 'बोल्ड' है। दरअसल नागार्जुन की कविता का कथ्य अपनी टटकी सोच के कारण आज की ज़िन्दगी का निहायत कड़वा, जटिल तथा भयावह यथार्थ उद्‌घटित करती है। उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में इतना गहरा तालमेल रहा है कि उनकी रचनाओं ने जीवन के काठिन्य एवं सम्पूर्ण वैविध्य को सहज संप्रेष्य बना दिया है।

कविता का कथ्य–संसार जीवन और जगत् के सम्पूर्ण अनुभव, स्थितियों और वस्तुओं से निर्मित होता है। नागार्जुन की कविता के कथ्य को किसी 'फ्रेम' में नहीं मढ़ा जा सकता है क्योंकि आम आदमी के विरुद्ध कोई भी सन्दर्भ उनकी कविता का विषय हो सका है। नागार्जुन की कविता के कथ्य को मानवीय साक्षात्कार का कथ्य कहा जा सकता है। जुल्म, गुरबत, अनाचार, अत्याचार, कदाचार, अन्याय, अंधविश्वास, कुंठित रूढ़ियाँ, सामाजिक वैषम्य, शोषण, प्रपीड़न के अतिरिक्त आम आदमी की सांसों को छीनने वाले अनेक विसंगतियों को समाधान की संभावनाओं से प्रज्जवलित सन्दर्भ नागार्जुन की रचनाधर्मिता के कथ्य हैं। इस कथ्य की प्रस्तुति के लिए नागार्जुन कभी–कभी मर्मबंधी व्यंग्य का सहारा लेते हैं नागार्जुन के व्यंग्य का निशाना वह बनता है, जो शोषक–शासक वर्ग से संबद्ध होकर जनता को ठगने या कुचलने की बदनीयत रखता है। नागार्जुन परिस्थितियों और वस्तुओं में अन्तःसम्बन्ध देखते हैं। इसलिए सामाजिक विधान की विसंगतियों को राजनीति से काट कर नहीं पेश करते। यही कारण है कि उनके राजनीतिक व्यंग्य में शासक–शोषक वर्ग के प्रति उनका रोष और घृणा तथा दबी–कुचली जनता के प्रति उनका आत्यंतिक ममत्व एक साथ विद्यमान है। वे इस भ्रम में नहीं पड़ते कि चमत्कार से पूंजीपतियों का हृदय–परिवर्तन हो जायेगा और वे मुनाफाखोरी बन्द करके जन–जीवन के उत्थान का बीड़ा उठा लेंगे। वे जिस 'जगतारिणी' के दामन रूप को "कार्तूसों की माला होगी, होगा दृश्य अनूप"[20] कह कर निर्मित करते हैं, उसे "नफाखोर सेठों की अपनी सगी माई"[21] के रूप में विविक्षित करते हैं। नागार्जुन की काव्य चेतना का स्वरूप यथार्थवादी एवं विचार–परिप्लावित है, वह भावुकता से कोसों दूर है। यथार्थवादी भावुकता के बूते पर नागार्जुन जैसा समर्थ व्यंग्य लिखना असंभव है।[22] नागार्जुन अपनी वैचारिक अस्मिता के उन्मेष में आध्यात्मिक शिखर पुरुषों पर चोट करने में भी नहीं चूकते।

योगिराज अरविंद पर प्रहार करते हुए नागार्जुन की व्यंग्यमर्मित प्रहारात्मक प्रस्तुति इस प्रकार है –

"हे विभ्रान्त ! बुद्धिजीवी, तुम बने हो भारी भ्रम भगवान
शाषक–शोषक वर्ग तुम्हारा क्यों न करे गुणगान।"[23]

सामाजिक असंगतियों पर पंडों–पुरोहितों–मुल्लों के ढोंग आडम्बर पर जीवन के विद्रूप और पाखंड पर व्यंग लिखना एक बात है, यह भी क्या बात हुई कि राजनीति जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण और गम्भीर विषय पर हास्य व्यंग्य की शैली में रचना की जाये। जिस राजनीति से पूरे देश की ओर पूरी दुनिया के भाग्य का फैसला होता है, उसे हास्य व्यंग्य का विषय बनाकर कोई कवि अपने उथलेपन का परिचय देता ही है, सबसे खतरनाक बात यह है कि आधुनिक जीवन के सबसे निर्णायक पहलू पर ही गोबर लीप देता है। साहित्य–जगत में इससे जो अराजकता पैदा होती है वह अलग। बताइये भला आलोचक इस राजनीतिक व्यंग्य को काव्यशास्त्र की किस कोटि में रखे, सौंदर्यशास्त्र की किस परिभाषा में बांधे ?

आलोचक का काम साहित्य का मूल्यांकन करना ही नहीं है, साहित्य के सिद्धांत गढ़ना, भटकने वालों को सही रास्ते पर लाना और रचनाकारों को स्थात्व या विस्थापित करना भी है। दायित्वों के इतने गुरु–गंभीर दबाव में काम करने वाले बेचारे आलोचक के पास राजनीति को लेकर लिखे गये इस हँसी –मजाक पर माथापच्ची करने की फुर्सत कहाँ है ?

यही वजह है कि विद्वान लोग प्रशंसा करें या निंदा, उनकी दृष्टि में काव्य–मूल्यों के लिहाज से नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य–रचनाओं में खास दम–खम नहीं है। उदाहरण के लिए एक विचारक की यह प्रशस्ति देखिए, "नागार्जुन की कविता सच्चे और ठोस अर्थों में समकालीन रही है। अपने समय में घट रही हर छोटी–बड़ी घटना पर उनकी नजर है। कितनी ही भाषाओं के पत्र–पत्रिकाएँ और पंक्तियों के बीच में भी पढ़ते हैं और सामान्य अर्थों के पीछे छिपे बड़े संदर्भों को साकार कर देख लेते हैं। . . . जब से उन्होंने लिखना शुरू किया तब से आज तक यह उनकी रचना का मुख्य धर्म बना हुआ है।"[24]

जिस अखबारीपन का आरोप लगाकर तरह–तरह के कलावादी–कुलीनतावादी

विचारक प्रगतिशील साहत्यि का विरोध करते हैं, उसी को नागार्जुन की समकालीनता का आधार बताकर चौहान ने सौंदर्य शास्त्र के विकास में अभूत–पूर्व योगदान किया है। इनका यह साहस बेमिसाल है। प्रश्न है–नागार्जुन ने जो राजनीतिक व्यंग्य रचनाएँ लिखीं है, उनकी समकालीनता का रहस्य पत्र–पत्रिकाएँ पढ़कर बौद्धिक व्यायाम से बड़े–बड़े अर्थ संदर्भ साकार करने में है या देश की जनता के साथ उनकी सहज प्रज्ञा के अभेध संबंध में है ?

अखबारों से ही बड़े–बड़े अर्थ और संदर्भ साकार निचोड़कर 'कविता' लिखने वालों की कमी न प्रगतिशील आंदोलन के जमाने में थी, न आज ही है। लेकिन इस तरह के साहित्य का कलात्मक मूल्य कितना होता है, वे कविताएँ भी होती हैं या नहीं, यह बात तो खेर किसी से छिपी नहीं है। नागार्जुन जैसे व्यक्ति के बारे में यह बात भी कही जा सकती है जब मान लिया जाये कि कला पर जोर देने वाले जिस–जिस चीज का विरोध करें, वह सब प्रगतिशील। जबकि कलावादियों का करतब यह है कि वे अंशसत्य को स्फीत करके उस तरह दिखाते हैं। जिसमें कला की विषयवस्तु की विचारधारा की, जनता से उसके संबंध की बाते छिप जायें। दिखाई पड़े तो सिर्फ शब्दों का अंबार।

नागार्जुन भी उन बड़े कवियों में से एक हैं जो अपनी रचनात्मक समस्याओं के प्रति सचेत रहते हैं। जनकवि के रूप में अपनी स्थिति और भूमिका के बारे में उनके जो निरंतर विकसित होते हुए विचार हैं, वे इसका प्रमाण हैं। यही नहीं, अखबार पढ़–पढ़कर या शब्दों की कलाबाजी दिखा–दिखाकर बड़े–बड़े अर्थ चमत्कार उत्पन्न करने वाले घर घुसना कवियों को ललकारते हुए नागार्जन जब कहते हैं कि "आ तेरे को सैर कराऊँ", तब भी वे अपनी रचनात्मकता के बारे में उसकी काव्यशक्ति और समकालीनता के बारे में विद्वानजनों की ज्ञानवृद्धि ही करते हैं।

वे जिस जनता के बीच में, उसके जीवन की जिस पीड़ादायक और संघर्षपूर्ण परिस्थिति के बीच में सैर करके अपनी कविता की सामग्री चुनते हैं, उससे बहुत प्यार करते हैं। चौहान ने अपनी पुस्तक 'आलोचना के नये मान' में पहले यह बात कही है कि जनता के साथ अपने अटूट संबंध के नाते ही नागार्जुन, केदार, बिलोचन जैसे कवि राजनीतिक विचारधारा में भटकाव के बावजूद जन कवि बने रह गये हैं। (पृष्ठ 225) बाद में जब नागार्जुन के काव्य का स्वतंत्र विवेचन करने चले तब यह जन कवि

वाली बात ध्यान से उतर गई। इसलिए एक सवाल यह भी पैदा होता है कि नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य और उनके जनकवि वाले रूप में क्या संबंध है ?

यह बात सही है कि नागार्जुन जनता से बहुत अधिक प्यार करते है और राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक स्थिर नहीं रहे हैं, उनकी समझ में उतार–चढ़ाव आता रहता है। यह भटकाव कभी–कभी उन्हें अपनी प्रकृत भावना के विरुद्ध भी पहुचा देता है। भारत में समाजवादी क्रांति की व्यग्र प्रतीक्षा करने वाले, खुद को जनता के इस महान ध्येय के प्रति कृतसंकल्प करने वाले नागार्जुन ही 'कार्लमार्क्स' की दाढ़ी में जूं' बताते हैं, 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद तुम्हारा तुम्हें मुबारक' करते हैं, 'क्या है दक्षिण क्या है बाम, जनता की रोटी से काम' जैसे गंभीर वैचारिक भटकाव के शिकार होते हैं। इसी भावधारा में बहते हुए वे ''नग्न फासिज्म तक की 'आगवानी' करने को उतावले हो उठते हैं कभी–कभी''।

कुछ लोग नागार्जुन के इस भटकाव को इस रूप में देखते हैं कि उन्हें लगता है, जनता के प्रति प्रेम ही इसका कारण है। आप न मानें तो एक अन्य विचारक की सम्मत्ति सुनें, ''क्योंकि नागार्जुन भावुक नहीं है, उनके पास परिपक्व राजनीतिक विवेक है, फिर भी जनता उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। जनता के प्रति उनका यह व्यामोह अनेक अवसरों पर उनके राजनीतिक विवेक तथा परिपक्व सामाजिक सोच पर हावी होता हुआ उन्हें इस कदर भावुक बना गया है कि बिना यह सोचे कि साधारण जनबल बरगलाया भी जा सकता है, उसे दिग्भ्रमित भी किया जा सकता है, अवसरवादी राजनीति उसका गलत इस्तेमाल भी कर सकती है, वे जन उभार में बह गये हैं।''

जनता इतनी बुरी चीज है। खुद तो प्रलोभन में फँसती ही है, दिग्भ्रमित होकर अवसरवादी राजनीति की कठपुतली बनती ही है, लेकिन जब उभार पर आती है तब अभावुक कवि को भी भावुक बना देती है–अपने साथ बहा ले जाती है। भावुकता भी आती है तो ऐसे एक तरफ नागार्जुन अपने राजनीतिक विवेक और परिपक्व सामाजिक सोच को ताक पर रखकर जनता के साथ 'बह' जाते हैं और दूसरी तरफ इतने आत्मग्रस्त हो उठते हैं कि जनता के प्रति 'त्यामोह' के शिकार हो जाते हैं। जनता त्यामोह उतना ही खतरनाक है जितना भावुकता। स्वभावतः नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य–काव्य और जनकवि वाले रूप के संबंध की समस्या अत्यन्त गंभीर है।

नागार्जुन ने गांधी जी पर, उनकी विचारधारा पर उनके अनुयायियों पर

काफी लिखा है। उसका अधिकांश हिस्सा तीखा और व्यंग्यात्मक है। लेकिन गांधी जी की मृत्यु पर 'तर्पण' और 'शपथ' कविताओं में उन्होंने गांधी जी का और उनके हत्यारों का जो राजनीतिक मूल्यांकन किया है वह इस समस्या के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

शपथ में उन्होंने लिखा :

''काँटे कहाँ, कहाँ रोड़े हैं
कहाँ गढ़ा है, कहाँ रेत हैं
सभी साफ हो गया आज, जनता सचेत है
कोटि–कोटि कठों से निसृत सुन–सुनकर आक्रोश
भगवाध्वजधारी दैत्यों के उड़े जा रहे होश।''[25]

गांधी जी की हत्या से जनता में आक्रोश भी है और जागरूकता भी, इसलिए भगवाध्वजधारी हत्यारों के होश उड़ रहे हैं। आक्रोश और जागरूकता का सहअस्तित्व जनता में है, नागार्जुन में भी जनता के संवेदनशील कवि की भाँति वे इस घटना में इतना ममहित है कि :

''रोता हूँ लिखता जाता हूँ
कवि को बेकाबू पाता हूँ।''[26]

लेकिन इस परम भावुकता के बावजूद यह देखने में नागार्जुन नहीं चूकते हैं कि गांधी जी के आदर्शों का नाम लेकर चलने वाली कांग्रेस सरकार भगवाध्वज धारियों के खिलाफ जनता के खिलाफ जनता के आक्रोश को दबाने, जन उभार को रोकने का ही काम कर ही है :

''शुरू हो गया नेताओं का
मधुर बुझावन मधुर सिखावन–
शांत रहे हम
हत्यारों को सजा मिलेगी।
जो भी कुछ करना है सब सरकार करेगी
तत्पर हो सारी साजिश की जाँच और पड़ताल करेगी
शांत रहे हम।''[27]

हिटलर के इन पुत्र–पौत्रों के खिलाफ, जो 'हिन्दू–मुस्लिम–सिक्ख फासिस्टों'

के वेश में दिखाई देते हैं, जनता के संग्राम को आगे बढ़ाने में सरकार कितनी दिलचस्पी लेती है, इसे नागार्जुन खोल कर रख देते हैं। गांधी जी ने स्वाधीनता संग्राम में जनता को उतारा, उसे लामबंद किया, लेकिन उन्हीं की हत्या पर उनके चेले जनता के उभारको दबा रहे हैं, सरकार पर भरोसा करके हाँथ पर हाँथ धरे बैठे रहने का उपदेश दे रहे हैं। उनके उपदेशों—उपचारों से जनता का उस के सजग संवेदनशील सहकर्मियों का आजादी के चरित्र के बारे में भ्रम दूर हो गया। इसलिए जब आजादी को साधारण जनता के हित में जोड़ने के लिए संघर्ष चला तब इन नेताओं ने बची—खुची लाज़—शर्म भी बेच दी, रामराज्य की जेलों में फूल के बदले लाठियों से जनता का सत्कार किया। अत्यन्त भावुक कवि ने अत्यंत सचेत ढंग से यह समझ लिया कि जनता के संगठित संघर्ष का मुकाबला करने के लिए सरकार जनविरोधी नीतियों का त्याग न करेगी, बल्कि फासिस्टों के लिए अपनी दिली हमदर्दी को अपने आचरण में उतारकर दिखाएगी। संकट की इस परिस्थिति में भगवाध्वजधारी शैतान मूक न बैठेगा, वह

''आवेगा रह—रह हमको भरमाने

अब खाल ओढ़कर तेरी सत्य अहिंसा की।''[28]

भगवाध्वजधारियों के गांधीवादी समाजवाद की राजनीतिक मंशा को नागार्जुन ने 1948 में ही उजागर कर दिया था। उनकी इस निभ्रति समझ का रहस्य यह है कि जनता के संवेदनशील कवि की हैसियत से वे जनभावनाओं के साथ अटूट रूप से जुड़े हैं, उसके हानि—लाभ से विचलित या उत्साहित होते हैं और जनता के सजग प्रहरी की हैसियत से वे राजनीतिक घटनाओं और प्रक्रियाओं पर अपनी धारणा या प्रतिक्रिया स्थिर करते हैं। शासक हो या अशासक, संकट और संघर्ष की घड़ी में आपसी भेदभाव भूलकर सभी पूंजीवादी शक्तियाँ जनता के खिलाफ एक होंगी। नागार्जुन का यह प्रखर राजनीतिक निष्कर्ष उसकी भावुकता के बावजूद उभरता है।

इससे यह जाहिर होता है कि भावुकता और उनकी राजनीतिक—सामाजिक विवेक में बैर नहीं है, दोनों को आपस मे जोड़ने वाला तत्व है जनता। जनता के प्रति उनका आगाध विश्वास। अन्य सजग व्यक्तियों की भाँति नागार्जुन भी अखबार पढ़ते हैं, पत्र—पत्रिकाओं की सामग्री से देश—विदेश की घटनाओं की जानकारी पाते हैं उससे परिस्थितियों का सांगोपांग चित्र बनाते हैं, इसमें संदेह नहीं। लेकिन कविता

लिखते समय पत्र–पत्रिकाओं से हासिल की हुई सामग्री उनके बहुत काम की नहीं होती। उनकी कविता को समकालीन और कलात्मक बनाता है साधारण जनता के साथ उनका रागात्मक संबंध–सेतु। यह संबंध–सेतु जितना दृढ़ अपने देश की जनता के साथ हो सकता है, उतना अन्य देशों की जनता के साथ नही। नागार्जुन काव्य–संसार में इसका रहस्य है अपने देश की जनता के साथ उनकी प्रत्यक्ष हिस्सेदारी। अन्य देशों की अन्य जनता के संघर्ष पर भी भाईचारे की जितनी कविताएँ अकेले नागार्जुन ने लिखी हैं उतनी शायद ही किसी कवि ने लिखी हों। फिर भी इन कविताओं में वैसी कलात्मक शक्ति नहीं है, जैसी अपने देश की राजनीतिक घटनाओं पर लिखी हुई कविताओं में है।

'लुमुम्बा' पर अपनी कविता में नागार्जुन ने लिखा है :

"अफ्रीका की काली मिट्टी लाल हो गयी आज
गोरे बौनों की साजिश विकराल हो गई आज
मैं सुनता हूँ, कीलों वाली बूटों की ठनकार
मैं सुनता हूँ जंग लगी हथकड़ियों की झनकार
मैं सुनता हूँ राष्ट्रसंघ की छलनामय चुमकार
मैं सुनता हूँ बंधु तुम्हारा प्रतिरोधी हुंकार।"[29]

ठनकार–झनकार के बावजूद न तो नागार्जुन यहाँ अपने भावावेश को प्रभावशाली बना सके हैं, न चुमकार–हुंकार के विरोध से वह घृणा और जोश उत्पन्न कर सके हैं जो उनकी राजनीतिक कविताओं की विशेषता है। इसकी आरम्भिक दो पंक्तियाँ उद्धृत करके डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "उस तरह की कविताएँ राजनीतिक लेक्चरबाजी का छंदोबद्ध रूप है।" (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 149) 'जयति कोरिया देश' पर भी उनकी कविता भावोद्‌गार के इस धरातल से ऊपर नहीं उठती–

"गली–गली में आग लगी है घर–घर बना शमशान
लील रहा कोरिया मुलुक को अमरीका शैतान
वाह ! कोरिया वाह ! कोरिया वाह ! तुम्हारे लाल
तुम पर डालकर वाले बन्दर सके न फंदा डाल।"[30]

दुनिया में जहाँ भी दमन और संघर्ष है, नागार्जुन की सहायता भौगोलिक सीमाएँ तोड़कर जनता की तरफदार बनती है। इससे उनकी चेतना के, सह्रद्रयता के

स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। लेकिन इसी से कविता का कलात्मक मूल्य उन्नत नहीं हो जाता। इन कविताओं में नागार्जुन प्रचारात्मक स्तर से बाहर इसलिए नहीं निकल पाते कि उन देशों की जनता के जीवन की वस्तुगत परिस्थितियों के बारे में, उनकी जातीय और सांस्कृतिक परम्पराओं के बारे में नागार्जुन की जानकारी अत्यन्त सीमित है। ऊपर जिस रागात्मक संबंध सेतु की बात कही गई है, वह जनता के जीवन से प्रत्यक्ष परिचय के बिना संभव नहीं है। जनता से प्रत्यक्ष परिचय के बिना उसकी एतिहासिक परम्पराओं का वस्तुगत ज्ञान भी कठिन है। इसलिए कविता के सौन्दर्यशास्त्र की व्याख्या करते समय शुक्ला जी ने प्रेम को साहचर्यगत कहा है – "जिनके बीच हम रहते हैं, जिन्हें बराबर आँखों से देखते हैं, जिसकी बातें सुनते रहते हैं, जिनका हमारा हर घड़ी का साथ रहता है, सारांश यह है कि जिनके सानिध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, उनके प्रति लोभ या राग हो जता है।" (रस–मीमांसा : पृष्ठ, 121) भारतीय जनता के साथ अपनी प्रत्यक्ष हिस्सेदारी के कारण नागार्जुन का प्रेम इसी कोटि का है। इसीलिए उनकी प्रतिक्रियाएँ जनता की प्रतिक्रियाओं से एकमक होती हुई लगती हैं। अपनी राजनीतिक व्यंग्य रचनाओं से एकरूपता प्राप्त करने में मिथकों (पुराकथाओं) को बहुत बड़ा माध्यम बनाते हैं। यह संयोग की बात नहीं है कि उन्होंने अपनी व्यंग्य–कविताओं में पुराकथात्मक संदर्भों का उपयोग राजनीतिक प्रसंगों में ही सबसे अधिक किया है। इससे भारतीय संदर्भ में लिखी हुई उनकी राजनीतिक कविताएँ अधिक प्रभावशाली बनी हैं। उनमें भावाक्रोश संयमित हुआ है। चित्रात्मकता आई है। जनता के जीवन से अत्यन्त निकट का परिचय रखने के कारण पुराकथाओं ऐतिहासिक संदर्भों और लोकजीवन के दृश्यों–प्रसंगों के उपयोगों से कला को निखारने, अभिव्यंजना को सूक्ष्म बनाने का काम वे जिस खूबी से करते हैं, वह आजकल के अधिकांश कवियों के लिए दुलर्भ है।

राजनीतिक व्यंग्य और उसमें पुराकथाओं का व्यापक उपयोग–दोनों चीजें नागार्जुन की काव्य–चेतना में अभिन्न रूप से बंधी हुई है। नागार्जुन ने आजादी के बाद विकल मनोरथ जनता की तरफ से कांग्रेस सरकार के कृत्यों को मुख्य निशाना बनाकर व्यंग्य लिखने का जो सिलसिला शुरू किया, वह अंत तक अबध गति से चला जो, नागार्जुन के कृतित्व को नये शिखरों पर पहुंचाता है और आधुनिक हिन्दी कविता में स्वंय नागार्जुन की बहुत बड़ी पहचान बन गया है।

आजादी से पहले कांग्रेस जनता को रामराज्य का स्वप्न दिखाती थी। रामराज्य के रूप में भारतीय जनता सुखी समाज की जो कल्पना करती थी, उसमें उसकी मानवीय आकांक्षा और सांस्कृतिक विरासत का मेल था। भारतीय जीवन में तुलसीदास के व्यापक प्रभाव का परिणाम है कि 'रामराज्य के रूप में यहाँ की जनता अत्याचारों से मुफ्त, प्रेम, भाईचारे और समानता पर आधारित समाज का चित्र खींचती है। इसलिए 'रामराज्य' के प्रतीक को बहुत अधिक व्याख्या की जरूरत नहीं थी। लेकिन उसकी चालक भाव शक्ति ऐसी थी, जिसके सहारे कांग्रेसी नेता किसान जनता को अपने साथ रखने में काफी कुछ सफल रहे हैं। आजादी से पहले 'रामराज्य' का जो सपना जनता की प्रेरक शक्ति था, आजादी के बाद वही जीवन का सबसे बड़ा व्यंग्य बन गया। नागार्जुन ने भारतीय जीवनकी इस गंभीरतम असंगति को व्यक्त करने के लिए जो राजनीतिक कविताएँ लिखी, उनमें कांग्रेसी नेताओं के फरेब के खिलाफ जनता का पराजित विश्वास अपने पूरे साहित्यक क्रोध के साथ प्रकट होता है। इन कविताओं में रामराज्य के मानवीय स्वप्न और जनता के पाशविक दमन का, साम्राज्यवाद–विरोधी संग्राम और उसके आगे घुटने टेक देने वाली नीति का अंतर्विरोध बड़ी तीव्रता से उभरता है–

> "लाज–शरम रह गयी न बाकी गाँधी जी के चेलों में
> फूल नहीं लाठियाँ बरसतीं रामराज्य की जेलों में।
> भैया लंदन ही पसंद है आजादी की सीता को
> नेहरू जी अब उमर गुजारेंगे अंगरेजी खेलों में।"[31]

भारतीय जनता के इस अपमान की प्रतिक्रिया है राजनीति पर लिखी हुई नागार्जुन की व्यंग्य कविताएँ यह बात 'टके की मुस्कान', 'करोड़ों का खर्चा', 'आओ रानी हम ढुढ़ेंगे पालकी' आदि प्रसिद्ध कविताओं से भी समझी जा सकती है, और प्रकटतः भावावेश लगने वाली उन दर्जनों कविताओं से भी जिनमें 'रामराज्य' में रावण अल को नंगा होकर नाचा है। भारत माता के गालों पर कसकर लगा तमाचा है' जैसी कविताएँ शामिल हैं। नागार्जुन ने राजनीतिक व्यंग्य लिखने का संकल्प लिया है भारतीय जनता के राष्ट्रीय सम्मान को जाग्रत करने के लिए। 'रामराज्य' का तत्कालीन संदर्भ इन कविताओं को पुराकथाओं से जोड़ने वाला प्रेरक बना है। जनता के हमदर्द और हिस्सेदार की हैसियत से नागार्जुन सांस्कृतिक जीवन के इन प्रतीकों

की चालक भावशक्ति को अच्छी तरह पहचानते हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि नागार्जुन धर्म और संस्कृति को एक नहीं मानते। असावधानी पूर्वक या 'वस्तुनिष्ठ एतिहासिक बोध के अभाव में' (जैसा कि शंभुनाथ का आरोप है, अभिप्राय–4, 1983 प्र0 30) पुराकथाओं की व्याख्या करते समय धर्म और संस्कृति में भेद न करने की अवैज्ञानिक समझ के हावी होने का खतरा बना रहता है। नागार्जुन की एक कविता है 'कालीमाई' इसमें नागार्जुन जनता के अंधविश्वास पर प्रहार करते हैं :

''कितना खून पिया है, जाती नहीं खुमारी।
सुर्ख और लम्बी है मइया जीभ तुम्हारी।।''[32]

इस माता को सिरों की माला पहिनने का शौक है, उसके लिए 'गरीबों पर निगाह है' दूसरी ओर 'धनपशुओं के लिए दया की खुली राह है' कवि उन लोगों की तरफ से 'माँ' को संबोधित कर रहा है, जो भारी कल के पुर्जे बनाकर घिसे जा रहे हैं। उसे यह नरभक्षी देवी आत्मीय नहीं जान पड़ती है :

''कद्दू–लौकी नहीं, तुम्हें तो मांस चाहिए
राम से छीना–झपटी में पूर्णांश चाहिए
लगातार ही बलि पशुओं को आंत चाहिए।''[33]

शंभुनाथ को शिकायत है कि ''जिसके बारे में निराला ने लिखा था–एक बार बस और नाच तू श्यामा'' इसी को नागार्जुन ''क्रूर और जनदोही के रूप में प्रस्तुत'' करते हैं। इससे पता चलता है कि ''उनकी मिथकीय दृष्टि भी गड़बड़ थी।''[34]

जो कवि काली या श्यामा पर कविता लिखेगा, वह कम–से–कम उसके नामों से अवश्य परिचय रखेगा। निराला ने 'श्यामा' को चुना, नागार्जुन ने 'काली माई' को यह अंतर दोनों के दृष्टिकोण को समझने के लिए काफी था। शंभुनाथ जी अगर हिन्दी प्रदेश की जनता का थोड़ा भी व्यावहारिक परिचय रखते हो तो उन्हें यह समझने में कठिनाई न होनी चाहिए कि काली माई को नागार्जुन ने 'क्रूर और जनद्रोही' क्यों दिखाया है।

दूसरी बात यह है कि हर कवि की अपनी एक संवेदनात्मक अंतर्रचना होती है। आवश्यक नहीं है हर कवि किसी प्रतीक का एक अर्थ में उपयोग करें। अगर ऐसा हो

तो 'चंद्रबदन' और 'भृगलोपन' जैसी रूढ़ियाँ साहित्य के विकास को अवरूद्ध कर दें। यहाँ तो ऐसा भी नहीं है कि निराला से आगे बढ़ने के फेर में नागार्जुन ने ऐसी अनोखी बात कह दी हो जो हमारी साहित्य–परम्परा से मेल न खाये। शंभुनाथ जी अगर आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही परिचित हों तो जान सकते हैं कि नागार्जुन ने काली की जो छवि आँकी है वह 'बलि चढ़ाये के पूजे काली' के अनुरूप है। अतः निराला से अलग अर्थ में काली का चित्रण करके नागार्जुन ने दंण्डनीय अपराध नहीं किया है।

तीसरी बात यह है कि निराला शक्ति के उपासक थे, नागार्जुन को किसी देवी–देवता की उपासना की जरूरत नहीं है, वे जनशक्ति के उपासक हैं। इसीलिए प्रतीक का अर्थ करने की दोनों की आंतरिक युक्ति में अन्तर होना स्वाभाविक है।

चौथी बात यह है कि कोई कवि किसी प्रतीक का जो विशेष अर्थ ग्रहण करता है वह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसके संवेदन–जगत का परिणाम स्थितिगत संदर्भ से कैसा संबंध कायम होता है। नागार्जुन अहिंसावादी नहीं है, लेकिन वे मुंडमाल पहनने वाली, मनुष्य रक्त और मांस का सेवन करने वाली देवि को अपनी स्वस्थ सांस्कृति विरासत नहीं मान सकते। इंदिरा गांधी पर लिखते हुए जब वे कहते हैं कि 'डायन के गुर सीख गई हो चला रही हो आँख' (तुमने कहा था, पृष्ठ 50) या 'बूँद वह के उन जलड़ों से टपक रहे हैं' (खिचड़ी विप्लव, पृष्ठ 16) तो आंत चबाने, खून पीने वाली देवी को घृणा न देंगे, यह कैसे सोचा जा सकता है ? यह अकारण नहीं है कि नागार्जुन ने इंदिरा गांधी को 'दुर्गा' और 'काली' के नाम से बार–बार पुकारा है। वे शंकर को करुणावतार मानते हैं, और करुणावतार को पैरों के नीचे दबाये हुए देवी को 'नंगी हो माँ, तुम पर पागलपन सवार है' कहने में नहीं हिचकते। 'कवि कोकिल' में भी शंकर को इसी रूप में देखते हैं :

"भूख–प्यास से जिसने भी की ममतिक चीत्कार
उस बेचारे की गुस्ताखी सह न सकी सरकार
अस्त्र–शस्त्र से करने लगी प्रहार
कितनो को ही भेज चुकी है वह वैतरणी पार
आँच झूठ की बड़ी विकट पिघल रहा कैलाश
शिव की शुभ आधारशिला का होगा सत्यानाश।"[35]

इसलिए देखना यह चाहिए कि एक कवि किसी प्रतीक का जब बार–बार इस्तेमाल करता है, उसके द्वारा व्यक्त किया गया आशय किसी अंतःसूत्र से संबद्ध है या उसमें अर्थ की परस्पर–विपरीत दिशाएँ कलात्मक शक्ति का क्षय कर रही है।

पाँचवी बात यह है कि नागार्जुन ने यह बात 'चौरंगी में फिरती है डायन की बेटी' और 'दाम–कार' आदि के उल्लेखों से जाहिर कलकत्ते की जनता पर इस तरह की देवियों की प्रचंड ग्रस्तता है। इन देवियों की पूजा का सांस्कृतिक आयोजन जिस ताम–झाम और ढोंग–ढकोसले के साथ सम्पन्न होता है, वह विपन्न जनता की चेतना को जाग्रत करने के बदले उसके अंधविश्वास को दृढ़ करते हैं।

राजनीतिक कविताओं के संदर्भ में पुराकथाओं का उपयोग करने वाली नागार्जुन की अंतर्दृष्टि की एक अन्य विशेषता की ओर ध्यान देना भी रोचक होगा। नागार्जुन यह जानते और मानते हैं कि आधुनिक भारत में गांधी जी से बड़ा दूसरा जननेता नहीं हुआ जिसने राष्ट्रीय स्तर पर जनता को इतनी बड़ी संख्या में राजनीति में सक्रिय किया हो। इसीलिए उनकी हत्या पर वे इतने भावाकुल हुए। गांधी जी के प्रति नागार्जुन की सारी श्रद्धा उनके जननायक वाले रूप को लेकर है। इस भावना के वशीभूत होकर वे न तो गांधी जी का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन त्याग देते हैं औ न ही गांधीजी के अनुयायियों के दो मुँहेपन पर हमला करना। यह समझने के लिए उनकी प्रतिनिधि पंक्तियाँ मानी जा सकती हैं :

"बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।"[36]

बापू जो थे, सो थे, उनके 'बन्दर' उनके भी ताऊ निकल गेय। बापू खुद क्या थे ? सन्'45 में 'गांधी' शीर्षक से नागार्जुन ने एक कविता लिखी। उसमें उन्होंने दिखाया कि गांधी रोज परमपिता परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं, जनता प्रार्थना के लिए नहीं, 'दरस तुम्हारा पाने को एकत्रित होती है'। यह जनता 'उद्वेलित सागर–सी अधीर' रहती है। गांधी जब आकर बोलते हैं तब लोग–बाग शांत हो जाते हैं। गांधीजी स्वंय–सेवकों की तैनात कतार वाली 'बिड़ला की कोठी' में रह जाते हैं। नागार्जुन उन्हें 'हे धनकुवेर अतिथि' .... नहीं हे जननायक ! कहकर उनकी भूमिका का पूंजीवादी सारतस्व उजागर करते हैं।[37]

उन्होंने गांधी को लक्ष्य करके बहुत–सी कविताएँ लिखी हैं, दूसरी बहुत सी राजनीतिक कविताओं में गांधी को स्मरण भी किया है, लेकिन यह आलोचना कभी वापस नहीं ली है। पूंजीवादी हितों की तरफदारी करने वाले गांधीजी के चेले आजादी के बाद जिस राजनीतिक संस्कृति का विकास करते हैं, उस पर नागार्जुन के व्यंग्यों का प्रहार बंद नहीं हुआ। 'गांधीजी टोपी : हैट के प्रति' कविता में गांधी टोपी पश्चिमी हैट से कहती है :

''बनी रही वर्षों में बड़प्पन की ढाल
जाने कितना फिदा थे मुझ पर जवाहरलाल
शास्त्री के जमाने तक ठीक था हाल
अब लेकिन चिढ़ाती है इंदिरा की शाल .... [38] अथवा
''गांधी जी का नाम बेचकर बतलाओ कब तक खाओगे ?
यम को भी दुर्गंध लगेगी, नरक भला कैसे आओगे ?[39]
इसी तरह 'इंदूजी क्या हुआ आपको' कविता में चुनौती देते हैं
बचपन में गांधी के साथ रहीं
तरुणाई में टैगोर के पास रहीं
अब क्यों उलट दिया 'संगत की छाप को' ?[40]

गांधी जी के स्वाधीनता संग्राम से 'रामराज्य' का स्वप्न अभेद्य रूप में जुड़ा था। आजादी मिलने से कुछ ही पहले, रामकथा के एक मार्मिक प्रसंग को आधार बनाकर नागार्जुन ने 'पाषाणी' कविता लिखी थी। सुरपति इंद्र गौतम ऋषि का रूप धारण करके अहिल्या से जो छल करते हैं, उस पर कुपित होकर गौतम ऋषि अपनी पत्नी को वेश्या से भी निकृष्ट बताते हैं और पत्थर बन जाने को शाप दे देते हैं। राम 'पाषाणी' का उद्धार करते हैं उसे निष्कलुष–निष्पाप ही नहीं कहते, माँ कहकर 'घुटने टेक प्रणाम' भी करते हैं। अहल्या आशीष देते हुए कहती हैं :

''वत्स ! राजकुल में पाया है जन्म
कभी बनेंगे तुम्ही कौशलाधीष
फिर चरणों पर नाना दिग्देशीय
अर्पित होंगे शत–शत सुन्दर फूल
(अनाघ्रात अस्पृश्य सहज कमनीय) !

अंत:पुर में षोड़शियों के मध्य
बिता सकोगे तुम भी तब दिन–रात
शरद शिशिर मधु ग्रीष्म और बरसात
नहीं अहल्या आयेगी फिर याद।''[41]

अपना उद्धार करने वाले राम के प्रति भी अहल्या शंकाशील है, वह राम के आगे जो आशंका रखती है, वह सामंती सभ्यता पर प्रताड़ित नारी का सबसे बड़ा व्यंग्य है। उसका अविश्वास नागार्जुन आलोचनात्मक विवेक का प्रतिबिम्ब राम अहल्या के दोनों पैर छूकर प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं :

''जीवन भर वह तुम्हें रखेगा याद
नारी केप्रति कभी न होगा क्रूर
नहीं करेगा वह दूसरा विवाह
सदा रहेगा एक पत्निवृतशील ....
कभी न मेरे अंतपुर के मध्य
होगा षोड़शियों का जमघट व्यर्थ
नहीं करूँगा सपने में भी, अब,
क्रयक्रीत दासी का भी अपमान[42] ....

राम अपने राज्य में उन्हें सम्मान और न्याय देने की प्रतिज्ञा करते हैं जो सामंती समाज में अपमानित और प्रताड़ित है। नारी के प्रति गहन मानवीय करुणा इस सामंत–विरोधी भावधारा का निमित है। इस स्तर पर नागार्जुन 'कृत विधि सृजी संयोग की बात नहीं है कि नागार्जुन इस प्रसंग में रामकथा से एक मार्मिक प्रसंग चुनते हैं। आधुनिक युग के सबसे महत्वपूर्ण कवि निराला भी खुद को तुलसीदास की परम्परा से जोड़ते हैं उनकी सबसे महत्वपूर्ण कविताएँ, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' इसी परम्परा की अगली कड़ी है। हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना का विकास करने वाले कवि नागार्जुन का तुलसी और निराला की भक्ति आंदोलन और छायावाद की सामंत–विरोधी परम्परा से जुड़ना स्वाभाविक ही है। आजादी के लगभग सवा साल बाद नागार्जुन ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'विजयी के बंशधर' लिखी। विजयदशमी के पर्व पर सामंत वर्ग के प्रतिनिधि सज–संवर कर निकले हैं :

"मरे हुए रावण को फिर–2 मारने
खस्ता सामंती शान बधारने।"[43]

खुद को विजेता राम के वंशधर मानने वाले इन कुलीनजनों का मजाक बनाते हुए नागार्जुन जी कहते हैं :

"राक्षसराज रावण को मार दिया सींक से
हिमालय को मात किया सर्दी से, छीक से।"[44]

प्रकटतः राजनीति पर न होकर भी यह कविता कांग्रेसी 'रामराज्य' की निरर्थकता व्यंजित करने में बेजोड़ है।

जैसे गांधी जी स्वाधीनता आंदोलन के जननेता थे, लेकिन उनकी नीति पूँजीवादी थी, उनके चेलों ने पूँजीवादी की विकृत परम्परा को तो बढ़ाया लेकिन गांधीजी के जननेता वाले रूप को भुला दिया, वैसे ही राम सामंती युग के जननायक थे, 'रामराज्य' के पुजारियों ने 'खस्ता सामंती शान' को तो जिलाये रखा लेकिन राम के सहृदय और न्यायप्रिय रूप को भुला दिया। राजनीतिक और सामाजिक जीवन में समान्तर चलने वाली प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अभिन्न रूप में जुड़ी हैं, इस बात को नागार्जुन ने अच्छी तरह समझा है। इसलिए उनका व्यंग्य इकहरा नहीं होने पाता। गांधी से संबंधित कविताओं में वह गांधी से अधिक वंशधरों पर है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नागार्जुन के राजनीतिक चिंतन और मिथकीय बोध को बाँधने वाला अंतःसूत्र उनकी काव्यात्मक अंतर्दृष्टि में निहित है। इसलिए दोनों परस्पर विपरीत दिशाओं में नहीं जाते अनायास एक–दसूरे से जुड़कर प्रकट होते हैं। यह अयासहीनता ही नागार्जुन के भावा वेग के असरदार बनने का कारण है। उनके राजनीतिक व्यंग्य इस बात का प्रमाण हैं कि अयासहीनता तरीके से भी सूक्ष्म कला का संयोजन हो सकता है, भावुकतता के बावजूद यथार्थवाद को क्षीण होने से, इतिहास–बोध को कुंठित होने से बचाया जा सकता है। इसके लिए सबसे जरूरी बात है सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं की जनता के हित–अहित विवेक से जाँचना।

यहाँ यह बात जोर देकर कहने की है कि नागार्जुन की इस काव्यदृष्टि को अनुशांति और प्रेरित करने वाला आधार है लोकहित। उनकी लोकहित की यह अदम्य भावना भारतीय जनता के जीवन की वास्तविकताओं को खुद अपनी आँखों से

देखकर, उसके जैसी पीड़ाओं और संघर्षों को खुद अपने तन पर झेलकर पुख्ता हुई है। अपनी कविताओं में तुलसीदास और निराला की तरह अपने जीवन के संघर्षों के बारे में नागार्जुन भी बहुत कुछ लिखते हैं। अपनी कविता में अपने बारे में लिखना ही आत्मग्रस्तता की निशानी नहीं है। आत्मग्रस्तता एक खास तरह का रूग्ण भावबोध है। नागार्जुन ने अपनी कविता में अपने बारे में जो लिखा है उससे समझ में आता है कि तुलसी ओर निराला की ही तरह जनता के प्रति उनकी हमदर्दी और विश्वास उनकी गाढ़ी कमाई है।

कुछ विद्वान खुलकर नागार्जुन के विचारों को पूँजीवाद का पिछलगुआ नहीं कह पाते। वे अपनी व्याख्या में दूसरे प्रकार का कौशल दिखलाते हैं। उदाहरण के लिए श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की राय, "नागार्जुन अपनी कविताओं में उस अभिजात मानसिकता का विरोध करते हैं जो मामूली आदमी की उपेक्षा करते हैं। इसी अर्थ में वे कवि की पक्षधरता के समर्थक हैं।"[45]

नागार्जुन कवि की पक्षधरता अधिक गहन और व्यापक दायित्वबोध से युक्त है। वे मामूली आदमी की उपेक्षा करने वाले कुलीनतावाद का विरोध तो करते ही हैं, मुख्य बात यह है कि नागार्जुन मैं यह मानसिकता अनिवार्यतः उत्पन्न होती है। यह मानसिकता मणिमय आभूषणों की चमक–दमक का प्रतिबिम्ब है और कोढ़ी–कुढ़ब तन को घृणा का पात्र समझती है। नागार्जुन दरिद्रता के कोढ़ को दूर करने के लिये जितने चिंतित हैं, उससे वे केवल अभिजात मानसिकता के विरोधी नहीं बनते, बल्कि इस मानसिकता को जन्म देने वाली समाज–व्यवस्था के भी विरोधी बनते हैं।

नागार्जुन की पक्षधरता के इस स्वरूप को गलत ढंग से समझने–समझाने का कारण यह है कि श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी श्रमिक जनता से नागार्जुन के अविच्छेद्य संबंध को नजरंदाज करते हैं। वे मानते हैं कि 'नागार्जुन की अधिकांश कविताएं निम्नमध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करती हैं।"[46]

इसमें संदेह नहीं है कि 'पूस माघ की धूप सुहावन' आदि अपनी अनेक अत्यंत महत्वपूर्ण कविताओं में नागार्जुन निम्नमध्यवर्ग को जीवन की बड़ी मार्मिक तस्वीर दिखाते हैं, लेकिन यह निम्नमध्यवर्ग उनकी चेतना या दृष्टिकोण का आधार नहीं है। उसका आधार है श्रमिक वर्ग–किसान मजदूर। मध्यवर्गीय आधारभूमि से प्रेरित होने पर किसी भी कवि की रचना में निष्क्रिय सहानभूति अथवा भावुक उद्‌गार का ही स्वर

फूटेगा। नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होंने श्रमिक जनता की आधारभूमि से समाज के प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समस्या पर दृष्टिपात किया है। 'वे और तुम' कविता यहाँ पूरी हैं–

"वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पी रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन ?
उनींदी घड़ियों में चुरती है
वे हुलसित हैं
अपनी ही फसलों में डूब गये हैं
तुम हुलसित हो
चितकबरी चाँदनियों में खोये हो
उनको दुख है
तरुण आम की मंजरियों को पाला भार गया है
तुमको दुख है
काव्य–संकलन दीमक चाट गये हैं।"[47]

कविता में दो खण्ड हैं। पहला खण्ड मजदूर और मध्यवर्ग को आमने–सामने रखता है। दूसरा खण्ड किसान और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी को। दोनों खण्डों में सामान्य है मध्यवर्ग, उसके मुकाबले में नागार्जुन ने क्रमशः मजदूर और किसान को रखा है। पहले खण्ड में तीन प्रसंग है। वे क्रमशः मजदूर वर्ग और मध्यवर्ग के सामाजिक कार्यकलाप को यानी श्रम–प्रक्रिया में उनकी भूमिका को उनकी भौतिक चिंताओं–आकांक्षाओं को और इनके परिणामस्वरूप उनके सांस्कृतिक जीवन को (भौतिक परिस्थितियों के संस्कारगत परिणाम को) उभारते हैं। लोहा पीटने वाला–कठिन शारीरिक श्रम करने वाला–मजदूर पत्तर जोड़ने की चिंता में रहता है, फिर भी ठहाके लगाता है। वह अपनी जिंदगी की घुटन को ठहाकों में घोलकर कुंठाओं से बचता है। जिंदगी की घुटन उसके कठिन संघर्षों का परिणाम है और ठहाका श्रम–प्रक्रिया से जुड़ने पर मिलने वाले नैतिक तेज का परिणाम है। इसी तरह दूसरे खण्ड में दो प्रसंग

हैं। अपनी मेहनत से फसल पैदा करने वाला किसान श्वेत में अपने श्रम को फलीभूत होते देखकर हुलसित होता है और आम की नयी मंजरियों पर पाले का प्रकोप देखकर उसे आघात पहुंचता है। मजदूर–किसान की ये चिंताएँ उनके भौतिक श्रम से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ी है। उसे नागार्जुन अपनी दृष्टि और संवेदना का आधार बनाकर इसके मुकाबले मध्यवर्गीय जीवन को रख देते हैं। श्रम–प्रक्रिया से उसका प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। वह ऊँचे–ऊँचे सपने देखता है, चितकबरी चाँदनियों में डूबता है : परिणाम यह होता है कि मिथ्या दुख का शिकार बनता है। आम की मंजरियों को पाला मार जाने से जो पीड़ा उपत्पन होती है उसके सामने काव्य संकलन को दीमक चाट जाने वाला दुख कितना बनावटी लगता है। एक मनुष्य के भौतिक अस्तित्व की समस्या है और दूसरी इस समस्या से तटस्थ उसी के छाया में चितकबरी चाँदनियों में डूबने की समस्या है। स्पष्ट है कि नागार्जुन की चेतना मध्यवर्गीय दृष्टिकोण पर नहीं, श्रमजीवी किसान–मजदूर के दृष्टिकोण पर आधारित है। इसी दृष्टिकोण पर आधारित है। इसी दृष्टिकोण से वे मध्यवर्ग पर भी कविता लिखते हैं। जहाँ मध्यवर्गीय जीव की घुटन और विवशता का चित्र खींचते हैं वहाँ भी अपने इस विवेक को तिलांजलि नहीं देते। गौर करने की बात है कि धर्म और अतीत की परम्परा के बारे में नागार्जुन जिस आलोचनात्मक विवेक से काम लेते हैं, वही समकालीन जीवन और राजनीति के बारे में उनके चिंतन केंद्र में प्रतिष्ठापित है।

नागार्जुन के बारे में वास्तविक सवाल यह उठाया जा सकता है कि घुमक्कड़ी और फक्कड़पन से बने यायावर व्यक्तित्व के बावजूद वे श्रमिक जनता की संवदेना और दृष्टि को अपनी काव्य चेतना का स्रोत और आधार कैसे बना सके हैं ? अज्ञेय की एक कविता है 'दूर्वांचल' इससे उन्होंने यायावर के जीवन को उसकी स्वाभाविक वृत्ति और उसके रागात्मक संसार चित्रित किया है :

"पार्श्व गिरि का नम्र, नीड़ो में
डगर चढ़ती उमंगों सीं।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा।
बिहग–शिशु मौन नीड़ो में।
मैंने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलाशा पुनः आऊँगा

(भले ही बरस–दिन अनगिन युगों के बाद।)
क्षितिज ने पलक सी खोली।
तमकर दामिनी बोली–
अरे ! यायावर रहेगा याद ?[48]

(ब) शिल्पगत प्रयोग :

कविता के शिल्प–विन्यास पर चर्चा करते समय अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि कविता किसके लिए लिखी गई है उससे प्रकट होता है कि कविता के शिल्प का सवाल वास्तव में संप्रेषणीयता के सवाल से बहुत अलग नहीं है। संप्रेषणीयता की समस्या का एक धरातल निश्चित रूप से कविता के संबोधित पाठकों से जुड़ा हुआ है। पर, उसका दूसरा और उतना ही महत्वपूर्ण धरातल है उसमें चुने गये विषय का। जिसे शिल्प कहते हैं वह उस विषय वस्तु के गठन का रूप है। विषयवस्तु की प्रकृति और कवि के इष्ट पाठक मिलकर इस गठन के रूप को प्रभावित करते हैं। कोई कवि अपनी कविता के लिए किस तरह का विषय चुनता है, यानि कि उसके संवेदना–जगत को कौन–सा तथ्य आंदोलित करता है और वह अपनी कविता सुनाने के लिए किस रुचि–संस्कार के पाठकों को चुनता है–इनदोनों बातों का कमोवेश कवि विचारधारा से भी संबंध है। इस तरह हम देखते हैं कि कविता के शिल्प–विन्यास अथवा रूप–विधान का कवि की विचारधारा से प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध अवश्य हैं। कविता में कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व छिपा रहता है। मनुष्य के व्यक्तित्व की रचना में जितना योगदान विचारों और संस्कारों का होता है, उससे कम उसके भावबोध और इंद्रियबोध का नहीं होता। इसलिए कविता के शिल्प–विधान को प्रभावित करने वाली चीजों में कवि की विचारधारा के अलावा उसके भावबोध और इंद्रियबोध की भी महत्वपूर्ण भूमिका है और इसलिए किसी भी कवि के शिल्प–विन्यास का अध्ययन करते हुए उसे संपूर्ण रागात्मक अंतः संसार–इंद्रियबोध भावबोध और विचारधारा की जान पाना असंभव नहीं है।

इसका यह मतलब नहीं कि शिल्प का अध्ययन और उसके जरिये कवि के सचेत–अचेत पक्षों का रहस्य–भेदन बायें हाथ का खेल है। मुक्तिबोध और शमशेर जैसे दुरुह कवियों को छोड़ दीजिए, खुद नागार्जुन की कविता को 'तात्कालिक' और

प्रचार या 'नारेबाजी' कहकर उसकी अतिशय सरलता पर बहुत बल दिया जाता है। एक बार उनकी कविताओं की व्याख्या का प्रयत्न कीजिए तो पता चल जायेगा कि उनकी सरलता कितनी टेढ़ी खीर है। हिन्दी के एक जानेमाने कवि श्री विष्णु खरे ने नागार्जुन के राजनीतिक विचारों में आने वाले उतार–चढ़ाव की उचित ठहराते हुए लिखा है, ''उसे कवि की समझ का अभाव कहना स्वंय कविता की समझ के अभाव को प्रकट करना है।''[49]

इससे अगर बड़बोलेपन का पता न चले, तो भी यह अवश्य पता चल जाता है कि श्री विष्णु खरे नागार्जुन की कविताओं के अधिकारी विद्वान हैं। लेकिन जब वे नागार्जुन की कुछ कविताओं का उदाहरण लेकर उनकी काव्यशक्ति का पता लगाने चले तो गर्जन–तर्जन शांत हो गया और मुँह से निकला, ''इन कविताओं की शक्ति इस बात में है कि ठीक–ठीक पता लगा पाना कठिन है कि उनमें काव्यत्व कब और कैसे आ जाता है।''[50]

श्री कृष्ण खरे की इस विवश स्वीकृति से यह समझ में आ जाता है कि नागार्जुन का काव्य वस्तुतः उतना सरल है नहीं, जितना ऊपर से वह मालूम होता है। कारण यह है कि काव्य–शिल्प को कविता में निहित वस्तु के निर्माण और विकास की प्रक्रिया से अलग करके नहीं देखा जा सकता। नागार्जुन जैसे कवि के शिल्प–विधान का अध्ययन अधिक पेचीदा इसलिए हो जाता है कि वे अपनी बात इतनी सादगी से रखते हैं कि उसमें बहुत बार कला क मायने और स्वीकृत लक्षण दिखाई नहीं देते। लेकिन कहने के लिए वे जो बात चुनते हैं वह उनके व्यापक अनुभव–ज्ञान का अभिन्न अंग होती है। हम उनके अनुभव–ज्ञान की विशेषता से परिचित हैं कि नागार्जुन एक सम्पूर्ण–देश काल को अपने भीतर और अपने आपको इस परिव्याप्त देश–काल के भीतर ढालने का अनवरत संघर्ष करते रहते हैं। इसलिए उनकी अनेक स्वतः स्फूर्त प्रतिक्रियाएँ जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब बन जाती है और यही कारण है कि जहाँ वे प्रकटतः अपने वैचारिक ढाँचे पर क्षुब्ध दिखाई देते हैं, वहाँ भी वस्तुतः उसी की रचनात्मक परिधियों के भीतर सृजनारत रहते हैं। उनकी कलात्मक अंतः प्रक्रिया को ठीक–ठीक न समझने पर हम उन्हें 'तात्कालिक' या 'प्रचार' आदि कहने को विवश होते हैं। नागार्जुन की काव्य संवेदना के तीन पक्ष निश्चित करते हुए डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा है, ''तीसरी कोटि की रचनाएँ उद्बोधनात्मक हैं जो कि

हल्की हैं।"[51] और भी, "कुछ ऐसी कविताएँ हैं, जो मार्क्सवादी सिद्धांत या मार्क्सवादी दृष्टि जो जीवन–सत्यों का प्रचार करती है।"[52] लेकिन डॉ. मिश्र की दुविधा इससे शांत नहीं हुई। इन 'प्रचार' कविताओं में अंतर्निहित शक्ति की खोज करते हुए उन्होंने लिखा, "नागार्जुन का प्रचार अनुभव–संपन्न होने के कारण सबसे अलग है" अर्थात् उन्होंने 'जनजीवन की वास्तविकताओं को आत्मसात' करके ऐसी कविताएँ लिखी हैं।[53] इसलिए उनका 'प्रचार' काव्य भी बहुधा भावशून्य होने से बच गया है, कलात्मकता का अभाव उसमें हो सकता है। यहाँ यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि कविता के कलात्मक पक्ष का कवि की भावशक्ति से कोई संबंध है या नहीं ?

परिचित कवि श्री केदारनाथ सिंह की नागार्जुन की 'तात्कालिक' और 'गंभीर' कविताओं में अंतःसूत्र तलाशने के क्रम में किसी–न–किसी स्तर पर उस सवाल से टकराते हैं, "....उनकी प्रतिभा एक साथ अनुभव के दो ध्रुवांतों पर कार्य करती है – एक तरफ वात्सल्य, करुणा और सौंदर्य जैसे 'गंभीर' समझे जानेवाले विषय हैं और दूसरी तरफ एक दम सद्यः घटित, आसन्न और तात्कालिक विषय। नागार्जुन का रचना–लोक इन दोनों से मिलकर बनता है। ....वे अपने पूरे कृतित्व के द्वारा मानो इस बात को रेखांकित करते हैं कि एक बदलते हुए संघर्षशील समाज में कविता की यह दोहरी भूमिका अनिवार्य है। ....उनकी कवता में समकालीन राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश से जुड़े हुए कुछ नाम बार–बार आते हैं.....ये नाम अगर उनकी संवेदना को कहीं झकझोरते या छूते हैं तो इसलिए कि एक हद तक ये जनता की दिलचस्पी का, सामान्य बोध का हिस्सा होते हैं। इसलिए इन नामों में एक सीधी अपील होती है और नागार्जुन अपनी रचना में अपने समय के यथार्थ की चीर–फाड़ करते समय इस 'अपील' का पूरा–पूरा फायदा उठाते हैं।"[54]

श्री केदारनाथ सिंह ने 'प्रचार' कविताओं की रचनात्मक संगति गंभीरता से खोजी है, लेकिन उनके 'गंभीर' और 'तात्कालिक' ध्रुवांतों को एकसाथ जोड़ने वाली धुरी कौन–सी है, इस प्रश्न से वे नहीं टकराते। दरअसल, समस्या को दूसरे ढंग से उठाने की जरूरत है।

कवि का संवेदनात्मक विषयाभिप्राय अपने में कोई अमूर्त वस्तु नहीं हैं। कविता एक संश्लिष्ट और सामाजिक इकाई है। उसके विषयाभिप्राय में ही कवि और पाठक का रिश्ता निहित रहता है। यह विषयवस्तु हमारे अनुभव ज्ञान पर आधारित मूल्य–बोध

हमारे वैचारिक परिणाम है इसलिए उसमें हमारे वैचारिक बोध के बीज अंतर्निहित रहते हैं और इन दोनों के परिणाम से निश्चित विषयवस्तु अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपन इष्टतम रूप–विधान लेकर उत्पन्न होती है।

नागार्जुन की कविताएँ कवि और पाठक के तथा कवि के अंतः संसार और उसकी अभिव्यंजना के द्वंद्वात्मक रिश्ते को बखूबी प्रकट करती है। मजे की बात तो यह है कि अपनी 'गंभीर' और 'तात्कालिक' हर तरह की रचना में नागार्जुन समान रूप से अभिव्यक्ति रहते हैं। उदाहरण के लिए एक तात्कालिक कही जा सकने लायक कविता है 'बीते तेरह साल'। इसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए :

''लाख–लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा है रेत
छीन चुका है कौन करोड़ों खेतिहरों के खेत
किसके बल पर कूद रहे हैं सत्ताधारी प्रेत–
.... बलिहारी कागची खुशी की क्यों न बजायें बीन
फटे बाँध से बालू बोले हम भी हैं स्वाधीन
अश्वमेघ का घोड़ा निकला चित है चारों नाल
कौन कहेगा अजादी के बीते तेरह साल ?[55]

आजादी के तेरह साल के विकास में श्रमिकों पर अत्याचार बढ़ा है। किसानों की जमीने छिनी हैं, जमींदारों की शक्ति में इजाफा हुआ है, यह सत्ताधारी वर्गों का चरित्र है, इन वर्गों के नेताओं ने स्वतंत्र भारत के विकास का यह नक्शा नहीं पेश किया था : जनता को कागजी खुशी से बढ़कर कुछ नहीं मिला, विकास परियोजनाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई, जनता ने स्वतंत्र विकास की यह कल्पना नहीं की थी : यह सब देखकर कौन कह सकता है कि आजादी के तेरह साल बीत गये हैं ? कागजी खुशी से जनता को भुलावा देना संभव नहीं है, इसलिए साथ–साथ अश्वमेघ का घोड़ा भी छूटा है। इस तरह की नीतियों से काम लेने मनुष्य नहीं हो सकते, वे प्रेत हैं और प्रेत 'कूद' रहे हैं। 'कूद' के साथ बच्चों का संदर्भ लाकर नागार्जुन ने उसकी पैशाचिक उमंग को और भी उभार दिया है। परिणामस्वरूप यह कविता स्वतंत्र भारत के विकास के अंतर्विरोधों, उसकी दिव्य और निर्भरता पर करारा व्यंग्य बन जाती है।

ऊपर से जो चीजें केवल तथ्यात्मक विवरण जान पड़ती हैं, उन्हें भीतर से व्यंग्य के अंतःसूत्र ने इस तरह बाँध रखा है कि स्वप्न और वास्तविकता का अंतविरोध पूरी

वतरह उजागर होता है और वह कविता को कोरा भावास्पालन या नारेबाजी होने से बचा लेता है। नागार्जुन की विशेषता यह है कि ऊपर से विवरण और नारेबाजी लगने वाली कविता में भी वे किसी बड़ी बात का संकेत कर देते हैं। 1960 के दौर की हिन्दी कविता में तरह–तरह के अराजकतावादी तत्वों के उत्पादों से अप्रभावित रहकर नागार्जुन ने अपने सहज विवेक से भावी दमनचक्र का सूत्रपात देख लिया था। 'अश्वमेघ का घोड़ा छूटा' – इस पौराणिक संदर्भ से युक्त करके उन्होंने अपना निष्कर्ष दूसरों के लिए ग्राह्य ही नहीं बना दिया, वरन् कलात्मक प्रतीक के जरिये यह भी ध्वनित कर दिया कि आने वाले दिनों में प्रतिरोध की शक्तियों को किस तरह कुचले जाने की आशंका है।

इससे भिन्न एक अन्य कविता है 'शासन की बंदूक' उसके पहले दोहे में कवि ने दमन के विपुल–विचार रूप को संवेदनात्मक चित्र में ढालकर प्रस्तुत कर दिया है :

> ''खड़ी हो गयी चाँप पर कंकालों की हूक
> नभ में विपुल विराट्–सी शासन की बंदूक।''[56]

एक तरफ कंकालों की हूक और दूसरी तरफ उसे चाँपकर खड़ी शासन की विपुल विराट्–सी बंदूक चित्रकला का कौशल, कंट्रास्ट की तकनीक, कल्पना शक्ति के उपयोग से कवि ने दमन की भयावहता को एक संवेदनात्मक चित्र में रूपांतरित कर दिया है। उसके बाद बीच के तीन दोहों में दमन की क्रमिक बढ़ोत्तरी और उसके परिणामों को चित्रित किया हे। जब यह शासन की बंदूक 'जहाँ–तहाँ दगने लगी' तब इस व्यापक विनाश–लीला के बीच :

> ''जली ठँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक
> बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

दमन की निरर्थकता और भविष्य की आस्था का पर्याप्त संकेत इस छोटे से बिम्ब में कवि ने कर दिया है।

यहाँ तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक यह कि नागार्जुन को जीवन की असंगतियों और अंतर्विरोधों से व्यंग्य मिला है। चूँकि इस परिस्थिति से टक्कर लेने वाली प्रतिरोध और नवनिर्माण की शक्तियाँ बिखरी हुई हैं, इसलिए उनका व्यंग्य

उत्तरोत्तर सघन हुआ है। दूसरी बात यह कि नागार्जुन शासन–सत्ता को निरपेक्ष तत्व नहीं मानते। वे इस बारे में हरदम सचेत रहते हैं कि शासन वर्ग–उत्पीड़न का यंत्र है इसलिए जमींदार और पूंजीपति वर्ग मिलकर इस शासन सत्ता के जरिये जनता का दमन करते हैं। जैसे–जैसे अंतविरोध गहरे हुए हैं, सत्ताधारी वर्गों का संकट बढ़ा है, वैसे–वैसे जनता का दमन भी बढ़ा है। तीसरी बात यह कि जुल्म और दमन के विरुद्ध जनता के सुखमय भविष्य का विश्वास नागार्जुन सामान्यतः प्रकृति के प्रतीकों द्वारा व्यक्त करते हैं अनेक स्तरों पर व्याप्त है, अनेक अनुभूति–संदर्भों से युक्त है। प्रकृति उनमें सहजता, निश्छलता, स्फूर्ति, विनम्रता विश्वास, आस्था और दृढ़ता उत्पन्न करती है। सभी स्थितियों में प्रकृति उनमें पुलक प्रसन्नता का भाव जगाती है। इसलिए जीवन की प्रसन्नता और सहजता पर आघात पहुँचाने वाली वस्तु या घटना (प्रक्रिया) के प्रति घृणा जगाने के लिए वे प्राकृतिक उपादान का ही इस्तेमाल करते हैं। जिस तरह 'शासन की बंदूक' में कोकिला जल ठूँठ पर बैठकर कूक जाती है और पाठक उसके निहितार्थों का संकेत पा लेता है, उसी अमरीकी राष्ट्रपति काटर के आगमन पर "हम विभोर थे आगवानी में" कविता में नागार्जुन साम्राज्यवाद के युद्धोन्माद, विकासशील देशों के प्रति उसकी नीति और साधारण जनता के हितों–आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति के लिए प्रकृति का हल्का–सा आश्रय लेते हैं :

> "वहाँ तुम्हारी बगिया में तो न्यूट्रॉन–बम के फल लटके हैं
> अणु ऊर्जा की बढ़ोत्तरी में यहाँ तुम्हें लगते झटके हैं
> हमें नहीं चाहिए मसानी–माता का बारूदी आँचल
> जहाँ भस्मासुरी नृत्य का कहीं और ही करो रिहर्सल।"[57]

प्राणिमात्र का नाश करने की क्षमता से संम्पन्न 'सात्विक' और 'मानवीय' कहे जाने वाले न्यूट्रान बम के फल बगिया में लटके हैं ! इन्हें बगिया में कहकर नागार्जुन दावे से यह मान लेते हैं कि उनका पाठक उनके आशय तक पहुँच गया है और उनकी बात से सहमत होकर उनके साथ जुड़ गया है। इसलिए अंत आते–आते जब कहीं और जाकर 'भस्मापुरी नृत्य' का रिहर्सल करने के लिए ललकारते हैं तब उसमें उनकी पूरी घृणा और हिकारत, पूरा रोश और आत्मविश्वास सन्निहित रहता है। पाठक समुदाय पर इतना अटूट विश्वास नागार्जुन के अलावा उनके समकालीन या परवर्ती किसी कवि को देखने को नहीं मिलता। प्रकृति नागार्जुन की संवेदना का ऐसा

अंग है जो उनके और पाठक के बीच स्वाभाविक संबंध–सेतु बना देता है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति नागार्जुन और उनके पाठक के बीच विश्वास के सेतु को साकार करने वाली शक्ति है। यह विश्वास ऐसा है कि नागार्जुन किसी भी विषय को अपना काव्य–विषय बनाकर बेहिचक उसे पाठकों के हाथ सौंप देते हैं।

निश्चय ही किसी कवि का यह अडिग विश्वास जनता के साथ उसके अविच्छेद संबंध पर निर्भर है। नागार्जुन की कविताओं में अगर हमें जनता की भावनाओं–आकांक्षाओं का सुसंबद्ध, इतिहास देखने को मिलता है तो इससे पता चलता है कि 'थाली' नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद अपने विशाल पाठकवर्ग से असंपृक्त नहीं, बल्कि संवेदनात्मक रूप में दृढ़तापूर्वक संपृक्त हैं और यह उनकी 'तात्कालिक' लगने वाली कविताओं की कलात्मक सफलता का रहस्य है। इससे यह न समझना चाहिए कि जिसे कलात्मक न समझना चाहिए कि जिसे कलात्मक मूल्य समझा जाता है, वह इन कविताओं मे नहीं है। बात दरअसल यह है कि नागार्जुन की कला सौंदर्यशास्त्र के स्वीकृत विधान के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। निराला ने अपने समय की काव्य रूढ़ियों को जिस साहस के साथ तोड़ा, उससे आज हम भलि भाँति परिचित हैं। निराला की कविताओं ने काव्य के नये निष्कर्ष नये सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता उत्पन्न कर दी। 'निराला की साहित्य साधना' में डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला के स्थापत्य का उनके शिल्प–विधान का व्यापक विश्लेषण करते हुए सैद्धांतिक स्थापनाओं की जो रूपरेखा प्रस्तुत की वह बाद के काव्य–विकास को परखने का महत्वपूर्ण आधार बन गयी।

ऊपर की बातों को सूचित करें तो पायेंगे कि नागार्जुन की कविताएँ अनेक कारणों से सौंदर्यशास्त्र के स्वीकृत मानदण्डों पर नये सिरों से विचार करने को बाध्य करती हैं, सबसे पहले इसलिए कि उनकी भावात्मक प्रतिक्रियाओं का जनता के चिंतन से अनोखा संबंध है। दूसरे इसलिए कि नागार्जुन अपनी अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की अलंकारिता की परवाह नहीं करते। तीसरे इसलिए कि नागार्जुन की मनोरचना में, स्वभावतः उनकी अभिव्यंजना शैली में व्यंग्य अंतर्निहित है। जहाँ तक नागार्जुन की कविताओं में व्याप्त सजग अंत–विवेक का सवाल है, वह बहुत कुछ निराला से मिलता–जुलता है। दोनों के यहाँ अंतर्विवेक उन्हें आँख मूँदकर सब स्वीकार कर लेने वाली भावुकता से बचाता है। एमरजेंसी के दिनों में नागार्जुन ने जेल में जो कविताएँ

लिखीं। उनसे उनके मनोभावों की अनेकरूपता का ही नहीं उनके अंतर्विवेक की आलोचनात्मक भूमिका का भी पता चलता है। रोज रात में ढाई–तीन बजे मुर्गे की बाँग सुनकर नागार्जुन कहते हैं :

> ''यह मुर्गा नहीं, अलार्म घड़ी है जेल की
> वाकई ! वाकई . . . '[58]

छपरा की उस जेल में मधुमती नाम की गाय का बेरोक–टोक वार्ड में और किचन के दरवाजे तक आना–जाना देखकर उन्हें 'बड़ा ही अच्छा लगा' क्योंकि :

> ''गेट तो बस जरा सा खुला था
> इन दिनों कड़ा पहरा है न ?
> मगर मधुमती पर कहीं कोई पावंदी थोड़े ही है।''[59]

4 अक्टूबर 1975 को छपरा में ही दस–बारह युवक गिरफ्तार किये गये और फिर छोड़ दिये गये। उसके बाद वे मनमाने नारे लगाते हुए चार घंटे तक हर गली मुहल्ले में घूमते फिरे। यह खबर जानक नागार्जुन को बड़ा संतोष मिला कि 'धज्जी–धज्जी उड़ा दी छोकरों ने इमरजेंसी की'[60]

जेल में न (बाहर के) समय का एहसास है, न स्वतंत्रता है। मुर्गे की बाँग जेल की अलार्म घड़ी है, रात खत्म होने की पूर्व सूचना देने वाली ! इसी तरह, कम–से–कम मधुमती तो बेरोक–टोक आती जाती है। बाहर युवकों ने इमरजेंसी के सन्नाटे में थोड़ी हलचल तो पैदा की। नागार्जुन इन सब चीजों में अपनी भावनाएँ मूर्त करके संतोष पाते हैं। लेकिन यह संतोष आंशिक है क्योंकि स्वतंत्रता और विरोध प्रतीकात्मक है और उसमें भी कैद रहने के नाते कवि कोई भूमिका नहीं निभा पा रहा है। 'हुकूमत की नर्सरी' कविता में वह इन समस्याओं के बारे मं अपना चिंतन व्यक्त करता है। उसका चिंतन भावुकता से स्वतंत्र है और यथार्थ की वास्तविकता पर निर्भर है, इसके प्रमाण के लिए इन पंक्तियों को पढ़ लेना आवश्यक है :

> ''दुनिया हमसे पूँछती है :
> बहुसंख्यक भारतीयों को क्यों नहीं मालूम है
> आजादी और राष्ट्रीयता का मतलब।''[61]

अगर बहुसंख्यक भारतीयों को और राष्ट्रीयता का सही मतलब पता होता तो

वे पूंजीवादी विकास का चक्का जाम करके देश की सामाजिक व्यवस्थता को नये सिरे से पुनर्गठित करते। यहाँ नागार्जुन जनता की संघर्ष—चेतना और सांस्कृतिक चेतना की पिछड़ी हुई अवस्था पर क्षुब्ध हैं। लेकिन उनका व्यंग्य मुखर और आक्रामक नहीं है। वह आत्मगत धरातल पर चल रहे विचार—मंथन के रूप में प्रश्न बनकर आया है। इसका कारण यह है कि नागार्जुन सांस्कृतिक चेतना के पिछड़ेपन के लिए जनता को गुनहगार नहीं मानते। वे यह बार—बार दिखाते हैं कि सामाजिक जीवन की असमानता उसके संकट और अंतर्विरोध को गहरा बनाने वाली राजनीतिक सत्ता और उसके सांस्कृतिक पैरोकारों ने मिलकर यह परिस्थिति उत्पन्न की है। इसलिए नागार्जुन मजाक, हिकारत, घृणा और कटाक्ष वाला व्यंग्य इन्हीं लोगों के लिए सुरक्षित रखते हैं। जनता की कमजोरियों को वे समझते हैं। उसे विश्लेषित करते हैं, उसे दूर करने का उपाय सोचते हैं। नागार्जुन के सम्पूर्ण रचना—विधान में भिन्न—भिन्न स्तरों पर भिन्न—भिन्न रूपों में उनके इस रचनात्मक संघर्ष को देखा जा सकता है। एक बार नागार्जुन की शक्ति की इस बुनियादी चरित्र को। उनकी संवेदनात्मक अंतर्रचना को समझ लेने पर उनके शिल्पतंत्र की बनावट को समझना कठिन नहीं रह जायेगा।

समाज के अंतर्विरोध में, जीवन की विषमताओं में नागार्जुन की पक्षधरता द्वंद्वात्मक है। वह एक ओर जीवन के प्रति सक्रिय हमदर्दी, उसके दृष्टिकोण के स्वीकार, समर्थन और सुधार के प्रयत्नों से जुड़ी है तथा दूसरी तरफ ज़नता के देशी—विदेशी शत्रुओं के प्रति रोष से अविष्ट है। जीवन के यथार्थ अनुभव ज्ञान पर आधारित कवि की यह संवेदनात्मक अंतः प्रकृति यांत्रिक ढंग से जनता के प्रति सहानुभूति और उसके शत्रुओं के प्रति घृणा का प्रदर्शन भर नहीं करती। यथार्थ जीवन का अनुभव—ज्ञान कवि की भंगिमा को गहरी नाटकीयता अनेक स्तरों पर दिखलाई पड़ती है :

"बताऊँ ?
कैसे लगते हैं
दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी—कुढब तन पर मणिमय आभूषण !"

यह एक तरह की नाटकीयता यहाँ कवि की कथन—भंगिमा ऐसी है कि उसने प्रश्न के रूप में एक चरम स्थिति का उल्लेख करके उत्तर के रूप में दूसरी चरम

स्थिति को सूचित किया है। दो चरम–विरोधी स्थितियाँ एक–दूसरे से टकराती है और इस नाटकीयता से ममतिक व्यंग्य उत्पन्न होता है। 'प्रेत का बयान' में इससे कुछ भिन्न नाटकीय योजना के तत्व सन्निहित है। पूर्णतया जिले का एक प्राइमरी मास्टर भुखमरी का शिकार होकर नरक पहुँचा। (इस लोक में भी उसे स्वर्ग मयस्सर नहीं है) यमराज उससे मृत्यु का कारण पूँछते हैं। वह बताना शुरू करता है :

"तनखा तीस, सो भी नहीं मिली
मुश्किल से काटे हैं
एक नहीं, दो नहीं, नौ–नौ महीने !
धरनी थी, माँ थी। बच्चे थे चार
आ चुके हैं वे भी दयासागर करुणा के अवतार
आपकी छाया में
मैं ही था बाकी
क्योंकि करमी की पक्तियाँ अभी कुछ शेष थीं
हमारे अपने पुश्तैनी पोखर में।"[62]

नौ महीने तक तनख्वाह न मिलने पर प्राइमरी मास्टर अनाज तो खा नहीं सकता था। इन नौ महीनों में उसका जो 'पुनर्जन्म' हुआ उससे वह यमलोक पहुँच गया। अपने नारकीय जीवन को जीते जाने के लिए वही करमी की पंक्तियाँ खाता था। वह मनुष्य की उत्कृष्ट जिजीविषा का प्रतीक है। नरक के राजा उसकी बात सुनकर अविश्वासपूर्वक हंस पड़े, उनके सिर के मुकुट की कंपमान झालरें दमक उठी, अपना सुनहला लौहदंड फर्श पर ठोककर उन्होंने पूछा–"तो तुम भूख से नहीं भरे ?" प्रश्न से पहले नरकेश्वर के बारे में जो टिप्पणी है उससे 'दंडपाणि महाकाल' के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। उनके इस भव्य रूप के मुकाबले में मास्टर का प्रेत 'हद से ज्यादा डालकर जोर। होकर कठोर' बोलने का प्रयास करता है। यहाँ 'कोढ़ी कुढब तन' और मणिमय आभूषण' वाला चरम विरोध पत्रों में, उनके समूचे क्रियाकलाप उनके व्यक्तित्व और उनकी स्थिति में मूर्त किया गया है।

यहाँ एक बात की तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिए। मास्टर भुखमरी की अवस्था में करमी की पत्तियाँ खाता है। इससे उसकी आँतें इतनी कमजोर हो गयीं हैं कि पेचिश का सटका बर्दाश्त नहीं कर सकी यह भाव वस्तुतः भुखमरी से हुई है। लेकिन

नरक के राजा पूंछते हैं कि "तो तुम भूख से नहीं मरे?" ये नरक के, राजा इसी देश के राजा हैं इसे 'स्वदेशी शासक' कविता की इन पंक्तियों से और साफ–साफ समझा जा सकता है :

"आमों की गुठलियाँ चूरकर / भट्टी की
सोंधी मिट्टी में उस चूरन को सान
सुनकर / खा लेते हैं लोग, पेड़ की छालों
धुँधची कड़हर–सारुख / घास–पात डंठल–
कोढ़ी फूल–फूल / हमारी जनता की भूखी
आँतों को कब तक थामें ? / जय–जय
हे कोसी महारानी ! / जय–जय जयवि
मलरिया भइया ! / जय–जय है काला
बुखार पेचिश, संग्रहणी ! / जय–जय
हे यमदूत, दीनजन बंधु दयासागर करुणामय !"[63]

नागार्जुन यह देखते हैं कि लोग भूख से मरते हैं, ये मौतें भुखमरी की हालत में करमी की पत्तियाँ खकर हों या ऐसी ही किसी दूसरी बजह से लेकिन इस सत्य से मुँह चुराने वाले, इस पर पर्दा डालने वाले कोई–न–कोई और कारण खोज निकालते हैं 'प्रेत का बयान' में इस दारुण वास्तविकता को पुराकथा पर आधारित फैटेंसी में ढालकर नागार्जुन ने नाटकीय भुखमरी के शिकार अतिसाधारण लोगों के प्रति नागार्जुन की ममता और करुणा तथा इस नरक के राजा के प्रति रोष और घृणा एकसाथ व्यक्त होती है। नागार्जुन के व्यंग्य में सहानभूति और घृणा के परस्पर संबद्ध और सुपरिभाषित आयाम है जिससे उनके काव्य की नाटकीयता को दिशावाचक गति मिलती है।

ये एक तरह की कविताएँ हैं। इनमें नाटकीयता व्यंग्य से जुड़कर आती हैं। अंतर है नाटकीयता के संयोजन में। इससे अगले तरह की नाटकीयता 'हरिजन गाथा' जैसी रचनाओं में दिखायी देती है जहाँ वह कृति के पूरे विधान में, छोटे–बड़े प्रसंगों में अंतव्यप्ति रहती है और इतिहास के देश के ही नहीं। काल के भी फलक पर घटित होते हैं। 'खुरदरे पैर'[64] जैसी कविताओं में नाटकीयता का तीसरा स्तर देखने में आता है। यहाँ व्यंग्य मुखर नहीं है, न ही देश–कालगत आयाम प्रमुख है। यहाँ चित्रण की

नाटकीयता से मार्मिक प्रभाव उत्पन्न होता है। खुरदरे पैर एक रिक्शा चालक के हैं। ये पैर 'तिविक्रम वामन के पुराने पैरों को' भाव कर रहे हैं। रिक्शाचालक दो पैरों से तीन चक्र खींच रहा है, वामन ने दो पैरों से तीनों लोक नाप लिया था। वामन के लिए तीनों लोकों का फासला अनहद है। उसके खुरदरे पैर वामन के पुराने पैरों को इसलिए बात कर रहे हैं कि वामन ने किसी आर्थिक विवशता के कारण त्रिलोक नहीं नापा था, ये विवाई फटे पैर 'धरती का अनहद फासला' स्वेच्छा से या व्यक्तित्व प्रदर्शन के लिए नहीं नाप रहे हैं, इसके पीछे 'घंटों के हिसाब से' ढोते जाने की व्यक्तित्व–भजक विवशता है। यह एक प्रकार का सामाजिक उत्पीड़न है। यहाँ व्यंग्य की जो अर्थच्छाया प्रकट होती है, उसकी चोट 'खुरदरे पैर' वाले पर नहीं, उसके पूरे मानवीय–व्यक्तित्व को 'खुरदरे पैर' में बदल देने वाली परिस्थितियों पर पड़ती है कि उन्होंने रिक्शाचालक की इस दारुण, विमानवीकत अवस्था को फौरन पकड़ लिया है। वे रिक्शे वाले का पूरा चित्र न देकर केवल 'खुरदरे' या 'गुट्ठल घुट्ठों वाले कुलिश कठोर पैर' का बिम्ब उपस्थित करते हैं। नाटकीयता पैदा होती है महज पैर में बदले गये एक मनुष्य के दारुण अस्तित्व को देखने वाले कवि–की उपस्थिति से। निराला ने प्रचण्ड धूप और लू से भरे हुए इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई युवती को देखा, उसकी दृष्टि में झाँककर अपने जीवन के कठिन संघर्षों से समरूपता देखी और

> ''सजा सहज सितार
> सुनी मैंने वह थी नहीं जो सुनी वह झंकार।''

नागार्जुन दार्शनिक कवि नहीं है, उनमें 'अमूर्त' चिंतन की ऊँचाई नहीं है। लेकिन उनमें सहज प्रज्ञा के साथ–साथ विचारधारा का भी अस्तित्व है, इससे सभी परिचित है उनकी विचारधारा और सहज प्रज्ञा (उनकी चेतना के सचेत और अचेत पक्ष) उनकी कविता को 'अमूर्त' कला–मकता की तरफ नहीं ले जाती। कारण यह है कि नागार्जुन कला की रचनात्मक प्रक्रिया में अपने इंद्रियबोध और भाव बोध पर विश्वास नहीं खोते। इधर अपनी कुछ राजनीतिक कविताओं में उन्होंने यथार्थ के जटिल अंतः संबंधों के साथ–साथ उन्नत वैचारिक निष्कर्ष भी प्रस्तुत किये हैं। अमूर्त विचारों के साथ उन्होंने कला की मूर्तता की भरपूर रक्षा भी की है। अन्तर्राष्ट्रीय मृदा कोष से भारत ने जो ऋण लिया उसके 'सुफल' से हमारा देश आर्थिक क्षेत्र में अमरीका का पिछलगुआ बनेगा। उस पर अमरीका रोदाब चलेगा और

"हाँ, एक ही खतरा है, जिससे

होगी तू परेशान

बल्कि जरा–सी गफलत से

मिट सकता है तेरा नामोनिशान।"[65]

अमरीका ऋण नीति की कृपा से मैक्सिको का अर्थतंत्र दिवालियेपन के जिस कगार पर आ खड़ा हुआ है। उससे नागार्जुन की चिंता का सत्य प्रकट हो जाता है। नागार्जुन ने यह कविता 'छोटी मछली बड़ी मछली ....' का रूपक अपना कर लिखी है। इसमें उन्होंने किस्सागोई और फैटेंसी के शिल्प का मिलान करके अपनी कला का एक और सशक्त पक्ष उजागर कर दिया है।

अगर अमूर्तता का अर्थ संवेदनात्मक जटिलता और सूक्ष्मता है तो नागार्जुन ने अपनी कविताओं के उदाहरण से यह सिद्ध किया है कि जटिलर और सूक्ष्मतर संवेदनाओं को कला में मूर्त बनाकर कैसे पेश किया जाता है। बुद्धिजीवी पाठकों की बात मैं नहीं करता, नागार्जुन की साधारण पाठक उनकी कविताओं के इस मर्म को पहचानते हैं। नागार्जुन अपनी कला की चुनौती इसी बात को मानते हैं कि आम जिंदगी से जुड़े सवाल और परिस्थितिगत यथार्थ कितना ही जटिल और सूक्ष्म क्यों न हो उसे अपने सृजन में उसकी अभिव्यक्ति असंभव नहीं। इस प्रकार के कथ्य कविता में रूपान्तरित होने पर वे साधारण पाठकों के लिए ग्राह्य बनाये जा सकते हैं। नागार्जुन के शिल्प की विशेषता है कि उनके जटिल और अतिसूक्ष्म कथ्य भी संप्रेषणीय है।

संदर्भ सूची

1.(अ) संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर — पृ. 893
1.(ब) चिन्तन मीमांसा (डॉ. दिनेश चन्द्र द्विवेदी) — पृ. 14
1.(स) चिन्तन का तात्विक विवेचन (डॉ. एन. डी. समाधिया) — पृ. 32
1.(द) तुमने कहा था (भगवत रावत) — पृ. 14
2. भारत में मार्क्सवाद (विष्णु गोपाल वर्मा) — पृ. 141
3. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना (डॉ. जनेश्वर वर्मा) — पृ. 7
4. साहित्य दर्पण — पृ. 6/336
5. सम्मेलन पत्रिका भाग–50 (डॉ. विजय कुमार शुक्ल) — पृ. 141
6. नागार्जुन की कविता (अतय तिवारी) — पृ. 10
7. पहल पुस्तिका (विष्णु चन्द्र शर्मा) — पृ. 12
8. जनसत्ता– 22 जून 1986 (इब्बार रब्बी) — पृ. 06
9. नागार्जुन रचनावाली — पृ. 77
10. हिन्दी की प्रगतिशील कविता (डॉ. रणजीत) — पृ. 36
11. हजार–हजार बांहों वाली — पृ. 65
12. वही — पृ. 53
13. वही — पृ. 60
14. युगधारा — पृ. 19
15. हजार–हजार बांहो वाली — पृ. 15
16. वही — पृ. 54
17. वही — पृ. 60
18. वही — पृ. 49
19. नागार्जुनः व्यक्तितव और कृतित्व (डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट) — पृ. 49
20. 'तुमने कहा था' — पृ. 08
21. वही — पृ. 80
22. चिंतन का तात्विक विवेचन — पृ. 62
23. हजारों–2 बांहों वाली — पृ. 19
24. कलम (करण सिंह चौहान) — पृ. 101
25. युगधारा — पृ. 47
26. वही — पृ. 47
27. वही — पृ. 48
28. वही — पृ. 45
29. प्यासी लथराई आंखे — पृ. 15
30. युगधारा — पृ. 101

31. हंस जून 1947 पृ. 51
32. प्यासी पथराई आंखें पृ. 36
33. वही पृ. 37
34. अभिप्राय पृ. 30
35. युगधारा पृ. 83
36. तुमने कहा था पृ. 18
37. हजार–2 बांहों वाली पृ. 27,28
38. हजार–2 बांहों वाली पृ. 149
39. वही पृ. 82
40. खिचड़ी विप्लव देखा हमने पृ. 10
41. युगधारा पृ. 42
42. वही पृ. 42
43. वही पृ. 59
44. वही पृ. 60
45. समकालीन हिन्दी कविता पृ. 61
46. वही पृ. 58
47. नागार्जुन रचनावाली पृ. 66
48. कवितान्तर पृ. 87
49. खिचड़ी विप्लव देखा हमने पृ. 57
50. आलोचना पृ. 56,57
51. हिन्दी कविता तीन दशक पृ. 86
52. वही पृ. 127
53. वही पृ. 79
54. आलोचना पृ. 56
55. हजार–हजार बांहों वाली पृ. 120
56. नागार्जुन रचनावली पृ. 79
57. खिचड़ी विप्लव देखा हमने पृ. 16,17
58. वही पृ. 66
59. वही पृ. 66
60. वही पृ. 67
61. वही पृ. 71
62. नागार्जुन रचनावली पृ. 47
63. युगधारा पृ. 93
64. नागार्जुन रचनावली पृ. 47
65. कथन जनवरी, फरवरी– 1982 पृ. 17

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

नागार्जुन की काव्यगत संवेदना :

अनुभूति की प्रेषणीयता का आधार कवि और भावुक का सहअस्तित्व है जो संवेदना के धरातल पर सहज ही पारस्परिक हो जाता है।[1]

कलात्मक सर्जना के मूल्यांकन के समय संवेदना की कोटि अर्थात् कला उद्गम के वैशिष्ट्य को पहचाना जाता है। उसके रचनात्मक प्रदेय की सामाजिकता का निर्धारण किया जाता है। सर्जना के नवीन विचारों, चेतनाओं के मूल उपकरण भौतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक शक्तियों का अनुसंधान किया जाता है। एतिहासिक विकास में रचना के योगदान को पहचाना जाता है। इस विवेचन में वस्तुवादी आधार होने के कारण भावों को असीम माना जाता है अर्थात् उनको नौ स्थायी भावों की श्रेणियों में सीमित नहीं किया जाता है। निजी वैयक्तिक अनुभूतियों को रस का आधार नहीं माना जाता बल्कि उनका सामाजिक होना अनिवार्य है।[2] अनुभूति की प्रेषणीयता पर भी विशेष जोर दिया जाता है। कलाकार की आस्था और नकारात्मक जीवन मूल्यों का प्रश्न उठाते हुए कहा गया है कि ''अनास्था, निराशा एवं नकारात्मक मूल्य रचना के सर्वोच्च मूल्य नहीं हो सकते और न ही जीवन के यथार्थ को समग्र रूप से प्रस्तुत ही कर सकते हैं। रचना में आंशिक स्थिति स्वीकारी जा सकती है बशर्ते कि रचनात्मक तत्वों को उजाकर करने में सहायक हों।[3]

जीवन के सर्वोच्च मूल्य के रूप में आस्था और आशा को स्वीकृति मिली है, उनका उद्देश्य मानवीय उत्थान होना चाहिए। सामाजिक यथार्थ और मनोगत मूल्यों का कलात्मक रूपान्तरण आवश्यक है। सामाजिक यथार्थ का आशय है द्वन्द्वात्मक तत्वों की स्वीकृति उन्हें भी रचना में तभी स्वीकृति मिल सकती है जब वे मनोगत मूल्यों पर रूपान्तरित हो जायें। मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ यथार्थ के आंशिक पक्ष को पेश करती हैं। सर्जनात्मकता और मानवीय सृजन सोच और संवेदना दोनों की युति से असंपृक्त नहीं रह सकता। नागार्जुन की वैचारिकता के प्रवाह में भाव–धाराओं का भी सम्मिश्रण है।

कठोर और कोमल का समन्वित रूप ही नागार्जुन की कविता है और यही

नागार्जुन के मनुष्य का परिचय है। अपनी अनेक कविताओं में वे जहाँ नितान्त द्रवणशील, करुणाद्र तथा अतिशय संवेदनशील कभी–कभी भावुकता के स्तर तक उदार और तरल दिखाई पड़ते हैं, मसलन 'गुलाबी चूड़ियाँ', 'खूब गए दूधिया निगाहों में', 'यह कैसे होगा', 'यह क्योंकर होगा', 'कैसा लगेगा तुम्हें', 'एक मित्र को पत्र', 'आओ प्रिय आओ' जैसी कविताओं में वहीं कुछ दूसरी कविताओं में बेहद कठोर अक्रामक, दृढ़ और अस्मिता के धनी रचनाकार और व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। उनकी एक कविता है, 'प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का'। इस कविता में वे अपने कवि स्वभाव को, अपनी मूलवर्ती कवि संवेदना को परिभाषित करते हैं, अपना सही परिचय देते हैं। शासक–शोषक तंत्र के खिलाफ उनका गैर समझौतावादी रुख उनके कवि जीवन के प्रारम्भ से लेकर आज तक वैसा ही विद्यमान है।[4]

पश्चिम बंगाल का छद्म चुनाव हो, जिसे उन्होंने प्रहसन की संज्ञा दी है अथवा शासन का जगह–ब–जगह चलने वाला दमन चक्र, उन्होंने उसकी तीव्रतम भर्त्सना की है। उसके हिमायतियों को, वह फिर कितनी भी ऊँची कुर्सी पर क्यों न बैठा हो, एक पल के लिए भी नहीं बख्शा है। नेहरू और इन्दिरा गाँधी पर लिखी उनकी कविताएँ हमारे इस कथन का प्रमाण है कि इस जनकवि को सत्ता का कैसा भी आतंक, कैसा भी प्रलोभन कभी दबा और झुका नहीं पाया। उनके संकल्पों का पैनापन, उनके स्वभाव की दृढ़ता और निर्भीकता तथा अपने लक्ष्य के प्रति उनकी अदम्य निष्ठा का सबसे अच्छा परिचय उनकी ऐसी ही कविताएँ देती हैं, जहाँ वे अपने प्रतिबद्धता और जन पक्षधरता को पूरी ऊर्जा से बड़ी–से–बड़ी चुनौतियों के बीच भी अभिव्यक्त करते हैं। उनकी सामाजिक न्याय के प्रति प्रबिद्धता निश्चय ही उनकी संवेदनाओं से संप्रेरित है।

नागार्जुन मार्क्सवाद से प्रभावित थे। मार्क्सवादी दर्शन में मनुष्य का स्थान केन्द्रीय है। उसके अनुसार सामाजिक परिवर्तन, मात्र उसकी द्वन्द्वात्मक विचारधारा नहीं लाती है, मनुष्य लाता है। सिर्फ सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ नहीं बल्कि वे विचार जो उन परिस्थितियों का अर्थ और उनकी संभावनाओं को समझते हैं, निर्वयक्तिक नियम की अन्धी गति नहीं, मनुष्य के विचार उसकी साधना, उसका संकल्प और उसका बलिदान लाता है। पर ऐसा संकल्प नहीं जो अपने आपको इतिहास की गति के खिलाफ खड़ा करने की हास्यास्पद कोशिश करता है, बल्कि

ऐसा संकल्प जो एतिहासिक परिस्थितियों को समझ कर और उनको साधन बनाकर अपने को कार्य रूप में परिगत करता है।[5]

मार्क्सवाद मानववाद का सर्वोच्च रूप है। उसने अमानुषता ने परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में जन्म लिया और इसका अन्तिम लक्ष्य मनुष्य को उसकी खोई हुई मानवता फिर से देना है। मनुष्य द्वारा अपनी मनुष्यता खोने को हेगेल ने 'एलीनेशन' कहा है। हेगेल के दर्शन में एलीनेशन का मतलब प्रत्यय या आत्मा द्वारा अपने स्वभाव से अलग तरह के पदार्थ में अवतरण के कारण अपने आप पर सीमाएँ थोपना है, आत्मपरिसीमन है। मनुष्य अपनी पूर्ण सम्भावनाओं को प्राप्त नहीं कर सकता, वह अपने आप से छोटा है, अपनी सम्भावनाओं से छोटा है। खासतौर से उद्योगीकृत समाज में उसी के द्वारा पैदा किए हुए औद्योगिक ढाँचे ने उसे बाँध रखा है। वह अपने परिवेश का मालिक नहीं, उसका गुलाम है। मार्क्स ने हेगेल से एलीनेशन की यह धारणा ली और उसे ठोस भौतिक धरातल पर रखकर इस पर विचार किया। मार्क्स के अनुसार मेहनत मनुष्य की मनुष्यता का रहस्य है।

वह एक ऐसी प्राथमिक मानवीय क्रियाशीलता है, जिसके द्वारा प्रकृति का 'प्रतिबोध' करता है, उसे जीतता है। अपनी पुस्तक 'आर्थिक और दार्शनिक पाण्डुलियों' में वह कहता, 'जिसे विश्व इतिहास कहा जाता है' वह मानवीय मेहनत की दृष्टि के सिवा कुछ भी नहीं है। मेहनत पशु भी करते हैं पर मानवीय मेहनत सचेत और सृजनात्मक होती है, जबकि पशुओं की मेहनत अचेत और मूलप्रलयात्मक। लेकिन वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था में मनुष्य भी अमानवीयकृत कर दिया जाता है, एक मेहनती पशु मात्र बना दिया जाता है। इस अधःपतन का कारण है : एलीनेशन। 'एक मजदूर का श्रम उसके लिए न केवल एक वस्तु (ऑब्जेक्ट) बन जाता है, उससे स्वतंत्र, एक बाह्य अस्तित्व प्राप्त कर लेता है, बल्कि वह उसके विरुद्ध एक बाहरी और शत्रुतापूर्ण शक्ति की तरह भी सामने आने लगता है, उतना ही कम का वह मालिक हो पाता है, उतना ही अधिक वह मेहनत करता है, उतना ही अधिक सशक्त होकर उसका वह सिरजा हुआ संसार उसके विरुद्ध खड़ा होता है ; उतना ही दरिद्र वह अपने आन्तरिक जीवन में होता जाता है, उतना ही कम वह स्वंय अपना रह जाता है। इस एलीनेशन से मनुष्य तभी छुटकारा पा सकता है जब वह एक ऐसे समाज की स्थापना करे जिसमें 'समाज' व्यक्ति के ऊपर या उसके विरुद्ध खड़ी होने वाली कोई अमूर्त वस्तु या शक्ति

नहीं रह जाए, बल्कि उसकी पूर्णता प्राप्ति का आधार बने।

यही सामाजिक स्थिति मार्क्स की दृष्टि में समाजवाद है। यह वह स्थिति है, जब मनुष्य पाशविक दशाओं को छोड़कर सच्चे अर्थों में उसके नियंत्रण में आती है। वह पहली बार सचमुच प्रकृति का स्वामी बनता है और पूरी तरह सचेतता के साथ इतिहास की बागडोर अपने हाथ में लेता है। समाजवादी समाज मनुष्यता का आवश्यकता के क्षेत्र से स्वाधीनता के क्षेत्र में रखा हुआ पहला कदम है। कहना न होगा कि बिना संवेदनात्मक धरातल के ऐसा होना संभव नहीं। परिवेशगत संवेदनाओं की दृष्टि से नागार्जुन के कथ्यगत तथा शिल्पगत संदर्भ विपुल प्रभावपन्नता से सम्पन्न है।

(अ) कथ्यगत संवेदना :

नागार्जुन हिन्दी कविता के मंच पर छायावाद के परवर्ती दौर में आते हैं। संस्कृत, हिन्दी और मैथिल कविता की समृद्ध परम्पराओं को आत्मसात करके निखरा हुआ उनका कवि–व्यक्तित्व उसी समय अलग से ही पहचाना जाने लगता है। चूँकि वे प्रगतिशील आन्दोलन के पहले उत्थान के रचनाकार हैं और प्रारम्भ से ही प्रतिबद्धता की जमीन पर मजबूती से खड़े होकर अपने कवि का परिचय देते हैं, अतएव गहरे–से–गहरे रोमानी मूड में धरती तथा युग के यथार्थ से वे अलग नहीं हो पाते। कविता के जो शाश्वत विषय माने गए हैं उनकी गहरी थाह लेते हुए और उसमें साधिकार उतरते हुए, वे अपनी पहचान पूर्ववर्ती मानसिकता से भिन्न ही बनाते हैं।[91] हिन्दी संस्कृत तथा मैथिली भाषा की काव्य–परम्पराएँ काव्य संवेदना की, काव्य शिल्प की एक विरासत से तो परिचित कराती है किन्तु इस विरासत का वे अपने युग संदर्भों में अपनी दृष्टि के अनुरूप, अपने अपने संकल्पों के तहत ही इस्तेमाल करते हैं, और इसी नाते ये परम्पराएँ उन पर बोझ नहीं बनतीं, उनसे दूषित नहीं होतीं, उनकी शक्ति बनते हुए उनके द्वारा नई दिशा पाती हैं, नई जमीन पाती हैं। उनसे समृद्ध होती हैं। संस्कृत कविता की क्लासिकल भंगिमाओं को, वे लोक जीवन की अनुकूलता में नया संस्कार देते हैं, और विद्यापति की 'दैसिल बयना' को सही मायनों में लोक–लयों की मिठास से भर देते हैं, और हिन्दी कविता की भक्तिकाल की समपर्णमयी भावना को किसी अलक्षित सत्ता के स्थान पर सगुण साकार जन देवता से जोड़ते हुए जैसे नई ऊर्जा देते हैं। यही नागार्जुन की मौलिकता है। यही उनका प्रदेय है कि वे परम्परा

को रूढ़ि न बनने देकर सचमुच में शक्ति का एक स्रोत, नए अभियानों का प्रारम्भ बिन्दु देते हैं।

हमने ऊपर कविता के शाश्वत माने जाने वाले विषयों, जैसे प्रेम और प्रकृति का उल्लेख किया है। हमने नागार्जुन के कवि व्यक्तित्व की पहचान उनकी कोमल मृदु सवेदनाओं को भी माना है। उनके कठोर रुख पर हमने काफी कुछ कहा है। थोड़ा उनके इस कोमल–मृदु पक्ष को भी देखें और वह भी प्रेम और प्रकृति जैसे विषयों के भीतर। प्रेम जैसे विषय पर छायावादी कवियों ने भी खूब लिखा और अपनी रोमानी संवेदना के अनुरूप बहुत अच्छा भी लिखा है। प्रेम छायावाद में नारी पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों का अतिक्रमण कर आत्मा की गहराइयों तक पहुँचा है, एक दिव्य, अभूतपूर्व दैवी प्रेरणा बन सका है। संयोग और वियोग दोनों आयामों पर वह कलुषित नहीं है। सात्विक ही बन्द रहा है। एक ऊँचाई दी है उसे छायावाद के प्रसाद, पन्त और निराला जैसे कवियों ने। जहाँ वह लौकिक मानवीय तथा शरीर–सम्बन्धों की व्यंजना करता है वहाँ भी उसका एक स्तर है, वह सांकेतिक है, कुण्ठाहीन है, सच्चे और सात्विक राग से प्रेरित है। अपवादों को छोड़ वह प्रायः परकीया प्रेम ही है या फिर काल्पनिक भावी पत्नी के प्रति, काल्पनिक प्रेयसी के प्रति, और इस जमीन पर भी वह बहुत अधिक आदर्शात्मक, बहुत बायवी है। कुल मिलाकर, सांकेतिक प्लेटोनिक, तथा प्रेम को एक दिव्य प्रेरणा, एक दिव्य अनुभूति मानने की ही है। वहाँ नारी पुरुष के बीच के इस प्रेम को यदि लाँघने की कोशिश हुई है तो या तो रहस्यवाद के अन्तर्गत जहाँ भी वह नारी–पुरुष दायरे में बंधा होते हुए भी ईश्वर या ब्रह्म को ही पुरुष के रूप में मानकर चला है जैसे महादेवी में। प्रेम का एक और आयाम छायावाद में प्रकृति तथा मानव प्रेम का है, राष्ट्र तथा विश्व प्रेम का है, किन्तु अपनी अभिव्यक्ति में भी उसकी मूलवर्ती जमीन रोमेन्टिक ही है, आदर्शात्मक और वायवी ही है। छायावाद की उपलब्धि यों में उसकी प्रेम विषयक कविताएँ निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण है। निराला जैसे कवियों में छायावाद की सीमाएँ टूटी भी हैं और प्रेम और भी अधिक मूल्यवान बनकर उनकी रचना में अभिव्यक्त हुआ है। उसमें नये आयाम जुड़े हैं। वह वात्सल्य और दाम्पत्य तक भी बड़े समर्थ रूप में पहुँचा है।

प्रगतिशील कविता के युग में कविता का नजरिया ही बदल जाता है और नजर बदलने के क्रम में कविता की एक अधिक वास्तविकता सजीव दुनिया हमारे सामने

खुलती है। प्रायः प्रगतिशील कविता की उपलब्धियों के बारे में पूंछा जाता है, इस नियत, से गोवा प्रगतिशील कविता की अपनी कोई खास उपलब्धियाँ न हों, उसे आसानी से उपेक्षा की वस्तु बनाकर छुट्टी पाई जा सकती हो। बात जब सही नीयत से शुरु न होगी तो वह खत्म भी बदनीयती से ही होगी और परिणाम है कि प्रगतिशील कविता की बात आते ही उसकी जो छवि सामान्य पाठक के मन में उभरती है वह मजदूर किसानों की दुख और शोषण गाथा की, शोषण सत्ताओं के अन्याय और उन पर आक्रोश बरसाने वाली राजनीतिक तथा स्थल सामाजिक विषयों को लेकर चलने वाली कविता की छवि होती है, वह समाजवाद–मार्क्सवाद की विचारधारा से जुड़ी कविता की छवि होती है, प्रगतिशील कविता जीवन की समग्रता की कविता है, वह एक मुकम्मल कविता है, जिसके दायरे में मनुष्य का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन अपने समूचे अन्तर्वद्धि के साथ अभिव्यक्त हुआ है।[6] प्रगतिशील कविता की इस छवि को जानबूझकर पूर्वाग्रहों के तहत नहीं उभारा गया। कुछेक अपवादों को छोड़कर यह नहीं कहा गया कि प्रगतिशील कविता छायावाद के आगे की कड़ी है और उसकी उपलब्धियाँ हैं, बल्कि सच्चाई यही है। वह एक जीवन्त दृष्टि की कविता है और दृष्टि की इसकी जीवन्तता ने जीवन के हर पहलू को जिसे भी उसने छुआ है, एक जीवन्तता दी है, व्यक्ति का वैयक्तिक जीवन हो या सामाजिक जीवन। खैर हम इस बात को आगे न बढ़ाकर महज प्रेम और प्रकृति जैसे विषयों के दायरे में जिनके सन्दर्भ में छायावादी कविता को अप्रतिम माना गया है, मात्र नागार्जुन की कविता का साक्ष्य लेकर यह दिखाना चाहेंगे कि इन क्षेत्रों में भी प्रगतिशील कविता छायावाद के आगे की उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकी हैं और जो उससे कम मूल्यवान भी नहीं हैं। शेष प्रगतिशीलों की चर्चा भी हम यहाँ नहीं करेंगे। जिनके काव्य में प्रेम और प्रकृति का पूरा–का–पूरा नया संसार अपनी सारी वास्तविकता में, अपने समूचे सौन्दर्य तथा तथा व्याक्ति में मौजूद है। हम यहाँ अपने को नागार्जुन तक ही सीमित रखेंगे और बताएंगे कि प्रगतिशील कवि महज सामाजिक क्रान्ति पर ही नहीं लिखता, गोकि उस पर भी लिखता है और एक मानवीय जिम्मेदारी के तहत लिखता है वह व्यक्ति जीवन की कोमल संवेदनाओं को भी अपनी दृष्टि तथा संवेदना की परिधि में लाता है, और पूरी सामर्थ्य के साथ लाता है।

प्रेम कविताएँ नागार्जुन ने उसके सारे आयामों को मूर्तिमान करते हुए लिखी है। उनके यहाँ प्रेम महज स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के राग को ही अन्तिम मानकर नहीं रह

गया है, वरन् उसे आगे वात्सल्य आंचलिकता देश–देश के जन देश की जनता, मनुष्य और मनुष्य मात्र तक व्याप्त है। यह सब कुछ नागार्जुन में एक बड़े मानवीय तथा सामाजिक आशय के तहत आया है और बड़े विस्तार और गहराई के साथ आया है, इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। मनुष्य तथा धरती के प्रति नागार्जुन की प्रेम–भावना से पाठकों से अतरंग परिचय है, किन्तु यह दुंतरित मुस्कान जैसी वात्सल्य की कविताएँ भी भुलाने की चीज नहीं है। जहाँ तक स्त्री–पुरुष के बीच में प्रेम–सम्बन्धों का प्रश्न है। सचमुच नागार्जुन ने उसे अधिक नही छुआ है, और जहाँ छुआ भी है, वहाँ उसे दामपत्य के भीतर ही छुआ है, वास्तविक संवेदनाओं के अन्तर्गत छुआ है। परकीया प्रेम, काल्पनिक प्रेम तथा प्रेम के प्रचलित समारोहों का आयोजन करने का अवकाश जरूर उन्हें नहीं रहा परन्तु दामपत्य प्रेम को जिन थोड़ी सी कविताओं में उन्होंने अभिव्यक्त किया है वे न केवल उनके हृदय के राग को उसके सम्पूर्ण कोमल मृदु तन्तुओं के साथ पेश करती हैं, दामपत्य को उसकी सही गरिमा भी देती हैं, नितान्त मानवीय तथा वास्तविक बनाकर भी पेश करती हैं। कवि की इस गहरी दाम्पत्य रति, को उसकी निहायत सात्विक निष्ठा को, सात्विक भजन–पूजन वाले अर्थों में नहीं, उसके छलकते छलछलाते प्यार को, उसकी सारी तरलता में देखना हो तो उनकी वह बंगला कविता देखे जिसमें वृद्धावस्था में झड़ चुके केशों वाली अपनी पत्नी प्रिया से कवि पूछता है कि अपनी माँग का वह अंश तो बताओ, जहाँ किसी समय तुम सिन्दूर लगाया करती थी, जो कि अब केशों के झड़ जाने के कारण सपाट हो गया है, या फिर उनकी 'यह तुम थी' कविता देखें, जिसमें बड़े सार्थक बिम्बों में कवि ने जीवन के सान्ध्यकाल में पहुँचे दम्पति के बीच के गहरे प्रेम सम्बन्ध को एक अद्भुत जीवनी शक्ति के रूप में परिभाषित किया है। शुक्ल जी ने प्रेम को लम्बे साहचर्य का परिणाम माना है और यह साहचर्य उसे निरन्तर गहराता है, ऐसा भी कहा है। नागार्जुन की ये रचनाएँ लम्बे साहचर्य जनित इस दाम्पत्य प्रेम को उसकी सारी गहराई और ऊर्जा के साथ अभिव्यक्त करती हैं। उम्र के साथ दम्पति के प्रेम कम नहीं होता, और भी प्रगाढ़ होता है जीवन में जब किसी और से जीने की कोई प्रेरणा नहीं मिल पाती, आगे बस मौत का अन्धकार ही दिखाई देता है, सब उपेक्षित मानकर अलग–थलग हो जाते हैं अपशकुन मानने लगते हैं, उस समय प्रिय पत्नी का एक हल्का–सा स्पर्श ज़ैसे जीवन को जीने की एक नई किश्त देता है। जो प्रेरणा जो किरण अन्धकार को चीरते हुए जीने की आकांक्षा के रूप में मन में कौंध जाती है, वह और कोई नहीं होती, प्रिया

ही होती है। 'यह तुम थी' में तुम भी और कोई नहीं, आपेक्षित बुढ़ापा ही है, यह कविता दामपत्य प्रेम की उन कविताओं में है जिसकी मिसाल नहीं है न छायावाद में और न ही उसके बाद। 'सिन्दूर तिलकित भाल' कविता अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है जिसमें प्रवास के दिनों में कवि को अपनी प्रियतमा पत्नी और उसके 'सिन्दूर तिलकित भाल' की याद आती है और उसके साथ ही याद आता है अपना प्यारा अंचल, प्यारी धरती, उसके लोग और उसकी प्रकृति कमल कुमुदिनि–तालमखान सब। नागार्जुन की ये कविताएँ, जैसा कि हमने कहाँ दाम्पत्य की कविताएँ होते हुए भी पति–पत्नी का एकलाप नहीं है, रोमानी मानसिकता की कविताएँ नहीं हैं। कवि इनमें भी एक वृहत्तर परिवेश से जुड़ा हुआ है, पूरी आत्मीयता के साथ। प्रिया या पत्नी की याद के साथ वह सबकी याद करता है, ललक पड़ला है प्रिया के अलावा उस धरती का भी समीप्य पाने के लिए, अपनी उस गँवई पगडण्डी की चन्दन–वर्णी धूल माथे पर लगाने के लिए। यह मानसिकता कुछ वैसी ही है जैसी कालिदास के यक्ष की है जो अपनी प्रिया को सन्देश भेजते हुए मेघ से कहता है कि उन जगहों पर बरसकर कुछ हल्के हो जाना जहाँ किसान–कन्याएँ वर्षा के अभाव में तुम्हारी ओर नेत्र उठाए देखती हुईं मिलें। प्रिया का ध्यान अपनी सारी सघनता के बावजूद कालिदास के यक्ष को बाकी चीजों से असम्प्रक्त नहीं कर पाता। यह कालिदास के प्रेम–चित्रण, दामपत्य चित्रण की विशिष्टता है, और यही नागार्जुन के भी दामपत्य चित्रण का वैशिष्ट्य है।[7]

प्रकृति नागार्जुन की रचनाओं में अपने सारे रंग रूपों में, सारी मुद्राओं में, सारे संभार के साथ आई है। प्रकृति के प्रति इतना उनमुक्त और खुला हुआ अनुराग, उसके प्रति इतनी ललक–भरी आत्मीयता, उसके आकाशीय और धरती से जुड़े वैभव की इतनी सूक्ष्म और गहरी पकड़, उसका इतना बारीक और संवेदनामय पर्यवेक्षण आधुनिक कविता में कम ही मिलेगा। बहुत बड़ी संख्या है नागार्जुन की प्रकृति कविताओं की, और एक अच्छी–खासी संख्या एक बड़ी प्रसिद्ध कविता है 'अमल धवल गिरिक के शिखरों पर बादल को घिरते देखा है।'यह कविता उनके 'युगधारा' संकलन में सबसे पहले प्रकाशित हुई थी। हिमालय वर्णन से जो लोग वाकिफ हैं वे इस कथन की ताईद करेंगे कि नागार्जुन की यह कविता अपनी सीमित परिधि में भी हिमालय की वैसी ही अनुभूति देती है और संस्कृत की क्लासिकल शैली की अनुरूपता में उसे ओर भी प्रगाढ़ कर देती है। परन्तु यह कविता कालिदास की अनुकृति नहीं है, यह नागार्जुन की अपनी देखी हुई प्रकृति है जिसका वे बार उल्लेख करते हैं। कालिदास

का यक्ष, उनका रामगिरि, उनकी अलका, उनकी व्योम तो कल्पित थी; किन्तु नागार्जुन बड़े विश्वास से कहते है। कि वे जो चित्रित कर रहे हैं वह उनका अपना देखा है। बात कालिदास के प्रकृति चित्रण को कल्पित कहने और अपने को वास्तविक बताने की नहीं, बात यह है कि नागार्जुन के यहाँ प्रकृति रोमानी नहीं काल्पनिक नहीं, अंतकारों से सजी–सजाई नहीं, वायवी नहीं, एक सजीव वास्तविकता है, अपने समूचेपन में, अपनी सारी मुद्राओं में। धरती और आकाश, गाँव और नगर, सब तक उनकी व्याप्ति है। प्रकृति के साधारण–असाधारण सारे रूप उनके यहाँ हैं, उसका सौन्दर्य और उसकी कुरूपता, दोनों ही उन्हें प्रिय हैं, उसके मनोहारी रूपों के प्रति भी उनकी अनुरक्ति है और उसके रौद्र रूपों के प्रति उनमें दुराव नहीं है। वसन्त, शरद और हेमन्त ऋतुएँ उन्हें जितनी प्रिय हैं, ग्रीष्म, शिशिर, प्रवास से भी उन्हें उतना ही प्यार है। पावस तो उन्हें बेहद प्रिय है। उसके फलस्वरूप आने वाली बाढ़ तथा महामारियों का चित्रण भी वे करते हैं, जनता के कष्ट से व्यथित भी होते हैं, परन्तु पावस के प्रति उनकी ममता कम नहीं होती। कदाचित ही आधुनिक युग के किसी कवि ने पावस के कीचड़ का अभिनन्दन किया हो। नागार्जुन 'जय हे कीचड़' नाम से कविता की हरिश्चन्द्र से उपमा देते हैं। वर्षा पर जितनी कविताएँ नागार्जुन ने उसमें भींगकर लिखी हैं, कम कवियों ने ही लिखीं होंगी।

नागार्जुन की भाव प्रवणता के अति विस्तृत आयाम हैं। जीवन–जगत के विविध सन्दर्भों के माध्यम से उनका कथ्य लोकार्षित हुआ है।

> "कालिदास, सच–सच बतलाना
> इन्दुमती के मृत्यु–शोक से
> अज रोया या तुम रोये थे
> कालिदास सच–सच बलाना
> रति का क्रन्दन सुन आँसू से
> तुमने ही तो दृग धोये थे
> कालिदास सच–सच बतलाना
> रति रोई या तुम रोये थे ?"[8]

अकाल की त्रासदी संवेदनशील कवि हृदय को विशेष रूप से विचलित करती है। मानवता के हिस्से में आये इस प्रकार के दर्द नागार्जुन की लेखनी के कथ्य न

बनते–यह कहाँ संभव था ?

"कई दिनों तक चूल्हा रोया
चक्की रही उदास
कई दिनों तक लगी मीत पर
छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी
हालत रही शिरकत
दाने आए घर के अन्दर
कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर
कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें
कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाखें
कई दिनों के बाद।"[१]

निरन्तर निरंकुश शोषण क्रान्ति को जन्म देता है। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध जब मानवीय संवेदनायें विद्रोह कर उठती हैं, तब नागार्जुन जैसे कवि का मानस संतुष्ट होता है किन्तु जब क्रान्ति के कारण मौजूद रह कर क्रान्ति को जन्म नहीं दे पाती कवि का हृदय मसोस कर रह जाता है और उसकी लेखनी से उसकी व्यथा बहिर्गत होती है –

"क्रान्ति सुगबुगाई है
करवट बदली है क्रान्ति ने
मगर, वह अब भी
उसी तरह लेटी है
एक बार इस ओर देख कर
उसने फिर से फेर लिया है
अपना मुँह उसी ओर ....
"सम्पूर्ण क्रान्ति" और "समग्रविप्लन" के मंजुघोष

उसके कान्ते के अन्दर
खीज कर रहे हैं या गुदगुदी
—यह आज नहीं, कल बतला सकूँगा !
अभी तो देख रहा हूँ
लेटी हुई क्रान्ति की
स्पंदनशील पीठ
अभी तो इस पर
रंग रहे हैं चींटे
वे भलि भाँति आश्वस्त हैं
इस उथल—पुथल में
एक भी हाथ उन पर नहीं उठेगा
चलता रहेगा उनका धंधा
वे अच्छी तरह आश्वस्त हैं
वे क्रान्ति की पीठ पर
मज़े में टहल रहे हैं
क्रांति सुगबुगाई थी प्रखर
लेकिन करवट बदल कर
उसने फिर उसी दीदार की ओर
मुँह फेर लिया है
मोटे सलाखों वाली
काली दीवार की ओर !''[10]

देश में आपातकाल लागू होने की गैर जरूरी, गैरमुनासिब दमनकारी स्थिति को नागार्जुन का हृदय सह नहीं सका और उनकी प्रतिक्रिया के उद्गार फूट पड़े —

''लगता है
हिन्द के आसमान में
अब सूरज सहम कर उगेगा
अपनी किरणें बिखेरेगा
डरता—डरता, कांपता—कांपता

लगता है
हिन्द के आसमान में
ठीक दोपहर के वक्त
सूरज फ्यूज हो जायेगा
जी हाँ, वैशाख–जेठ का
प्रखर प्रचण्ड मध्यान्ह
बिना ग्रहण के भी डूब पायेगा
कुछ के माहौल में
लगता है हिन्द के आसमान में
सूरज पर भी लागू होंगे
''आपातकालीन स्थिति वाले आर्डिनेन्स।''[11]

(ब) शिल्पगत संवेदना :

संप्रेषणीयता के विविध सन्दर्भ किसी न किसी रूप में शिल्प से जुड़े रहते हैं। जटिल, दुरुह, विकृत तथा विसंगत शिल्प के माध्यम से श्रेष्ठ कथ्य भाविक पाठक अथवा प्रमाता को प्रभावित तथा अभिभूत नहीं कर पाते। वस्तुतः कविता का प्रमुख पक्ष प्रमाता से ही जुड़ा है क्योंकि उसी की सोच ओर संवेदना पर कवि की काव्य–कृति उद्देश्य की सफलता–असफलता निर्भर है। कविता का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष विषय–वस्तु के चयन से सम्बन्धित हैं। यही विषय वस्तु, वस्तुविधान अथवा कविता का सोच और संवेदना से जुड़ा मनोधरातल कवि के विविध संप्रेष्य कौशल से पाठकों तक कविता के प्रभाव को न केवल प्रसारित करता है, प्रत्युत् उसका शिल्प–कौशल इस प्रभाव को सकारक तथा अति प्रभविष्णु बनाता है। विषय वस्तु की प्रकृति और पाठक की युति काव्य–प्रयोजन को साथ करता रहता है। मनुष्य के व्यक्तित्व की रचना में जितना योगदान सोच और संस्कारों का है, उससे कहीं अधिक भाव–बोध और इन्द्रिय–बोध का होता है। इसलिए कविता के शिल्प–विधान को प्रभावित करने वाले तत्वों में कवि की सोच के अतिरिक्त उसकी संवेदना तथा इन्द्रिय बोध की भी महत्वपूर्ण भूमिका है और इसी लिए किसी भी कृति के शिल्प–विन्यास का परिशीलन करते हुए उसे सम्पूर्ण रागात्मक अन्तर्गत इन्द्रियबोध, भाव–बोध तथा विचार–धारा की पहचान कर पाना असंभव नहीं।

नागार्जुन का समस्त वस्तु विन्यास जागतिक सन्दर्भों से परिपूर्ण है। वे आम आदमी के प्रति न्याय का संघर्ष करते समय अपने कथ्य में न केवल मानवीय जगत को ही शामिल करते हैं, वरन् प्रकृति के विविध परिदृश्य भी उनके प्रयोजन में माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

हिमालय और उसके शिखरों से भी नागार्जुन का बेहद मोह है। 'अमल धवल गिरि' र्शीा ककविता के अलावा हिमालय उनकी कविताओं में बराबर मौजूद है। उसकी प्रकृति को बड़े मोहक और वास्तविक रूपरंगों में नागार्जुन ने अपनी तमाम कविताओं में चित्रित किया है। खेत–खलिहान, बीज और अंकुर, हाल के निकले टूसे, अर्ध–विकच कलियाँ, सबको नागार्जुन के प्रकृति प्रेमी मन ने देखा है, उसकी भाषा को पढ़ा है, उनके अतरंग को थाहा है। उनकी एक कविता है 'तीन दिन तीन तीन रात'। कविता पूर्णिया के छात्र उपद्रव की है जिसमें बसें जला दी जाती है। सारे शहर में तीन दिन तीन रात का कर्फ्यू लग जाता है। आवागमन के साधन बन्द हो जाते हैं। नगर से गाँव की ओर जाने वाली बस भी तीन दिन बन्द रहती है। यह नागार्जुन की संवेदनशील कवि प्रतिभा ही है जो इन तीनों दिनों पूर्णिया नगर में फैला उदासी तथा मौन के कारण गाँव जाने वाली सडक के किनारे खड़े पेड़ों के दिल की धड़कन को भी सुन लेते हैं। उनकी व्यथा को भाँप लेते हैं। 'पंक्तिबद्ध वृक्षों के दिल भला क्यों न धड़के तीन दिन तीन रात' पंक्ति उनकी इस व्यथा को साकार करती है कि जो वृक्ष अपने सामने से रोजाना गाँव जाती हुई बस को देखने के आदी थे उनके दिल इसलिए धड़क रहे हैं कि वह बस तीन दिनों से उनकी नजरों के सामने से नहीं गुजरी। संस्कृत कविता में मिसाल मिले तो मिले, इतनी बारीक संवेदना और इतना बारीक पर्यवेक्षण हिन्दी कविता में दुर्लभ है और फिर भी कहा जाता है कि नागार्जुन तो व्यंग्य कवि है, सामाजिक राजनीतिक विषयों पर लिखने वाले, कविता की संवेदना तथा कला–शिल्प के प्रति बेहद लापरवाह कवि हैं, और यही बात प्रगतिशील कविता के बारे में भी कही जाती है।

गरज यह कि बहुत समृद्ध दुनिया है नागार्जुन की प्रकृति कविताओं की। नागार्जुन की बहुआयामी रचनाशीलता की प्रतिनिधि रचनाओं की यह संकलन इसलिए है ताकि नागार्जुन को उनकी समग्रता में पहचाना जाए उन पर रायजनी करते हुए उनकी कवि संवेदना के सारे पक्षों को दृष्टि की परिधि में लाया जाए। हमने कहा है

कि अपनी मूलवर्ती प्रगतिशील आस्थाओं के साथ जिनके प्रति वे प्रतिबद्ध हैं, अपनी मूलवर्ती जनपक्ष–धरता के साथ जिसे वे एक पल के लिए भी नहीं छोड़ सके हैं, वे एक मुकम्मल कवि हैं, जीवन की समग्रता के कवि हैं, मनुष्य के सम्पूर्ण के चितेरे हैं। कविता हर जगह नहीं, तो एक बहुत बड़े प्रसार ने उनके यहाँ मनक ऊँचाई पाती है भाषा का अद्भुत वैविध्य तथा सजीवता शैली की अकृतिम जीवन्तता, काव्यरूपों के नए–नए प्रयोग, छन्दों की अनेकाविध प्रस्तुतियाँ नागार्जुन की कविता का वैशिष्ट्य हैं। इतनी जीवन्त तथा रंगों–गन्धों–रूपों का इतना महीन तथा कुशल पारखी। इतने सूक्ष्म नरीक्षण पर्यवेक्षण का धनी कवि हिन्दी में, आधुनिक में, निराला को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है।

नागार्जुन देश, जनता तथा धरती के कवि हैं। देश, जनता तथा धरती उनके यहाँ अमृत न होकर एकदम सगुण साकार है, अपने समूचेपन में, अपनी पूरी वास्तविकता में। देश उनके लिए महज एक भौगोलिक इकाई ही नहीं एक सजीव सत्ता हैं। जिसे उन्होंने उसकी सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ जाना–समझा है, पेश किया है। यदि उसके राशि–राशि सौन्दर्य तथा अनन्त रूपात्मक भाव–भंगिमों पर वे अभिभूत और मुग्ध ा हुए हैं तो उसकी बहुआयामी विक्रतियों के प्रति उतनी ही तीखी विरक्ति भी उन्होंने प्रदर्शित की है। देश उनके लिए उसमें बसने वाले जनों से अलग नहीं कभी नहीं रहा, देश का जीवन तथा स्पन्दन उन्होंने उसके निवासियों के जीवन तथा स्पन्दन को ही माना है। उसका सौन्दर्य और उसकी कुरूपता के रूप में ही उन्होंने परिभाषित की हैं। देश और देश की जनता, देश और देश की धरती, उनके लिए कभी अलग–थलग नहीं रहे। उन्होंने उनके हर्ष–विषाद, सुख–दुख आशाएँ–आकांक्षाएँ, उनके स्वप्न तथा संघर्ष सबको अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। नगर तथा गाँव सब उनकी दृष्टि की परिधि में रहे हैं और सबका उनके सामाजिक जीवन के संगति में उन्होंने भरपूर देखा भोगा और जिया है उनकी पर्त–पर्त से वे वाकिफ हैं, उनके रंग–रेशे से उनका परिचय है। उन्हें इन पर गर्व भी है और कोफ्त भी। किन्तु उनकी जो सारभूत सच्चाई है वह उनकी निगाह से कभी ओझल नहीं हुई। देश तथा धरती के नरक को भोगती हुई, किन्तु उससे उबरने के लिए आकुल और संघर्षरत साधारण जनता के प्रति वे सम्पूर्ण मन, वचन तथा कर्म से समर्पित रहे हैं। जन शक्ति, श्रमजीवी जनता तथा इस जनता के जीवन को उन्होंने निहायत संजीदगी से अपनी समूची मानवयी तथा रचनात्मक संवेदना से उससे पूर्णतः एकात्मक होकर चित्रित किया है। साधारण जन की व्यथा को धरती माता के

कष्ट तथा अपने देश की छाती पर अंकित दंशों को उन्होंने बार–बार आकुल होते हुए चूमा, सहलाया और पुचकारा है, आहत हुए हैं उनके दुख–दैन्य से, उलसित हुए हैं उनके जागने से वे भगीदार बने हैं, इस देश की धरती और जनता की सार्वत्रिक मुक्ति के प्रत्येक अभियान में, उसके बेतर जीवन के लिए छेड़े गए हर संग्राम और इसी का परिणाम है देश, धरती और जनता का वह बहुआयामी सामाजिक यथार्थ जो नागार्जुन की कविता में इतने पारदर्शी रूप में सामने आया है कि उनकी कविता सामाजिक जनता तथा धरती के सुख–दुख की गाथा ही प्रधान है, सुख–दुख की गाथा, जीवन की गाथा। इस सामाजिक यथार्थ में सदियों से वर्गों तथा वर्णों में विभाजित, हमारे देश तथा उसकी जनता का सामाजिक जीवन है, प्रभुओं और प्रभुओं के लिए श्रम करने वालों की दास्तान है, अमीरी गरीबी के नजारे हैं, सच और झूट का टकराव है, छल–कपट फरेब और सत्ता के आतंक का घिनौना रूप है, और उससे जूझते लड़ते और हार–हारकर भी नए मोर्चे बांधने वालों का सौन्दर्य है, राजनीति, समाज नीति तथा अर्थनीति की तिकड़ में, पहेलिया तथा तिलस्म हैं और उनकी रिफ्त में फंसे, उन्हें खोलने के लिए संकल्पबद्ध साधारणजन की आस्था, विश्वास तथा मेहनत है, इसमें देश तथा धरती को नरक बनाने वालों की साजिश है और इस साजिश को चकनाचूर करने के लिए कटिबद्ध–श्रमरत जनता की अदम्य निष्ठा है, यातना और दुख के बावजूद इसमें साधारण जन के हर्षोल्लास के क्षण हैं, तथा सारी सुविधा को बटोरे रहने के बावजूद जनशक्ति के उफान से घबराए महामहिमों तथा महन्तोंके भयभीत चहरे भी अकाल, बाढ़, महामारी, दमन–चक्र, अन्याय, अत्याचार की हरिजन गाथाएँ हैं, तो उन्हीं के बीच पैदा हुए बल्कि अवतार की अगवानी भी, जो इस सारे दमन–चक्र के लिए काल स्वरूप है। इसमें शान्ति औ अहिंसा की बातें भी हैं और गोलियों तथा बन्दूकों की चर्चा भी। कहने का मतलब यह कि नागार्जुन की कविताओं में सामाजिक यथार्थ का रूप इतना बहुआयामी, बहुरंगी और वैविध्यापूर्ण है कि उसके माध्यम से अपने देश के और विदेश की भी, मौजूदा सम्पूर्ण छवि को बड़ी सफाई और प्रमाणित रूप में देखा जा सकता है। ये कविताएँ नहीं जीती–जागती हकीकतें हैं उस युग और व्यवस्था की उन लोगों और उनके क्रियाकलापों की। जिनके बीच हम जी रहे हैं, और जैसा कि हम कह चुके हैं, यह पक्षधरता है वर्ग–विभक्त मौजूदा समाज व्यवस्था में उनकी ओर से बोलना, उनके अभियानों में सुख–दुख में, भागीदारी निभाना जो मजलूम हैं, यातनाग्रस्त हैं, शोषित हैं, सर्वहारा हैं, दलित और पीड़ित हैं। उनकी मुक्ति के लिए, यातना तथा सामाजिक अन्याय से इनके

लिए नागार्जुन सदैव छिरावल में शिरकत करने वाले रचनाकार हैं। शालीनता और भलमनसाहती का मुखौटा ओढ़े इनके दुख–दर्द पर महज आँसू बनाने वालों में, परम प्रभु से इनके दुखों को दूर करने की याचना करने वालों में ये नहीं हैं, वे 'एक्शन' के कवि हैं और लोकतांत्रिक जन संघर्ष से लेकर मुखिला–मानसिकता में उतरकर वे नए अभियानों की बात करते हुए उनमें कूद पड़ने को भी तत्पर हैं। हमने जिस हरिजन गाथा का चित्र किया है, सत्ता के सारे दमन–चक्र, तथा आतंक के माहौल में भी उसमें उन्होंने 'मंगल सूत्र' की भाँति अपने इस विश्वास को व्यक्त किया है कि देवता बने रहने के दिन लद गए। दरिन्दों से जूझने के लिए हथियार भी उठाने होंगे। 'हरिजन गाथा' तथा बिहार के भोजपुर अंचल के नए मुक्ति अभियानों की उनकी तरफदारी उनके साहस और निर्भीकता का ही नहीं, उनकी अदम्य जन–निष्ठाका भी परिचय देती है, इस बात की गवाह है कि कितनी गहरी नफरत और विष्णा है उनके मन में अन्याय और अनीति की इस प्रकार की तिजारत करने वालों से। अपनी एक बहुत पुरानी कविता 'वह कौन था' में भी वे रात के अंधेरे में आतंक और दमन के खिलाफ पोस्टर चिपकाने वाले अज्ञात–अनाम व्यक्ति की चर्चा करते हैं, और इस प्रकार जनमुक्ति के लिए छेड़े गए प्रकार के संग्राम में अपने साथी बनने का उद्घोष करते हैं। नागार्जुन, सच पूछा जाए तो, हर कोण से निहायत तरोताजा संवेदना के धनी हैं। उनकी घुमन्त जिन्दगी उनहें हर रोज नए अनुभव देती है और वे कभी भी वासी या पुराने नहीं लगते। उनके समकालीन तथा समत्यस्क अनेक कवि जहाँ अब या तो अपने को दुहरा रहे हैं या कविता छोड़कर दूसरे धन्धों में लग गए हैं, नागार्जुन जिन्दगी के जीवन्त पहलुओं से और जानी–बूझी जिन्दगी के पेचीदे तेवरों से हमें काव्य–शिल्प की नई भंगिमाओं में परिचित करा रहे हैं।

कठोर और कोमल का समन्वित रूप ही नागार्जुन की कविता है और यही नागार्जुन के मनुष्य का परिचय है। अपनी अनेक कविताओं में वे जहाँ नितान्त द्रवणशील, करुणार्द्र तथा अतिशय संवेदनशील, कभी–कभी भावुकता के स्तरतक उदार और तरल दिखाई पड़ते हैं, मसलन 'गुलाबी चूड़ियाँ', 'खूब गए दूधिया निगाहों में', 'यह कैसा होगा, यह क्योंकर होगा' 'कैसा लगेगा तुम्हें', 'एक मित्र को पत्र', 'आओ प्रिय आओ' जैसी कविताओं में, वहाँ कुछ दूसरी कविताओं बेहद कठोर, अक्रामक, दृढ़ और अनमनीय अस्मिता के धनी रचनाकार और व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं।

नागार्जुन की सृजनधर्मिता नागार्जुन और पाठक के अन्तर्जगत और उसकी

अभिव्यक्ति में द्वंद्वात्मक सम्बन्ध की सबल तथा मार्मिक प्रस्तुति करती है। 'गंभीर' और 'तात्कालिक' हर तरह की रचना में नागार्जुन समान रूप से अन्तर्व्याप्त रहते हैं। 'बीते तेरह साल' उनकी इसी प्रकार की रचना है :

''लाख लाख कमिरों की गर्दन
कौन रहा है रेत
छीन चुका है कौन
करोड़ों खेतिहरों के खेत
सत्ताधारी प्रेत –
...... बलिहारी कागजी खुशी की
क्यों न बजायें बीन
फटे बांध से बालू बोले
हम भी हैं स्वाधीन
अश्वमेघ का घोड़ा निकला
चित है चारों नाल
कौन कहेगा आजादी के
बीते तेरह साल।''[12]

आजादी के तेरह साल के विकास में क्रमिकों पर अत्याचार बढ़ा है। किसानों की जमीने हिन्दी हैं, ज़मीदार की शक्ति में इज़ाफा हुआ है। यह सत्ताधारी वर्ग का चरित्र है, इन वर्गों के नेताओं ने स्वतंत्र भारत के विकास का यह नक्शा नहीं पेश किया था ; जनता को कागजी खुशी से बढ़ कर कुछ नहीं मिला, विकास की परियोजनायें व्यर्थ सिद्ध हुईं, जनता के स्वतंत्र विकास की यह कल्पना नहीं की थी।[13]

नागार्जुन की विशेषता है कि ऊपर से विवरण और नारेबाजी लगने वाली कविता में भी के किसी बड़ी बात का संकेत कर देते हैं। 1960 के दौर की हिन्दी कविता में तरह–तरह के अराजकतावादी तत्वों के उत्पातों से अप्रभावित रह कर नागार्जुन ने अपने सहज विवेक से भावी दमन–चक्र का सूत्रपात देख लिया था। 'अश्वमेघ का घोड़ा छूटा' इस पौराणिक सन्दर्भ से मुक्त करके उन्होंने अपना निष्कर्ष दूसरों के लिए ग्राहय ही नहीं बना दिया, वरन् कलात्मक प्रतीक के जरिए यह भी ध्वनित कर लिया कि आने वाले दिनों में प्रतिरोध की शक्तियों को किस तरह कुचले जाने की आशंका है। 'शासन की बंदूक' कविता के माध्यम से दमन के विराट रूप को संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है :

"खड़ी हो गई चांपकर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट–सी शासन की बंदूक।"[14]

अमरीका के राष्ट्रपति कार्टर के आगमन पर 'हम विभोर थे अगवानी में' कविता में नागार्जुन साम्राज्वाद क युद्धोन्माद, विकासशील देशों के प्रति उसकी नीति और साधारण जनता के हितों–आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का हल्का सहारा लेकर अपना जनवादी अभिप्रेत प्रस्तुत किया है :

"वहाँ तुम्हारी बगिया में तो
न्यूट्रॉन बम के फल लटके हैं
अणु–ऊर्जा की बढ़ोत्तरी में
यहाँ तुम्हें लगते मटके हैं
हमें नहीं चाहिए मसानी –
माता का बारूदी आँचल
जाओ भस्मासुरी नृत्य का
कहीं और ही करो रिहर्सल।"[15]

'स्वदेशी शासक' कविता के माध्यम से भुखमरी के हृदय–स्पर्शी सत्य उद्‌घाटित हुए हैं। इसी धरती के सत्ताधारियों को नरक का राजा निरूपित करके इन्हीं को जनता की भुखमरी का कारण माना है। जनता जिन दिव्य शक्तियों की आराधना करती है, वे उसी भुखमरी से नही बचा पाती। शोषण के यथार्थ तथा अंधविश्वासों के दमन को प्रस्तुत करने वाली कविता नागार्जुन जैसे जनकवि ही रच सकते हैं :

"आमों की गुठलियाँ चूर कर
भट्‌टी की सोंधी मिट्‌टी में
उस चूरन को सान–सान कर
खा लेते हैं लोग
पेड़ की छालों का तीमन बनता है
डोका–सितुआ घोंघा घुंघची
कटहर–सारुख
घास–पात डंठल कोढ़ी फल–फूल
हमारी जनता की भूंखी आतों को
कब तक थामे ?
जय जय हे कोसी महारानी

जय जय जयति मलरिया भइया
जय जय हे काला बुखार, पेचिश, संग्रहणी
जय जय हे यमदूत
दीन जन बन्धु दयासागर करुणामय।''[16]

शिव को कामार्त करने के लिए रति और वसन्त के साथ कामदेव जब विजय–अभियान की ओर अग्रसर हो रहा था, तब कामदेव के साथ रति भी अनिष्ट–आशंका से ग्रस्त है। दोनों अपने आन्तरिक भय को एक दूसरे से छिपाते हैं, किन्तु अनिस्ट की संभावनायें उनके हृदय को मथतीं रहती हैं। 'भस्मासुर' में मदन को निरन्तर रति का संग प्राप्त है, तो भी वह अदृश्य अनिस्ट से उद्विग्न है। रति का अन्तराल भी भीतर ही भीतर पति के क्षेम को लेकर कातर है। तो दोनों परस्पर हंस–हंस कर वार्तालाप करते हैं। एक दूसरे को उत्साहित रखने का प्रयास करते हैं। तो भी भीतर का भय प्रकट ही हो जाता है। आँखों की पुतलयिों में आन्तरिक व्यथा तैरने लगती है :

''रुख कर पति के कंधों पर मृदु हाथ
आंखों में दी आंखें रति ने डाल
दो–दो दृगमणि, चारों की द्युतिकर
अन्तर उर के तरल स्निग्ध प्रतिरूप
तैर रहे थे उनमें बारम्बार
मासित हुई मदन को कुछ क्षण बाद
संशय मिश्रित भय की हल्की छांह
स्पंदित चंपक पंखरियों के बीच
दो मणिगोलका चमके शंका–श्याम
छिपा न पायी भीतर का आतंक
मलिनमुखी रति पास आ गई और
झट से झुक कर लिया मदन ने नाम
कांप रहा था रति का मृदुल शरीर।''[17]

वस्तुतः सूक्ष्म संवेदनाओं की निष्पत्ति नागार्जुन के शिल्पगत सौष्ठव का मूल्यवान पक्ष है।[18]

संदर्भ सूची

1.	चिंतन का तात्विक विवेचन	पृ. 89
2.	चिंतन भीमांसा	पृ. 71
3.	हिन्दी के प्रमुख कवि–रचना और शिल्प	पृ. 15
4.	नागार्जुन–एक चिंतन	पृ. 86
5.	हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना	पृ. 90
6.	नागार्जुन एक चिंतन	पृ. 91
7.	हिन्दी काव्य भीमांसा	पृ. 44
8.	नागार्जुन–चुनी हुई रचनायें	पृ. 82
9.	वही	पृ. 210
10.	वही	पृ. 220,221
11.	वही	पृ. 223
12.	नागार्जुन की कविता	पृ. 166
13.	भारत की आजादी	पृ. 44
14.	नागार्जुन की कविता	पृ. 167
15.	खिचड़ी विप्लव देखा हमने	पृ. 116
16.	युगधारा	पृ. 93
17.	भष्मांकुर	पृ. 90
18.	समीक्षा दर्शन	पृ. 95

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन का काव्य : प्रभाव एवं सृष्टि

(ब) युगपरक प्रभाव

आधुनिक कविता में नागार्जुन की काव्य– चेतना अत्यंत विशिष्ट है। नागार्जुन जनचेतना के सशक्त रचनाकार हैं। नागार्जुन कवि और सजग/ सतर्क द्रष्टा होने के साथ–साथ समर्थ/ क्रान्तिकारी पुरुष भी थे। उनकी रचनाओं में उनका साहस और विवेक दिखायी पड़ता है। आधुनिक कविता में नागार्जुन की कविता की एक अलग पहचान है। उनकी कविता आधुनिकता की प्रचलित अवधारणा अथवा प्रतिमानों को चुनौती देती है। साथ ही वह लोक– चेतना संपन्न आधुनिक दृष्टि की पहचान बनाने वाली कविता है। इसके पीछे कबीर, निराला, भारतेन्दु जैसे कवियों की परंपरा है। इस सदर्भ में डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव का माना है कि 'एक ओर उसमें 'जनकविता' की प्रखर उत्तेजना है, दूसरी ओर रोमान्टिक भावबोध से अलग क्लासिकी कविता जैसी कठोरता भी है। कला की तमाम युक्तियों, नुस्खों, कसौटियों को ध्वस्त करती नागार्जुन की कविता का अपना एक कलात्मक अनुशासन भी है' ।[1] प्रगतिशील कविता के दौर अपनी जनोन्मुख संवेदना और सहज लोकधर्मिता के कारण नागार्जुन की कविता ने एक विशेष पहचान बनाई है नागार्जुन की कविता अपने रचनाकाल मे निरंतर स्थापना या पहचान के संघर्ष से गुजरती है अपने युग में कविता और कवि दोनों का संघर्ष व्यापक है। नागार्जुन की कविता के युगीन परिवेश में प्रकाश डालना इस सदर्भ में आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में कवि का रचनाकाल, रचनाकाल के विविध संदर्भ, युग की परिस्थितियाँ, रचनाशीलता के विविध आयाम आदि का अवलोकन आवश्यक है।

रचनाकाल एवं परिवेश – नागार्जुन जनवादी चेतना के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। जनवादी शब्द का व्यापक अर्थ और संदर्भ है। नागार्जुन की जनवादी चेतना का काल नागार्जुन के रचनाकाल के समकालीन है। नागार्जुन 20 वीं शती के मध्याहन से लेकर उत्तरार्द्ध तक साहित्य जगत में क्रियाशील रहे। नागार्जुन का रचनाकाल विविध संदर्भो से युक्त है एक तरफ जीवन के व्यापक संघर्ष हैं तो दूसरी तरफ सामाजिक जीवन का संघर्ष भी कमतर नही है। नागार्जुन की काव्य– संवेदना और युगपरक प्रभाव को

समझने के लिये युगीन परिवेश चेतना पर चिंतन आवश्यक है।

ज्ञातव्य है कि नागार्जुन जनवादी चेतनाके सशक्त कवि हैं। जनवाद की मूल अवधारणा अत्यंत विशिष्ट है। जनशब्द का शब्दार्थ सामान्य व्यक्ति है। भक्ति–साहित्य में जन शब्द का व्यापक प्रयोग सेवक, भक्त या वास के अर्थ में भी हुआ है। जन शब्द द्वारा विनम्रता का गुण भी प्रकट होता है। परन्तु जन–जन पद सामूहिक शक्ति का वाचक भी बन जाता है। परन्तु हिन्दी कविता और आलोचना में जन या जनवाद एक विशेष अर्थ की ओर संकेत करता है जन शब्द भारत में वामपंथ या वामपंथी राजनीति से जुड़ा माना जाता है साहित्य में यह शब्द अपने सामान्य अर्थ के साथ वामपंथी संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है। सामान्यतः जनवाद के अंतर्गत वे सभी विचार, आदर्श कार्यक्रम शामिल हैं। जो जन अर्थात सामन्य च्यक्ति को दमन– चक्र, शोषण से मुक्ति दिलाते हैं और उसे सम्मानपूर्ण जीवन जीन के लिये उपर्युक्त परिस्थितियों का निर्माण करते हैं।

ऊपर इस बात को कहा जा चुका है कि जनशब्द भारतवर्ष में वामपंथी कार्य–कलापों और राजनीति से जुड़ा माना जाता है। वामपंथी विचारधारा मार्क्स और लेनिन के आदर्शो से प्रभावित मानी जाती हैं मूलतः जिसका मुख्य उद्‌देश्य यह रहा कि पूँजीवाद को समाप्त करने के लिये क्रांन्ति का मार्ग अपनाया जाय और सर्वहारा की एक नयी संस्कृति विकसित की जाये। मार्क्सवादी आदर्शो से प्रभावित लेखन को प्रगतिशील लेखक भी कहा जाता है। परन्तु ध्यान मे रखना होगा कि प्रगतिवाद और प्रगतिशील दो अलग– अलग धारायें है। प्रगतिवाद मार्क्स के आदर्शो से प्रेरित एक काव्य आदोलन है, जबकि प्रगतिशीलता दृष्टि विशेष है। जनवादी कविता और उसके कवियों के प्रभाव दृष्टि और चितंन को समझने के पूर्व इस बात को जान लेना जरूरी है कि भारतीय समाज के सदर्भ में जनवाद इतिहास काफी पुराना और जटिल है। भारतवर्ष में मोटे तौर पर जनवादी चेतना और जन शक्ति के उदय का इतिहास राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय स्वातन्त्रय आन्दोलन वस्तुतः एक विराट् मुक्ति आन्दोलन था। इसे मुक्ति आदोलन की दो दिशायें थीं–

1. ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा।

2. सामंतो, रईसो, जमींदारों और उच्चवर्ग के पूँजीपतियों के शोषण से सामान्य व्यक्ति की मुक्ति, अर्थात जनमुक्ति।

स्वतंन्त्रता आदोलन के दौरान राष्ट्रीय स्तर पर और क्षेत्रीय स्तर पर जितने भी कार्यक्रम आयोजित किये गये उनमे मुक्ति की भावना ही प्रधानथी। स्वतंन्त्रता के लिये संघर्ष के दौरान देश के कर्णधारों ने विभिन्न राजनैतिक दलों ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि स्वतन्त्रता आंदोलन से जनता को जोड़े बिना अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती है मार्क्स और लेनिन के आदर्शों से प्रेरित वामपंथी शक्तियों सर्वहारा का पक्ष ले रही थीं और अपने ढंग से स्वतन्त्रता आदोलन में योगदान कर रही थीं। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वामपंथी शक्तियों के साथ मिलकर स्वतन्त्रता आदोलन को आगे बढ़ा रही थी।

इस प्रसंग में कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है जो जनवादी चेतना को पुष्ट बनाने में सहायक सिद्ध होती है।–

1. अगस्त 1918 में काँग्रेस के बंबई अधिवेशन में महात्मा गाँधी द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के बाद रौलट एक्ट के विरोध में अप्रैल 1919 मे आम हड़ताल और इस प्रकार जन– संघर्ष का आरम्भ। [2]

2. अप्रैल 1919 को पंजाब में जलिया बाला बाग हत्याकांड और जनशक्ति का उभार।[3]

3. तीसरे दशक के आरंम्भ में किसान–मजदूर आंदोलन की नींव पड़ी और 1922–1927 की अवधि में पूंजीवादी वर्ग केहितो की रक्षा के उद्देश्य से पंडित नेहरू और सुभाष चन्द्र के नेतृत्व में कांग्रेस मे वामपंथ का उदय। [4]

4. अक्टूबर 1922 में एम. एन. राय द्वारा भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी का गठन और भारत में मार्क्सवाद के प्रभाव की शुरूआत । [5]

5. 1922 में कांग्रेस के भीतर 'भारतीय मजदूर समाजवादी पार्टी का गठन'। समाजवादी पाटी के गठन मे श्रीपादअमृत डांगे के 'सोशलिष्ट' नामक समाचार पत्र (बंबई से प्रकाशित) का विशेष योगदान था। सन् 1921 में श्रीपाद डांगे की गाँधी बनाम लेनिन नामक पुस्तक ने वैचारिक क्रान्ति उपस्थित कर दी। [6]

6. 1923 से 1927 की अवधि मे मजदूर किसान पार्टियों का गठन। [7]

7. 1929 मे कांग्रेस द्वारा किसान संगठनों की स्थापना [8]

8. चौथे दशक में भारतवर्ष में वामपंथी शक्तियाँ अधिक सशक्त हुई और 1934 –1939 की अवधि में मजदूर संघर्ष तथा ट्रेड यूनियन आंदोलन में एकता स्थापित हुई ।[9]

9. 1934–1935 में विभिन्न किसान आंदोलन और 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना।[10]

10. 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन और 1936 में ही जनवादी आंदोलन की परिधि में अखिल भारतीय छात्र फेडरेशन, भारतीय देशीय राज्य लोक परिषद् तथा अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना।[11]

11. 1938 में देश की 60 रियासतों में प्रजापरिषद, प्रजा मण्डल का गठन।[12]

12. 1939–1940 में कांग्रेस से समाजवादी वामपंथी अलग हो गये, इसी अवधि में स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ।[13]

13. अप्रैल 1939 में वैचारिक मतभेद के कारण सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया और फारवर्ड ब्लाक नामक पार्टी का गठन किया।[14]

14. 1939 से लेकर 1945 तक की अवधि में भारत वर्ष में विभिन्न जन आंदोलन हुये और जनशक्ति का पुष्ट प्रमाण मिला।[15]

15. सन् 1946 में पंजाब के लायनपुर जिला में कृषको का बड़ा उग्र आन्दोलन हुआ और 1946 में ही तेलंगाना का प्रसिद्ध किसान विद्रोह हुआ।[16]

16 दूसरे आम चुनाव के बाद कम्युनिस्ट पार्टी का संयुक्त जनवादी मोर्चा की स्थापना।[17]

17. सन् 1962 में चीन के साथ सीमा विवाद और चीन द्वारा भारत पर आक्रमण एवं मोहभंग की स्थिति।

इसके अतिरिक्त यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् का राष्ट्रीय जीवन लगभग एक दशक बाद एकदम खण्डित हो जाता है, जिसका प्रभाव युगीन कवियो पर पूर्णतः पडा, विशेष रूप से नागार्जुन , त्रिलोचन, धूमिल आदि जनवादी कवियों पर। दरअसल स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात का राष्ट्रीय जीवन नेहरू के आभामंडल से प्रभावित स्वप्नजीवी युग था। नेहरू की बड़ी बड़ी परियोजनायें

जिनमें पंचवर्षीय योजनाऐं प्रमुख थीं। जिनके माध्यम से दावा किया गया कि देश के आर्थिक स्तर पर फ्रॉंसिसी प्रभाव पडेगा। (यह अलग बात है कि सब कुछ कागजों पर ही रहा यथार्थतः कुछ भी नही था।) बड़े– बड़े बाँधों की योजनायें बनायी गयी और इन सबके माध्यम से जनता को सम्मोहित कर दिया था। सीधी सी बात है जनता पर यदि इसका प्रभाव पड़ा तो साहित्यकारों पर भी पड़ना था। तरह–तरह के सपनों में उन्हें भी खोना था। खुशफहम इरादों का काफिला सजना था, तमाम आशाओं और विश्वासों की नींव पड़नी थी, जिनमें खोकर प्रगतिवादी यथार्थ का धरातल कहीं खो गया था। सन 1962 में उन सपनों, खुश–फहम इरादों, आशाओ, विश्वासों पर बिजली गिरी– चीन ने विकास में सहयोगी होने का वादा किया, और एक महीने बाद ही घुसपैठियों को भेजकर युद्ध छेड़ दिया; यहाँ युद्ध साम्रगी बनाने वाले कारखाने में सौन्दर्य सामग्रियों का निर्माण हो रहा था। भारतीय सैनिक छुरे–खुखरियों से ज्यादा समय प्रतिरोध न कर सके।

इस अप्रत्याशित युद्ध से जहां लगा झटका बहुत जोरदार था वहाँ हार ने भारतीयों को तोड़ दिया। सारे सपने चूर हो गये। सारी योजनायें ध्वस्त हो गयीं। यहीं नेहरू का प्रभामंडल ध्वस्त होता है। समूची भारतीय जनता पर पड़ा नेहरू का सारा सम्मोहन टूट जाता है, इसी को मोह भंग के नाम से पुकारा जाता है।

उपर्युक्त घटनाओं और उन घटनाओ के पीछे कार्य करने वाली प्रेरणा का विश्लेषण करने पर हमें जो निष्कर्ष प्राप्त होते है उन्हें बड़े सरल रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।–

क. जन का अर्थ – किसान, मजदूर, श्रमिक वर्ग

ख. जन चेतना का तात्पर्य अपने अधिकारों के प्रति जागरूपकता।

ग. जन आंदोलन का तात्पर्य– किसानों, मजदूरों, श्रमिकों का अपने हितों की रक्षा एवं राष्ट्रीय मुक्ति के लिये किया गया आंदोलन। इसके अंतर्गत ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जमींदारों और पूँजीवादी शक्तियों द्वारा किसानों एंव मजदूरों का विरोध भी सम्मिलित है।

घ. वामपंथ– वामपंथी दल का तात्पर्य– मार्क्स और लेनिन के विचारों की छाया में गठित, जनमुक्ति की समर्थक कम्युनिस्ट पार्टी।

ङ. उपर्युक्त के संदर्भ में जनवाद कोरा लेबुल नहीं है अपितु एक विचाराधारा एक आइडियालोजी है।

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में अब प्रश्न यह उठता है। कि क्या वामपंथी विचाराधारा के अन्तर्गत जनवाद या जनमुक्ति को सीमित किया जाये या लेनिन और मार्क्स का विचार स्वीकर करते हुये भी वामपंथी आग्रह से मुक्त होकर साहित्य में उन प्रवृत्तियों को जनवाद के भीतर माना जाये जो सामन्य मनुष्य की मुक्ति को लेकर उभरीं या समय– समय पर उभरती रहीं हैं। हमारा विनम्र निवेदन यह है कि उपर्युक्त दूसरा दृष्टिकोण ही व्यापक एवं उदार है। हिन्दी कविता के सर्वेक्षण से यह बात पुष्ट होती है कि द्विवेदी युग के आरंभ से ही ये प्रवृत्तियाँ कमोवेश सक्रिय हो उठी थीं।

उपर्युक्त वर्णन उस समूचे परिवेश को स्पष्ट करता है जिसने हिन्दी कविता के आधुनिक युग को भारतेन्दु युग से लेकर और आगे तक निंतर प्रभावित किया। ध्यान देने योग्य तथ्य है कि भारतेन्दु युग में शोषण के विरूद्ध जो प्रतिक्रिया एवं विद्रोह दिखाई पड़ता है वही आगे चलकर स्थान बनाता हुआ निकला, मुक्तिबोध पंत, नागार्जुन, त्रिलोजन, शमशेर, केदारनाथ आदि तक प्रस्फुटित होता है। वस्तुतः ये सभी परिस्थितियाँ और सारे लेखक एक आदर्श और शोषणमुक्त समाज की रचना का संकल्प लेकर ही रचना क्षेत्र में उतरे। रचानात्मक साहित्य के माध्यम से समाज को दिशा प्रदान करने में साहित्यकारों की भूमिका पर विचार करते हुए समीक्षक डॉ0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय ने लिखा है " रचनात्मक साहित्य नूतन सौंदर्य बोध को आत्मसात् करते हुए निम्न वर्ग की दशा तथा संस्कृत वर्गों की प्रतिक्रियाओं के चित्रण के द्वारा भावी संस्कृति के निर्माण में सहायता करना ही आज के साहित्यकार का सबसे बड़ा दायित्व है।[18]

विशेष युगीन प्रभाव एवं चिंतन- दृष्टि का निर्माण- नागार्जुन की जनवादी चिंतन दृष्टि के विकास / निर्माण में अथवा उनके कवि व्यक्तित्व के निर्माण में उपर्युक्त परिस्थितियों की भूमिका प्रेरणा रही है। इसके साथ ही जिन दो विचारध ााराओं का विशेष प्रभाव नागार्जुन की रचनात्मक चेतना पर दिखाई पड़ता है– एक तो मार्क्स की दृष्टि का और दूसरा गाँधी की वैचारिकता का। नागार्जुन के रचना युग को प्रभावित करने वाले ये दोनों कारक सहनीय है। जनवादी साहित्य के प्रेरणा स्रोत के रूप में मार्क्स के विचारों का उल्लेख किसी– न किसी रूप में किया जाता है। निश्चय

ही मार्क्स मजदूरों के पक्षधर थे। मार्क्स के सिद्धान्त ने राजनीति और साहित्य दोनो को प्रभावित किया है। आधुनिक युग में शायद ही कोई ऐसा सिद्धान्त हो जो प्रभाव की दृष्टि से मार्क्सवाद की बराबरी कर सके। मार्क्स एक बहुत बडे विचारक और मनीषी थे और उनका निष्कर्ष व्यावहारिक है और आदर्श भी, परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि महात्मा गांधी का रामराज्य का सपना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। महात्मा गांधी भी सच्चे अर्थों में जननायक थे। उनके राम–राज्य की कल्पना के केन्द्र में सामान्य जन है। महात्मा गांधी यह अच्छी तरह जानते थे कि भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। और इसी एक विशेषता ने भारतीय संस्कृति, आचार–विचार, रहन–सहन, दर्शन एवं दृष्टिकोण को प्रभावित किया। औद्योगीकरण और मशीनों के बढ़ते प्रभाव से महात्मा गांधी परिचित ही नहीं बल्कि चिंतित भी थे।इस परिप्रेक्ष्य में यह कहना अनुचित नही होगा कि मार्क्स के शोषण– विहीन समाज के आदर्श और महात्मा गांधी के राम– राज्य की अवधारणा को मिलाकर चलने वाला साहित्य असली जनवादी सहित्य होगा।

इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में यह कहना उचित होगा कि नागार्जुन मार्क्स और गांधी दोनों की विचारधारा से प्रेरित हैं। क्योंकि नागार्जुन की जनवादी चेतना में लोकधर्मी भावना का जो प्रवाह मिलता है उस पर इस पृष्ठभूमि का पूरा प्रभाव देखा जा सकता है। नागार्जुन जिन अर्थों में जनवादी और लोकवादी रचनाकार हैं, उस पर इस व्यापक दृष्टि का प्रभाव दिखायी पड़ता है। जनवादी कविता वस्तुतः लोकधर्मी कविता है और इसलिये उसमें लोकरुचि के विविध आयामों तथा लोक– जीवन से संबंधित विभिन्न पक्षों का चित्रण स्वाभाविक ढंग से होता है। इस संदर्भ में विजय बहादुर सिंह की निम्नलिखित टिप्पणी बहुत सार्थक है –

''जनवादी साहित्य एक अर्थ में ज्यादा संवेदनशील और व्यापक है कि इसमें बना–बनाया, संस्कारिक सौंदर्य और सुगंधित दिव्यता के बजाय मिट्टी, पानी, बरखा, धूप, खेत–खलिहान, मजदूर–किसान, बाढ़, भूख–अकाल के चित्र सर्वोपरि है। यह वह समाज है, जो दुनिया को खूबसूरत बनाने में अपना श्रम लगा रहा है। हिन्दी की जनवादी कविता इसी समाज के आधारभूत मनुष्य के प्रति समर्पित है।[19]

जनवादी कविता में लोक जीवन के विविध पक्षों का जितना व्यापक और विश्वसनीय चित्रण नागार्जुन की कविताओं में हुआ है। इतना अन्यत्र नहीं है।

नागार्जुन की रचनाओं मे धरती का जीवन, धरती पर रहने वाले प्राणियों का जीवन पूरी सच्चाई के साथ अंकित हुआ है। नागार्जुन की रचनाऐ आदर्श भी प्रस्तुत करती हैं। और प्रेरणाऐं भी देती है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है –

सर्वहारा ने निकाला है स्वयं ही मुक्ति का यह मार्ग
महाश्वेता दानवी कवल से सर्वाशतः अब मुक्त होगा राष्ट्र
अब आजाद होंगे नगर, आजाद होंगे गाँव
अब आजाद होगी भूमि
अब आजद होंगे खेत
अब आजाद होंगे कारखानें।
मशीनों पर और श्रम पर, उपज के सब साधनों पर
सर्वहारा स्वंय अपना करेगा अधिकार स्थापित
टूटकर वह आंत जोंकों की, मिटा देगा धरा का प्यास
करेगा आरंभ अपना स्वंय ही इतिहास
बुद्धिजीवी जनों की क्षमता करेगी काम सोने में सुहागे का।

बर्षा ऋतु में जुगनुओं का प्रकाश भी कवि को एक नई संवेदना दे जाता है।

" गीली भादों
रैन अमावस ....
कैसे ये नीलम उजास के
अच्छत छींट रहे जंगल में
कितना अद्भुत योगदान है
इनका भी बर्षा– मंगल में
लगता है ये ही जीतेंगे
शक्ति प्रदर्शन के दंगल में।[20]

इन दोनो उहारणो में नागार्जुन पर पड़े व्यापक प्रभाव की पूरी परम्परा देखी जा सकती है जनवाद की समूची चेतना मार्क्स और गांधी का प्रभाव एक साथ नागार्जुन की लोक धर्मी चेतनामे लक्ष्य किया जा सकता है। जन जीवन की व्यापक संघर्ष चेतना को जो स्वर नागार्जुन देना चाहते थे। वह उनकी रचनाओं में हर जगह गुंजायमान है। लेकिन नागार्जुन मे विद्रोह के साथ आस्था के स्वर भी है, जिसे

नागार्जुन स्वयं स्वीकारते है –

> ''प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का
> जन– जन मे जो ऊर्जा भर दे, उदगाता हूँ उस रवि का [21]
> (प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है')

यह ध्यान देने की बात है कि नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ आदि जनवादी कवि भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वह कृषक समाज था। इस कारण इनके साहित्य में कल– कारखानों और उद्योग– नगरों की बस्तियाँ न होकर खेत– खलिहान और बाग– बंजर थे। केदार, त्रिलोचन और नागार्जुन से प्रभावित होने वाली कविता ग्रामीण परिवेश मे जन्म लेने वाले, ग्रमीण संस्कारों में पले– बढ़े कवियों की कविताऐं थी, जिनमे गाँव सिर्फ एक विषय मात्र नही, हमारे जीवंत अनुभवों की एकऐसी आत्मीय बिरादरी थी जिसे कविता के शब्दों में बॉधते हुये हमारे कवि ने न तो आंदोलनी उफानों से परिचालित थे, न ही कोरे सैद्धान्तिक दबावों के वशीभूत ही।

अकेले नागार्जुन ऐसे कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में ग्रामीण जीवन की विपनता और अभाव का रूप खींचा है। तत्कालीन परिस्थितियों का जो प्रभाव कवि पर पड़ा और जीवनगत संवेदना में जिस पीड़ा को उन्होने भोगा/संजोया उसका चित्रण कवि की समकालीन रचनाओं मे देखा जा सकता है। नागार्जुन का समूचा सहित्य ही वास्तव में परिथति/ परिवेश और संवेदनात्मक प्रभाव की देन है, चाहे वह पूर्व युग की हो अथवा समकालीन।

काव्य संवेदना : प्रभाव एवं व्यापक दृष्टि - नागार्जुन धरतीपुत्र हैं। सहज मानवीय संवेदनाओं के कवि हैं। शुद्रता को महिमावान बनाने वाले हैं ''नागार्जुन की रचनाओं से होकर गुजरने के माने है अपने को अपनी मनुष्यता को समृद्ध करना, अपने साहित्य–विवेक और काव्य विवेक को कसौटी पर उतारते हुये उसे चमकाना, माँजना और निखारना, एक नई ऊर्जा से ऊर्जस्वित होना, अपनी परंपरा और अपने वर्तमान परिवेश के गहरे अहसान से युक्त होना और आमूल सामाजिक बदलाव की एक चल रही मुहिम मे करोड़ों –करोड़ साधारण जन के हित में शरीक होना, वह सब कुछ पाने को होसला रखना जिसके बिना एक भरीपूरी सार्थक मानवीय जिंदगी को नही जिया जा सकता है।[22]

नागार्जुन का काव्य – संसार अत्यंत व्यापक है। उनकी विशेषताओं को एक छोटे निबन्ध या प्रबन्ध की सीमाओं में समेट पाना अत्यंत कठिन है। नागार्जुन की काव्य संवेदना पर जो प्रभाव पूर्ववर्ती काव्य परंपरा और सामाजिक जीवन का पड़ा और तत्कालीन / समकालीन रचनाशीलता के दौरान जो संवेदन उन्होने आत्मसात् किया उसके विश्लेषण पर उनकी दो प्रमुख विशेषतायें उल्लेखनीय है। उनकी एक कविता का शीर्षक है "रवि ठाकुर"[23] इस कविता में उन्होंने अपने कवि व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिये एक रूपक बाधा है।

" मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते !!
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में !!"

वस्तुतः उद्धृत पंक्यियाँ नागार्जुन और उनकी कविताओं के संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाशित करने वाली है। जमीन दबी हुई दूब अपने भीतर उल्लास छिपाये रहती है।, बह बार–बार सिर उठाती है। और बार– बार अंकुरित होती है। और थोड़ा सा सिर उठाया नहीं कि छुट्टा जानवर उसे चर जाता है। दूब कभी मरती नहीं है। वह बार– बार सिर उठाती है। और यदि उसे बढ़ने– फैलने का अवसर दिया जाये तो उसका स्पर्श मात्र सबके लिये सुखद, शीतल और स्निग्ध होता है दूब की तरह आम आदमी ऊपर उठने की कोशिश करता है और कुछ लोग उसकी सारी कोशिशों को नाकाम करने पर तुले रहते हैं। नागार्जुन मूलतः इसी संघर्ष और द्वंद के कवि है। यही कारण है कि वे अपनी ढेढ शैली मे सबको रगड़ते हैं। क्योंकि "प्रतिहिंसा ही उनके कवि का स्थायी भाव है।" परन्तु इसके साथ ही जीवन और जगत् और प्रकृति के ढेढ रूपों के प्रति उनके मन में एक सहज आत्मीय भाव है।, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है।

नागार्जुन की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता उनकी काव्य– भाषा से संबधित है उनकी एक कविता का शीर्षक है– "भारतेंदु" [24]।यह कविता भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र को संबोधित है। भारतेंदु उनके लिये प्रकाश स्तंम्भ है। भारतेंदु का ऋण स्वीकार करते हुये उन्होने लिखा है–

" सर्वसाधारण जनता थी आँखों का तारा
उच्चवर्ग तक सीमित था भारत न तुम्हारा

हन्दी की है असली रीढ़ गँवारू बोली
यह उत्तम भावना तुम्हीं ने हम में घोली
बहुजन हित में ही दी लगा तुमने निज प्रतिभा प्रखर
हे सरल लोक सहित्य के निर्माता पण्डित प्रवर !''

गँवारू बोली को कलात्मक ऊँचाइयों तक पहुँचाने का भगीरथ काम नागार्जुन ने किया और प्रेरणा स्वरुप भारतेन्दु रहे। भाषा का सामान्य धरातल स्वीकार करते हुये उसमें सामान्य जन की संघर्ष गाथा को आवाज देने का काम नागार्जुन ने किया। सर्वसाधारण जनता की प्रगति के लिये उनकी ही बोली को सबसे पहले आदर प्रदान करना एक नितांत विवेक सम्मत बात है। भाव और भाषा पर जो प्रभाव नागार्जुन पर दिखायी देता है। उसकी पुष्टि उपर्युक्त संदर्भों से होती है। दरअसल स्वाधीनता संघर्ष और समकालीन परिवेश में जिस मुक्ति की चेतना को स्वीकारा गया था और जिसका प्रभाव नागार्जुन पर पड़ा उसे नागार्जुन ने स्वीकारा। इसी कारण कवि का संकल्प अत्यंत प्रबल और स्पष्ट है क्योंकि नागार्जुन वास्तविकता का साक्षात्कार करने से कभी कतराते नहीं। उनकी दृष्टि में यथार्थ का सामना करना ही सबसे बड़ा अनुष्ठान है, संसार से परे मुक्ति की कामना निराधार है। संसार में ही मुक्ति है। इसलिये नागार्जुन तमाम रूढ़ियों और संकीणताओं का विरोध करते है।'' वे संकल्प के साथ घोषणा करतें हैं –

'' खोज कर बंधन, मिटाकर निर्यात के आलेख
किया मैने मुक्ति पथ को देख ....[25]
(कल्पना के पुत्र हे भगवान)

'जनकवि' शीर्षक कविता में भी नागार्जुन सत्य और यथार्थ से साक्षात्कार करने की बात करते हैं–

''कैसे जनकतव धान रोपता
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन मामलों को मार भगाता
हरे बाँस की हरी–हरी लाठी लेकर ....
सब समझ गया हूँ।[26]

समाज में जो पीड़ित, उपेक्षित, शोषित अर्थात 'तुच्छ' है, नागार्जुन उसके जीवन पर काव्य, कहानी, रूपक, गीत लिखते हैं क्योंकि नागार्जुन के ऊपर सीधे गरीबी की मार पड़ी है। इसलिये उनको तुच्छता का भेद मालूम है [27] इसलिये नागार्जुन अपनी प्रतिबद्धता की घोषणा करते है –

'' प्रतिबद्ध हूँ जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ ....

बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त ....

संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्य ....
अविवेकी भीड़ की ' भेड़िया धसान' के खिलाफ ....
अन्य बधिर ' व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिये ....''[28]

नागार्जुन की जीवन दृष्टि और काव्य– दृष्टि बहुत स्पष्ट एवम् सहज है कवि ने जिस संघर्ष को जीवन और जगत् दोनों जगहों पर झेला उसका प्रभाव उनकी संवेदना में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। क्योंकि कवि अपने रचनात्मक विकास एवं जीवन यात्रा में कभी भी अपनी धरती से कटता नहीं है। नागार्जुन सच्चे अर्थो में धरती के कवि हैं। उनके लिये मानव धर्म से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। धरती और धरती पुत्रों को देखकर उनका मन प्रमुदित हो जाता है।[29] उन्हें इस बात का खेद है कि आज पूरा का पूरा समाज पटरी से उतर गया है। सबकी 'गंध चेतना ढस पड़ गयी है। शब्द, स्पर्श, गंध, रस, रूप लगभग छीज गये है। और इस प्रकार रस बोध पंगु हो गया है।[30]

वस्तुतः नागार्जुन जीवन के उल्लास के कवि है। जीवन का यह उल्लास जहाँ, जिस रूप में, जिसके द्वारा बाधित होता है। वे उन सबके विरुद्ध खड़े हो जाते है।यही कारण है कि जिस कवि ने यह घोषित किया है कि ''प्रतिहिंसा ही मेरे कवि का स्थायीभाव है।'' वह ''यदंतुरित मुस्कान'' और ''सिदूर तिलकित भाल'' की आभा में खो जाता है। उसे लगता है कि मिथिला के रुचिर भू– भाग उसे दूर से ही सही आशीष दे रहा है। ऐसे जनकवि के लिये कविता एक जीवंत शक्ति है देवी हैं इसलिये कविता का अपमान संस्कृति और परंपरा का अपमान है। राष्ट्र और राष्ट्रभाषा का अपमान है। अतः 'कविता' शीर्षक कविता में वे कहते है–

'वो रूठ गई है
उसे परेशान मत करो
जाने किस मुहूर्त में
उसे अपमानित किया था तुमने।
तुम्हारी घुली मुस्कान पे
उसे घिन आती है ....
आपके शब्दालंकार
भूस की बोरियाँ हैं उसके लिये
प्लीज हट जाओ सामने से। [31]

दरअसल नागार्जुन जिस विराट मानवीय परंपरा और आदर्श की स्थापना करना चाहते थे। उसके लिये उन्होने समूची भारतीय परंम्परा से प्रेरणा ली और और उसे रचना धरातल पर स्थापित किया। तत्कालीन परिवेश में कवि जिस प्रकार का संघर्ष कर रहा था उसकी चेतना का परिणाम ही उपर्युक्त संदर्भ है।

युगीन प्रभाव एवं यथार्थ के बहुविध आयामों का उद्घाटन-

नागार्जुन सहित सभी जनवादी कवि जिस काव्य संसार की रचना कर रहे थे। और जिसके माध्यम से समाज को भयमुक्त और शोषण मुक्त बनाना चाहते थे। उसके मूल में तात्पर्य का आहवान एवं गांधी की आदर्श परिकल्पना का पूरा प्रभाव है क्योंकि नागार्जुन की रचनाओं में शोषण– मुक्ति का जो स्वरूप है और मानवता के आदर्श की जो परिकल्पना है उसकेपीछे कवि की यथार्थ दृष्टि कार्यरत् है। वस्तुतः नागार्जुन प्रगतिशील जनवादी रचनाकार की भूमिका का सार्थक निर्वाह करते हैं। जीवन के यथार्थ से उनका गहरा सरोकार है यथार्थ के विविध आयामों का उन्होंने बड़ी बारीकी से अध्ययन किया और अपनी रचनाओं में उनको वाणी दी। नागार्जुन द्वारा चित्रित यथार्थ में केवल पीड़ा और यथार्थ ही नहीं है। उल्लास के क्षण भी हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा भी है। ''व्यथा और उल्लास का साधारणीकरण मेरी दृष्टि में बहुत बड़ा गुण है। रचना धर्मिता का।[32]

नागार्जुन का उद्देश्य (केवल नागार्जुन का ही नहीं बल्कि सभी जनवादी कवियों का) सर्वहारा की मुक्ति था। मार्क्स की चितंन दृष्टि का यह व्यापक प्रभाव नागार्जुन की रचनाओं में लक्ष्य किया जा सकता है। इसलिये नागार्जुन की रचनाओं

में जीवन की उन विद्रूपताओं, विसंगतियों और अंतर्विरोधों का मुख्य रूप से चित्रण हुआ है। जो सामान्य मनुष्य की स्वच्छदंता एवं स्वतंत्रता में बाधक होती है। यथार्थ–चित्रण में, इसीलिये व्यंग्य आक्रोश, खोज और यहॉ तक की कड़वाहट की अनुभूति होती है। इस कारण भाषा भी प्रभावित होती है। कतिपय उदाहरणों द्वारा इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। 'चमत्कार' और 'तीस हजारी कार' शीर्षक रचनाओं में नागार्जुन ने शासन व्यवस्था को गरीबी और भुखमरी के लिये जिम्मेदार ठहराया है–

"पेट–पेट में आग लगी है, घर–घर में फाका
यहाँ भी भारी चमत्कार है, कांग्रेसी महिमा का
सूखी आंतों की ऐंठन का हमने सुना धमाका
यह भी भारी चमत्कार है, कांग्रेसी महिमा का।[33]

"जाँता चुप है, चूल्हा ठण्डा, हाड़ी – तौला खाली है
फसलों की बर्बादी क्या थी, जनता की पामाली है
मिनिस्टरों के गालों पर देखो तो फिर भी लाली है
बात–बात पर बड़ी बात, पग–पग पर खायम खाली है।

सौ का खाना एक खा रहा आती नहीं डकार
नेहरू के इन चेलों की है लीला अपरम्पार।
पीच रोड पर मचल रही है 'तीस हजारी कार'।" [34],

तत्कालीन परिवेश के अनुरूप ही नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में समाज के सभी वर्गों को समेटने की कोशिश की है। इस कारण नागार्जुन की रचनाओं में यथार्थ का धरातल बहुत फैला है । नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में खेतों, खलिहानों में काम करने वाले मजदूरों, मिल के श्रमिकों के जीवन का असली चित्र प्रस्तुत किया है। उनके जीवन का सुख चैन छीनने वाली तमाम कोशिशें, और शक्तियों तथा संस्थाओं की इन्होंने कसकर खबर ली है। इसी कारण इनका उद्‌बोधन बड़ा स्पष्ट है।

" तुमसे क्या झगड़ा है
हमने तो रगड़ा है–
इनको भी, उनको भी, उनको भी।" [35]

नागार्जुन अपनी ढेढ शब्दावली में शोषण की तमाम शक्तियों को रगड़ते हैं। किसी को छोड़ते नही – चाहे वह राजनेता हो, सेठ महाजन हो, कोई संस्था हो। '26 जनवरी 15 अगस्त ' कविता आज भी बहुत प्रासंगिक है एक अंश प्रस्तुत है –

"सेठ है, शोषक है, नामी गला–काटू है
गालियाँ भी सुनता है, भारी थूक–चाटू है
चोर है, डाकू है, झूठा मक्कार है।
कातिल है, छलिया है, लुच्चा–लवार है

पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन लो
मास्टर की छाती मे कै ठो हाड़ है।

महल आबाद है, झोपड़ी उजाड़ है
गरीबों की बस्ती मैं, उखाड़ है, पछाड़ है
मंत्री ही सुखी है ? मंत्री ही मस्त है
उसी की है जनवरी, उसी की अगस्त है" [36]

'तीन सिरों वाला बेताल' शीर्षक रचना भी आधुनिक सामाजिक एवं राजनैतिक संबधों को उजागर करने वाली एक महत्वपूर्ण रचना है।[37]

जीवन दृष्टि को प्रभावित करने वाली युगीन परिस्थितियाँ और रचनाशीलता का स्वरूप-

यह स्पष्ट किया जा चुका है। कि नागार्जुन एक सशक्त जनवादी कवि है। उनकी यह दृष्टि समाज को एक विशेष दृष्टि से देखती है, जिसका उद्देश्य समता मूलक समाज की स्थापना है। यदि उपर्युक्त समग्र विश्लेषणों को एक क्रम से देखा जाये और पूरे विवेचना के उपरांत यह निर्धारित करने का प्रयास किया जाये कि किन– किन परिस्थितियों ने नागार्जुन की जीवन दृष्टि को निर्मित/खण्डित और प्रभावित करने का कार्य किया है। तो यह कहा जा सकता है कि भारतीय नवजागरण की परंपरा से यह प्रभाव कार्य पर पड़ा नजर आता है।

कहना न होगा कि 20वीं सदी के आरम्भ से भारतेन्दु के साहित्य और उस युग की आरंभिक अवधि से जन–जीवन में जागरण की जो चेतना व्याप्त हुई उसे युगीन

साहित्य से काफी बल मिला। इसके अतिरिक्त भारतीय राजनीति में गांधी की स्थिति ने भी सामाजिक –राजनैतिक स्तर पर बहुत बड़ा परिवर्तन संवेदनात्मक रूप से स्थापित किया। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की बड़ी घटनाऐं (जिनका इस अध्याय के आरम्भ में संकेत किया गया है।) विश्व परिदृश्य में प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध, मार्क्स की विचारधारा का विश्व जनमानस पर प्रभाव, पारंपरिक मूल्यों का ह्रास/खण्डन, नूतनता का विशेष आग्रह, स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात जनमानस की उम्मीदों पर केन्द्र सरकार (तत्कालीन कांग्रेस सरकार) का खरा न उतरना, जय प्रकाश आंदोलन, बिहार–बंगाल में सूखे से जन जीवन का बिखरना/उजड़ना, इमरजेन्सी के कारण लोकतंत्र की छीजना आदि ऐसी परिस्थितियाँ रहीं जिन्होनें नागार्जुन जैसे जीवंत–चेता व्यक्ति के मानस को दही की तरह मथ डाला।

इसके अतिरिक्त कवि के निजी जीवन के संदर्भ भी कवि की चेतना को कम प्रभावित करने वाले नहीं हैं। गाँव की पाठशाला से शिक्षा–संस्कार को प्राप्त करने वाले नागार्जुन अपने जीवन के आरंभ से ही घूमंतू प्रवृत्ति के रहे और स्थान–स्थान पर रहकर विविध संवेदनाएं बटोरते रहे। 1934 में जैन मुनियों के साथ गुजरात के काठियाबाड़ की यात्रा (संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन करने के लिये), इसी क्रम में हैदराबाद–सिंध–पाकिस्तान का भ्रमण, 1936 में श्रीलंका की यात्रा एवं बौद्ध भिक्षु के रूप में जीवन–यापन, इसी दौरान हिमालय का दर्शन जिसकी संवेदना कवि को निरंतर मथती हैं, बिहार के किसान आदोलन मे स्वामी सहजानंद के साथ भाग लेना, 1940 में पंजाब–सीमांत की गुप्त यात्रायें। 1941 में भागलपुर सेंट्रल जेल से रिहा होकर पुनः गृहस्थ आश्रम में प्रवेश, 1944 में इलाहाबाद प्रवास, 1963 में भारत–चीन आक्रमण के बाद कम्युनिस्ट पार्टी से सैद्धान्तिक मतभेद, 1974 में जयप्रकाश आंदोलन में सक्रिय भागीदारी आदि। जीवन पर्यंत की वे परिस्थितियाँ है, जिसने कवि के मानस को समय–समय पर संचालित निर्देशित करने का प्रयास किया है।

ये वो परिस्थितियाँ हैं, जिन्होने नागार्जुन की काव्य संवेदना को निरंतर प्रभावित किया है। और इसी के कारण कवि की काव्य चेतना मे विविधता के तेवर दिखायी पड़ते है। नागार्जुन की कविता में विषय और वस्तु के स्तर पर जो भी विशिष्टता अथवा नूतनता दिखायी पड़ती है, उसका कारण यही युगीन प्रभावकारी मनमौजी रहे हैं, कविता में भी उतने ही उन्मुक्त और स्वाधीन। प्रारम्भ में वे क्लासिक रूपों और

शैलियों के प्रति तीव्र रूप से मुग्ध दिखते है, किन्तु क्रमशः वे अपनी छवि एक प्रखर जनवादी कवि के रूप में निर्मित करते हैं। पर यह सारा कथन अघूरा और एकांकी इसलिये है कि उनकी कविता में कहीं भी ठहराव और बंधन नहीं है उनकी सधुक्कड़ी वृत्ति, घूमन्तू तबीयत, उनका कामरेडपन, उनकी गँवई आदतें, मस्ती और फक्कड़ता, बेबाकी, उनका गुरू गंभीर किन्तु पांडित्य, उनकी बहुभाषाविज्ञता और बहुमुखी प्रतिभा, उनका विस्तृत अनुभव, सबसे ऊपर उनकी आवेगशील भावुकता उन्हें किसी मुहावरे में बांधने नहीं देती। साथ ही वे बहुत सजग कवि और चतुर शिल्पी हैं। उन्हें अपने माध्यमों पर पूरा अधिकार है। पुराने और नये छंदों, देशी और परदेशी संगीत की प्रमाणिक जानकारी है। गाँव और नगर जीवन, शास्त्र और लोक रीतियों की पहचान है। वे भीषण संगीत प्रेमी और पराक्रमी छंद–सृष्टा हैं, किन्तु गद्य की बुनियाद पर खड़े होकर मुक्त काव्य– रचना का सामर्थ्य भी उनमें अद्‌भुत है। मुक्तिबोध सारी दुनिया को अपने भीतर समेटकर एक जुट हो एक जन–विरोधी व्यवस्था से भिड़ रहे थे। नागार्जुन की यह भिड़न्त व्यंग्य कविताओं में देखी जा सकती है। उनके व्यंग्य में आलोचना, उपहास, फब्ती और आक्रमण के मिले–जुले तेबर है।'' कहीं –कही वे सीधे प्रहार और कबीर वाले गाली –गलौज के अंदाज में भी उतरते है। पर यही उनकी कविता की सबसे बड़ी ताकत नहीं है। हाँ, उनकी रचनाशीलता की एक अच्छी–खासी पहचान अवश्य है।उनकी कविता इसलिये याद की जायेगी कि उसमें आम–आदमी का प्रेम, आम आदमी का गुस्सा, उसका जीवन संघर्ष, मजा–मौज सब वहाँ पहली वार प्रामाणिक तौर पर उपलब्ध है। सामान्य और मामूली आदमी को वे जितने करीब से जानते हैं। उतना शायद ही कोई अन्य कवि जानता हो। इस मायने में उनकी संवेदना का परिदृश्य बहुत विस्तृत है। अपने इस सारे अनुभव लोक को वे जिस आत्मीय ऊर्जा के सहारे गूँथते–रँगते और बाँधते हैं, वह सर्जित काव्य–चरित्रों को उनकी जन–संघर्ष कला का अभिन्न हिस्सा बना देती है।[38]

माना जाना चाहिये कि कवि नागार्जुन को जिन परिस्थितियों ने निर्मित किया उनके साथ कवि ने पूरा न्याय भी किया है। जिस निम्नवर्ग एवं मध्यमवर्ग की संवेदना और पीड़ा को कवि ने जीवन भर भोगा उसे अपनी रचना के माध्यम से एक दिशा देने की निरंतर कोशिश नागार्जुन की रचनाओं में मिलती है। उनकी मौलिकता निरंतर उनके व्यक्तित्व की उद्‌घोषणा करती है। येनान गोष्ठी में मार्क्स ने कवि/ साहित्यकार से इस बात का स्पष्ट आग्रह किया था। कि उन्हे निम्न एवं पीड़ित/ शोषित वर्ग को

अपने साहित्य के माध्यम से उनके अधिकार दिलाने की कोशिश करनी चाहिये। इस विचार/चिंतन की कवि नागार्जुन ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरा निभाया।

"कहना होगा—नागार्जुन जितने जबरदस्त भोक्ता हैं। उतने ही बड़े सर्जक भी। उनकी मौलिकता और ताजगी का अंदाज उनके कथनों में खोजा जाना चाहिये। शैलियाँ तो उनके कथनों के प्रति अनन्य भाव से समर्पित है। कहा जाता है कि नागार्जुन की अधिकांश कविताऐं अखबारी हैं और उनका एकमात्र मकसद प्रचारात्मक है। इसका कोई जबाब जरूरी नहीं है। कविता कभी नारा बनती है, कभी झंड़ा, कभी बैनर। पर नागार्जुन के यहाँ वह प्रसन्न और सुदृढ़ कलाकर्म भी है, जिसका स्थापत्य क्लासियों से टक्कर ले सकता है। पर यह ही क्यों ? इसकवि ने उन लोगों को वाणी दी है, जो रोजी—रोटी की लड़ाई में बुरी तरह फंसे हुये हैं। विधवा, विज्ञापन, सुंदरी, मधुक्षरा, जया, रिक्शा—ठेला, मजदूर, चटकल—श्रमिक, जूट—कारखाने के कर्मचारी, ड्राईवर, चपरासी, प्राइमरी स्कूल मास्टर, खोमचा लगाने वाले, कौन नहीं है। यहां और वह खेत—मजदूर भी। सारी सर्वहारा आबादी प्रत्यक्ष तौर पर तो यहां है। नागार्जुन उस जीवन को भरोसा और बल प्रदान करने वाले गरीब—दुखी जनता के संघर्षों के प्रवक्ता कवि हैं। उनकी कविता में उन राजनेताओं का जिक्र भी खूब है, जिनके कारण बंटाधार हो रहा है। स्वार्थी, शोषण तथा पूँजीवादी एवं बिके हुए, आत्मग्रस्त और कैरियरिस्ट बुद्धिजीवी तो खैर वहाँ हैं ही। वे मजदूरों और गरीब निम्न मध्यमवर्ग के नेता और जनान्दोलनों से गहन संपर्क रखने वाले कवि हैं। सामाजिक कार्यकर्ता और कवि की दुहरी भूमिका का निर्वाह करते हुये भी उनकी कविता हिम्मत नहीं हारती। जो वर्ग उनकी चिंता का कारण है बही उनके रचनात्मक आवेग का जन्मदाता भी।"[39]

स्पष्ट है कि नागार्जुन की कविताओं में जन—जीवन की संवेदना का एक अंतहीन चित्र निरंतर मिलता है। सोच के एक लंबे निष्कर्ष के बाद उनकी कविता पैदा होती है, जिसमें सभी वर्गों का चेहरा अपना दर्द/खुशी समेटे मिलता है। उनकी रचनाशीलता का स्वरूप इसी परिवेश में ही निर्मित होता है और उसका विस्तार भी यहीं से होता है। अपनी इस रचनशीलता में नागार्जुन "कई—कई रंग और रूपों में हाजिर हो पाते हैं। संपूर्ण वर्तमान और भविष्य की बहुविध परिक्रमा करते हैं और मानव तथा उसके चारों ओर की दुनिया को उसकी विविधता में देख पाते हैं।"[40]

स्वीकारना होगा कि साहित्य की इतिहास धारा में प्रत्येक युग और आंदोलन

का अपना स्थान और महत्व होता है। जनवादी कविता और कला का भी अपना अवदान है। नागार्जुन जैसा जनवादी रचनाकार अपनी रचनाशीलता के माध्यम से जो अवदान देता है वह अत्यंत विशिष्ट है। नागार्जुन का साहित्य और व्यापक अर्थों मे जनवादी साहित्य सच्चे अर्थो में वृहत्तर समाज के मनोभावों, स्वप्नों, संघर्षों, और तकलीफों से जुड़ा है। ज्यादा बड़े और अब तक के उपेक्षित समाज के पक्ष में अपनी सहृदयता प्रकट कर सका है। नागार्जुन इस आधार पर यदि वर्ग–विशेष के साहित्यकार के रूप में स्वीकारे जायें तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये क्योंकि आरंभिक साहित्य इस तरह की परिस्थितियों से युक्त था। किंतु नागार्जुन जैसे मानवतावादी रचनाकार का लक्ष्य उस समाज की सामाजिक स्थिति को और बेहतर बनाना था। नागार्जुन का साहित्य एक व्यापक अर्थ में ज्यादा संवेदनशील और विशिष्ट है। इसमें बना–बनाया संस्कारित सौंदर्य और सुगंधित दिव्यता के बजाय मिट्टी, पानी, बरखा, धूप, खेत–खलिहान, मजदूर–किसान, बाढ़–भूख–अकाल के चित्र सर्वोपरि हैं। यह वह समाज है, जो दुनिया को खूबसूरत बनाने में अपना श्रम लगा रहा है। हिन्दी के जनवादी कवि नागार्जुन इसी समाज के आधारभूत मनुष्य के प्रति समर्पित हैं, और अपने ऊपर व्याप्त युगीन प्रभावों का सफल निर्वाह भी करते हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन की काव्य– संवेदना पर विचार करते हुये डॉ0 परमानंद श्रीवास्तव का कथन प्रासंगिक है। कवि की युगीन महत्ता और काव्य–दृष्टि पर प्रकाश डालते हुये उन्होंने लिखा है। "प्रगतिशील कविता के दौर में अपनी जनोन्मुख संवेदना और सहज लोकधर्मिता के कारण नागार्जुन की कविता ने एक महत्वपूर्ण पहचान बनाई, इसमें संदेह नहीं, पर यह भी सही है कि इसके आगे के आधुनिकतावादी काव्य–युग में वह हाशिय की चीज समझी जाने लगी। जैसे उसका केवल ऐतिहासिक महत्व हो। यह वह समय था जब कविता के सामाजिक आयाम सिकुड़ते चले जा रहे थे और वह खास रूपवाद जन्म ले रहा था जो हताशा, कुण्ठा, अकेलापन, अजनबीपन, व्यर्थता बोध जैसे आयतित अभिप्रायों की कलात्मक अभिव्यक्ति में ही सार्थक हो सकता था। इस बीच जब जन–आंदोलनों का उभार सामने आया और नागार्जुन की कविता गली–सड़क–बाजार–नुक्कड़–मैदानों में पहुंच कर कविता की वृहत्तर सामाजिक भूमिका का साक्ष्य या उदाहरण बनकर सामने आयी तो उसे पुनः केन्द्रीय महत्व पाते देर न लगी। परिस्थितियों के दबाव का ही परिणाम था कि लगभग इसी समय समूची भारतीय कविता में कविता के भारतीय चरित्र, जड़ों

की खोज, कविता के ठेट देशीपन की मांग की जाने लगी। यही परिप्रेक्ष्य है जिसमें नागार्जुन की कविता पुनः केन्द्र में है और यह अनिवार्य हो चला है कि उसके आलोक में प्रगतिशील कविता के कलाशास्त्र या सौदर्यशास्त्र के बारे मे नए सिरे से विचार किया जाये।[41]

उपर्युक्त संदर्भ का आशय यह है कि नागार्जुन की कविता अपने युग में संघर्ष करती हुई अपने अस्तित्व की स्थापना कर संघर्ष करती है।

युगीन प्रभाव और भाषायी संवेदना का स्वरूप-

नागार्जुन प्रतिवद्ध आधुनिक कविता के अग्रणी कवियों में है। उनकी कविता पूंजीवादी व्यवस्था और पूंजीवादी राजनीति को चुनौती देने वाली कविता है। मनुष्य को विभाजित करने वाली व्यवस्था पर सीधे दबाव डालने वाली कविता है। ये सारी विशेषताऐं नागार्जुन के काव्य पर युगीन प्रभावों की देन है, जिनसे कवि की संवेदना विविध पक्षीय बनी है। कवि नागार्जुन अपनी इस प्रतिबद्धता के लिये जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, वह उन्हें कुशल कवि सिद्ध करता है।

ध्यातव्य है कि नागार्जुन एक प्रतिबद्ध जनवादी कवि हैं। जनवादी कविता विशाल जन–समुदाय से जुड़ी हुई होने के कारण किसानों, मजदूरों और निम्न मध्यवर्ग के लोगों का चित्रण करती है। अतः स्वाभाविक है कि इस कोटि की कविताओं में मुख्य रुप से बोल–चाल की भाषा (कामन–स्पीच) के शब्द प्रमुखता से प्रयुक्त हुए हैं। प्रायः जन–जीवन से समरसता के कारण तद्भव शब्दों, लोकोत्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग देखने में आता है। जनवादी कविता जन से प्रतिबद्ध कविता है और उसका मुख्य उद्देश्य शोषण की शक्तियों का पर्दाफाश करना है, तथा जनता में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जगाना है, इसलिये जनवादी कवि के लिये शब्द व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने का एक कारगर औजार बन जाता है क्योंकि कवि के पास भ्रष्ट व्यवस्था से लड़ने के लिये शब्दों के अतिरिक्त कोई दूसरा औजार नहीं होता। वह अपनी कलम से भ्रष्टाचार के चित्रण के द्वारा भ्रष्टाचार से लड़ने के लिये, अन्याय के विरोध के लिये, लोगों में एक नयी चेतना जगाता है। यही कारण है– कि सभी जनवादी कवियों ने कविता में लोकमन से जुड़े तद्भव शब्द प्रयुक्त किये हैं और भदेसपन के बावजूद लोक–जीवन की गंध विखेरी है।

उदाहरणस्वरूप नागार्जुन की 'घर से बाहर निकलेगी कैसे लजवन्ती'[42] शीर्षक कविता प्रस्तुत की जा सकती है। कविता की पहली पंक्ति 'कटे वस्त्र हैं, घर से बाहर निकलेगी कैसे लजवन्ती' में ही कविता का केन्द्रीय कथ्य प्रस्तुत कर दिया गया है। कविता अपने तेबर में व्यंग्यात्मक है और आधुनिक शासन तंत्र पर एक करारा चोट है। जिस देश की अस्सी प्रतिशत जनता का जीवन 'कष्ट–कथा' हो, उसमें विभिन्न रजत–जयन्तियों का आयोजन जनता के श्रम और जनता की गरीबी का उपहास मात्र है। भूसी मिली चीनी, गल गई पत्तियाँ, मुँह बाये झोपड़ियाँ, सत्तू की पोटरियाँ बाँधे, शिशुओं को बैठाये काँधे, अचरज के मारे मुँह बायें, जैसे पद कविता के केन्द्रीय कथ्य को उजागर करने के लिये पर्याप्त हैं।

युगीन वेदना और पीड़ा के दंश को अभिव्यक्त करने वाली कवि की दो और रचनाऐं 'सत्य'[43] तथा 'अहिंसा'[44] में कवि की चेतना मानों अपने पूरे संवेग के साथ अभिव्यप्त हुई है। शब्दों का बड़ा सधा प्रयोग इन कविताओं में कवि ने किया है। ये दोनों ही कविताएँ 'इमरजेन्सी' के दौरान लिखी गयी हैं, जिसमें कवि का स्वर व्यंग्यात्मक है। व्यंग्य का लक्ष्य इंदिरा गाँधी हैं। कवि ने सत्य और अहिंसा को जीवित व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया है। जिनकी आड़ में असत्य और अहिंसा को प्रश्रय मिलता है। इसके दो चित्र प्रस्तुत हैं–

''सत्य को लकवा मार गया है
वह लंबे काठ की तरह
पड़ा रहता है, सारा दिन, सारी रात।''
(सत्य)

''105 साल की उम्र होगी उसकी
जाने किस दुर्घटना में
आधी–आधी कटी थी बाहें
झुर्रियों– भरा गंदुगी सूरत का चेहरा
धँसी–धँसी आँखे ....
राजघाट पर गाँधी समाधि के बाहर
वह सवेरे सबेरे नजर आती है।''
x x x ('अहिंसा')

शब्द चयन की विशिष्टता -

कवि नागार्जुन अपनी काव्य भाषा में यथार्थ की इस तल्खी को हर समय महसूस करते हैं। और अभिव्यक्त करते हैं। अपनी एक कविता में कवि वर्ग–भेदक ा चित्रण करेते हुए सहज की सामाजिक विद्रूपता को अभिव्यक्त करता है। अपनी कविता 'घिन तो नहीं आती है।' में कवि कलकत्ता शहर में पूरी स्पीड में चलने वाली ट्राम में बैठे हुए दो वर्ग के व्यक्तियों का चित्र खींचता है। पहले वर्ग मे बोझा ढोने वाले, ढेला खींचने वाले कुली, मजदूर आते है और दूसरे वर्ग में चौंरगी की हवा खाने निकले दूधिया लिवास वाले भद्र लोग हैं। दोनों साथ–साथ यात्रा कर रहे हैं। दूधिया लिबास वाले भद्र व्यक्तियों से कवि प्रश्न करता है–

> ''ये तो बस इसी तरह
> लगाएगें ठहाके, सुरती फाँकेंगे
> भरे मुँह बातें करेंगे अपने दोस्त देस–कोस की
> सच–सच बतलाओं
> अखरती तो नहीं इनकी सोहबत ?
> जी तो नहीं कुढ़ता है ?
> घिन तो नहीं आती है''[45]

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर साफ है। सफेदपोश बाबूओं को कुली–मजदूरों की संगति नहीं भाती है। प्रश्न यह कि क्या इन्हें भुला दिया जाये? लेकिन नागार्जुन इन्हें भूल नहीं सकते, इन्हें भूलने वालों को क्षमा भी नहीं कर सकते क्योंकि ये कुली, मजदूर श्रम करते हैं, इनके श्रम पर पूरा समाज टिका हुआ है।, श्रम के बदले उन्हें बहुत कम मिलता है। नागार्जुन की ये कुली मजदूर प्रिय हैं क्योंकि ये कुली मजदूर ''सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन''[46] निष्कर्ष यह निकलता है। कि सच्चा सौंदर्य महानगरों में लक–दक, ताम–झाम में नहीं है बल्कि धरती की धड़कन में है, धरती की धड़कन सुनने वालों में है।

नागार्जुन की ही दूसरी कविता ''पैने दांतों वाली''। इस कविता में कवि ने सौदर्य के सारे प्राचीन प्रतिमानों, उससे संबंधित अभिव्यक्ति प्रणाली आदि को उठाकर किनारे फेंक दिया है। कवि का शब्द–चयन, मुहावरों का चयन पूर्णतः नवीन है, जिसमें

कवि की क्रांन्तिकारी दृष्टि का पूरा उन्मेष दिखायी पड़ा है। मादा सुअर जिसे शायद हिंदी कविता में पहली बार जगह मिली है, का चित्र कवि के सौंदर्य बोध को उजागर करने वाला है–

"धूप में पसरकर लेटी है
मोटी–तगड़ी, अधेड़, मादा सुअर ....
जमना– किनारे
मखमली दूवों पर
पूस की गुनगुनी धूप में
पसरकर लेटी है
यह भी तो मादरे–हिंद की बेटी है
भूरे–भूरे बारह थनों वाली।"[47]

सुअर को मादरे हिन्द की बेटी कहने के लिये बड़ा कलेजा चाहिये–आचार्य शुक्ल जिसे 'लोक हृदय' कहते हैं। इसी विषय पर कोई दूसरा या नया कवि लिखे तो वह पहले प्रतीकात्मक सार्थकता या कलात्मक सूक्ष्मता का इतना आग्रह लेकर चलेगा कि कविता अधिक से अधिक किसी उपेक्षित गोचर वस्तु पर बौद्धिक प्रतिक्रिया होकर रह जायेगी। भावुक अथवा क्रान्तिकारी दोनों तरह के कवि चूक जाएंगें और व्यंग्य को इतने सीधे अनायास ढंग से उजागर नहीं कर पायेंगे।

युगीन परिवेश का प्रभाव एवं व्यंग्य भाषा का प्रयोग-

व्यंग्य में अभिव्यक्ति की विराट् शक्ति होती है। सत्य को चिन्हित/चित्रित करने के लिये व्यंग्य से बढ़िया शब्दावली नहीं होती है। हिन्दी कविता में यह आरंम्भ से ही देखा जा सकता है कि जिन कवियों ने सामाजिक यथार्थ को चित्रित किया है, सामाजिक विषमता का विरोध किया है, उसने अपनी अभिव्यक्ति प्रक्रिया में व्यंग्य को सम्मिलित किया है। कबीर की पूर्ववर्ती परंपरा से लेकर परवर्ती युग तक यह तथ्य देखा जा सकता है।

ध्यातव्य है कि आधुनिक कविता को जो समाज मिला, जिस समाज से उसे रचना का विषय प्राप्त हुआ और जिस समाज में उसे समरसता स्थापित करनी थी, वहाँ सर्वत्र विसंगतियाँ ही व्याप्त थीं। जिनके बीच इन कवियों को अपना उद्देश्य

प्राप्त करना था। नागार्जुन जैसे प्रखर जनवादी ने अपने युग की सारी संवेदनाओं को अनुभूत किया और उसकी सहज अभिव्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से किया। कवि में जो व्यंग्य दृष्टि निर्मित की वह इसी कारण विशिष्ट है। कवि नागार्जुन की व्यंग्य–चित्रण दृष्टि की समीक्षा करते हुये समीक्षक डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है –" नागार्जुन जब व्यंग्य लिखते हैं तब भी लोकजीवन से उनका संपर्क दिखाई देता है– जन–समस्याओं के प्रति इतनी चिंता प्रदर्शित करने वाला दूसरा कवि आधुनिक कविता में नहीं है। यह व्यंग्य–कविता भारतेन्दु की परंपरा कर सहज विकास है। "शासन की बंदूक" शीर्षक प्रसिद्ध की ये 'दोहे' के अनुशासन में लिखी पक्तियाँ'

"जली ठूँठ पर बैठ कर गयी कोकिला कूक'
बाल न बांका कर सकी शासन की बंदूक। "

x x x ('तुमने कहा था')

यहाँ भी एक शब्द फालतू नहीं है। प्रकृति की एक घटनाको शासन के समानान्तर, एक प्रतिरोधी शक्ति के रूप में रखने का निश्चय ही एक विशेष अर्थ वनता है। इसलिये इस पर बल देने की जरूरत है कि नागार्जुन के पास सजग आधुनिक दृष्टि भी है जो प्रकृति को एक नयी संवेदना का साक्ष्य देती है। गँवई–गाँव की चंदनवर्णी धूल ही उसकी सीमा नहीं है।[48]

नागार्जुन ने व्यंग्य की जो परिधि निर्मित की है उसमें राजनीति, समाज, धर्म सब कुछ समाहित है। नागार्जुन ने बृहत् परिवेश मे अपने व्यंग्य को स्थापित किया है। राजनैतिक अव्यवस्था से संघर्ष करते हुये कवि ने कई जगह अपनी व्यंग्य शक्ति का परिचय दिया है। इंदिरा गांधी के शासन काल को अपने व्यंग्य का निशाना बनाते हुये कवि ने बड़ी तल्ख भाषा में लिखा है–

क्या हुआ आपको ?
क्या हुआ आपको ?
सत्ता की मस्ती में
भूल गयीं बाप को ?
इंदुजी, इंदुजी क्या हुआ आपको ?

बाबा की यह मारक नुक्कड़ कविता थी। आपातकाल में जन–जन की जबान से यह कविता चढ़ गई थी। भाषा की यह संप्रेषणीयता नागार्जुन की विलक्षणता को

सिद्ध करती है।

नागार्जुन के व्यंग्य में चित्रण की कुशलता दिखाई पड़ती है। एक साथ इतने सारे चित्र कविता में खींचना और उसे केवल मस्तिष्क ही नहीं मन तक भी उतार देना कवि नागार्जुन की विशेषता है। अकाल की परिस्थितियों का जो चित्र कवि ने दिया है उसमें एक साथ व्यंग्य, वर्णनात्मकता, यथार्थ–चित्रण आदि सारी परिस्थितियाँ दिखायी पड़ती है–

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उसके पास–
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आँगन से उपर कई दिनों के बाद।''[49]

x x x (अकाल और उसके बाद)

वस्तुतः सर्वहारा की मुक्ति की जिस पवित्र कामना को लेकर नागार्जुन अपनी काव्य भाषा की रचना कर रहे थे। उसके लिये उनके मन में शोषक वर्ग में घृणा की गहरी भावना थी। यही भावना उनके व्यंग्य में भी लक्षित होती है–

''बताऊँ ?
कैसे लगते हैं–
दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी कुदब तन पर मणिमय आभूषण।''[50]

एक आत्यंतिक परिस्थिति का चित्र खींचकर नागार्जुन ने समाज के अंतर्विरोध पर जैसा प्रहार किया है, वैसा दूर–दूर से बौद्धिक सहानुभूति जताने वाले कवियों के लिये संभव नहीं है। 'बताऊँ' के साथ भेद खोलने वाली जो मुद्रा है उससे नागार्जुन एक तरफ पाठक समुदाय से– जनसाधारण से सीधा, विश्वास का रिश्ता जोड़ लेते हैं और दूसरी तरफ यह ध्वनित कर देते हैं कि उनकी घृणा उनके अपने अनुभवों का निचोड़ है। अपने अनुभव के बल पर नागार्जुन इस निष्कर्ष पर पहँचे हैं कि देश की दरिद्रता का उपचार करने की जगह इस कोढ़ पर मणिमय आभूषण का श्रृंगार करने वाला समाज अमानवीय है। नागर्जुन को हर प्रकार की अमानवीयता पर मूलभूत रोष है। उनका यह रोष उनकी कविता में सर्वत्र व्याप्त है। वह कहीं व्यंग्य में ढलकर व्यक्त

हुआ है, कहीं चुनौती और ललकार के स्वर में प्रकट हुआ है, वह कहीं इस अमानवीय शासन–सत्ता के राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिनिधियों का उपहास करने सामने आता है। कहीं प्रकटतः आदर–श्रद्धा और "मंत्र कविता" का रूप लेकर उभरता है। वह हर जगह काव्यात्मक ही है, ऐसी बात नहीं है। महत्वपूर्ण यह है नागार्जुन को जितनी घृणा वर्तमान समाज–व्यवस्था से है, वे उस पर अपना आक्रमण उतना ही केंद्रित करते जाते हैं। नागार्जुन की काव्य चेतना का यह अत्यंत सबल पक्ष है कि वे श्रमिक जनता से तादात्म्य स्थापित करते हैं और उसके दृष्टिकोंण को स्वांगीभूत करते हैं। जनता के साथ नागार्जुन का यह तादात्म्य न कल्पित है, न आरोपित।

'नागार्जुन की कविता की भाषा का विश्लेषण करने पर एक विशिष्ट बोध होता है। नागार्जुन की कविता में वर्णन–गुण की ओर, नैरेटिव चरित्र की ओर ध्यान दिया जाये तो उनकी कवि–प्रकृति के मूल भारतीय रूप को समझा जा सकता है। उनकी लंबी कविताओं का खाका ऐसा है कि उसमें कथा का विधान, चरित्र की बनावट, परिस्थतियों का नाटकीय तनाव सब कुछ प्रकट हैं वह कौन था (तालाब की मछलियाँ), तीन दिन तीन रात, (तुमने कहा था) ऐसी ही विचारणीय कवितायँ हैं। 'वह कौन था' कविता में शोषण चक्र में फंसी जनता और सत्ता के बीच टकराव पर टिप्पणी है, जिसमें तेजी से घटती हुई घटनाऐं, वातावरण में फैली सनसनी भाषा की सहज पकड़ में है कबीर की तरह भाषा नागार्जुन के लिये कोई समस्या नहीं है। पर यह नागार्जुन की क्षमता के कारण, भाषा के प्रति बेपरवाही या अविवेक के कारण नहीं। कविता का आरंभ एक नाटकीय सवाल से होता है–

> "कोर्ट की दीवार पर
> चुपचाप जो अभी पोस्टर चिपका गया
> वह कौन था।'
> 'तीन दिन तीन रात' कविता में–
> बस सांस बंद थी
> तीन दिन तीन रात"

जैसी पंक्ति गिरी सूचना नहीं है, घटना है, कर्फ्यू का तनाव व्याप्त है।[51]

"नागार्जुन जन–कवि के रूप में महत्वपूर्ण हैं ही, एक बड़े कवि के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं। जनता के पक्ष में कविता लिखने वाले और भी हैं पर जनता को अपने

में आत्मसात कर कविता लिखने वाले नागार्जुन अकेले कवि है।[52]

कुल मिलाकर नागार्जुन की भाषा बोलचाल की भाषा है। उसमें लोक– जीवन की शब्दावली है और यह सब कुछ परिस्थितियों की देन है, युग का स्वर उनकी काव्य–भाषा में मुखरित है।

परिस्थिति जन्म भाषा के विविध रूप-मुहावरों, बिंबों, लोकोत्तियों आदि का प्रयोग-

यह तथ्य पूर्णतः विदित एवं प्रमाणित है कि नागार्जुन अपने युग और संघर्ष की की परंपरा की देन है। अतः सहज अनुमेय है कि जिस परंपरा और परिवेश मे जीवन संचालित होगा भाषा का स्वरूप भी उसी के अनुरूप निर्मित होगा। कवि नागार्जुन की भाषा में यथार्थ का जो रूप चित्रित है, व्यंग्य का जैसा पुट है उसको निर्मित करने में भाषा के विविध रूपों का विशेष योगदान है नागर्जुन की कविताओं में भाषा के अंतर्गत जो मुहावरे, लोकोत्तियाँ, बिंब, प्रतीक आदि आए हैं उनका अपना एक वैशिष्ट्य है वे न तो अचानक रचे गये हैं और न ही लादे गए हैं। अपितु उनमें परिस्थिति को बयान करने की शक्ति कवि ने भरी है। मन की वेदना का जब जैसा की चाहा वैसा चित्र नागार्जुन ने खींचा, इस तथ्य की पुष्टि के लिये इनकी रचनाओं में इन प्रयोगों के प्रमुख उदाहरण देखे जा सकते हैं। यहाँ कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से बिबों, प्रतीकों, व्यंग्यात्मक पदों, लोकोत्तियों, मुहावरों की एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है जिससे कवि की भाषा प्रकृति को समझने और युगानुकूल प्रभाव को परखने में सहायता मिल सके–

क. तद्भव शब्द-

- हिय [53]
- निठुर[54]
- काज[55]
- पच्छिम[56]
- निक[57]
- बइठा[58]
- कायथ[59]
- कस्ट[60]
- सुस्ता[61]
- बिसरना[62]
- पछिया[63]
- कोरव[64]
- हुलास [65]
- अंखुए[66]
- परसाद[67]
- कृस्नन[68]
- करतब[68]
- रूखे बाल[69]
- मिहनत[70]
- रमायन[71]
- सुगौवा[72]

❖ धौरे[73] ❖ पिछियाए[74]

ख. बिंब एवं प्रतीक विधान- जनवादी कवियों में नागार्जुन ने जो बिंब और प्रतीक दिये हैं। उनका परिदृश्य बड़ा व्यापक हैं नागार्जुन के बिंब एवं प्रतीक एक ही साथ शोषण का पर्दाफाश करते हैं। जन–सामान्य की आभाक्रान्त जिंदगी के चित्रों को उभारते हैं और साथ ही शोषण की शक्तियों पर अचूक प्रहार भी करते हैं। नागार्जुन ने मिथकीय पात्रों का आधुनिक संदर्भो की व्याख्या करने के लिये प्रतीकात्मक प्रयोग किया हैं नागार्जुन शुद्ध 'हयूमर' की सृष्टि करने में बेजोड़ है।

'जयति–जयति जय सर्व मंगला शीर्षक रचना से एक उदहारण प्रस्तुत है–

❖ आज नहीं तो कल सातों ऋषि वेतनभोगी भृत्य बनेंगे–या कि पेंशनर
अक्षत है थोड़े यद्यपि देवता बहुत हैं
ब्रह्मा–विष्णु –महेश किसी को नींद न आती
कोटि–कोटि कष्टों से निःसृत शांति पाठ सुन–सुन कर इनका मन अशान्त है।[75]

❖ बादल को घिरते देखा है (प्राकृतिक बिंब)[76]
❖ तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ (पूरी कविता)[77]
❖ 'शरशय्या पर पड़े हुये है वृद्ध पितामह
स्तनपायी शिशु छिन्न मुण्ड छपपट रहे हैं
बडी–बड़ी तनख्वाहें पाने वाले विदुरों की मत पूछो
दुर्वासा उपकुलपति बनने की फिराक में [78]
❖ शूर्पणखा [79] (मिथकीय प्रतीक)
❖ धन कुरंग[80] (प्राकृतक बिंब)
❖ धूप मे खिलेपात[81] (प्राकृतिक बिंब)
❖ फिसल रही चॉदनी [82] (प्राकृतिक बिंब)
❖ अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलुम मिटायेंगें धरती से
इसके साथी और सँधाती।[83] (कृष्ण का मिथकीय स्वरूप)
❖ पुलिस आगे बढ़ी–
क्रांन्ति को संपूर्ण बनाएगी

गुमसुम है फौज–
वो भी क्या आजादी मनायेंगे
बँध गयी घिग्घी
माँथे में दर्द हुआ
नंगे हुये इनके वायदे।[84]

ग. व्यंग्य

- शांति का अभिनय इसे ही करने दो
  क्योंकि यह बुद्ध है[85]
- सड़ गयी है। आँत
  पर दिखाए जा रहे हैं दाँत[86]
- तुम जला गये हो मशाल
  बन गया आज वह ज्योति–स्तम्भ
  कोने–कोने से बढ़ता ही जाता है किरनों का पसार।[87]
- हम भी मछली, तुम भी मछली
  दोनों ही उपभोग वस्तु है।" [88]
- सरग था उपर, नीचे था पाताल
  अपज के मारे बुरा था हाल
  दिल दिमाग भुस का, खद्दर की थी खाल [89]
- बाकी बच गया झण्डा (राजनैतिक व्यंग्य)
- अजगर करे न चाकरी[90] (रा. सा. व्यग्य)
- नेहरू के इन चेलों की है लीला अपरंपार [91]
- नीली झील और जलचर[92] (साहित्य व्यंग्य)
- पुरानी जूतियाँ का कोरस[93] (राजनैतिक, सा., आ.,व्यंग्य)
- बाघिन[94] (इंदिरा पर व्यंग्य)
- चंदू मैंने सपना देखा[95] (पूरी कविता)

घ- लोकोत्तियाँ एवं मुहावरे

- मन की मन में रही [96]
- चोर चोर मौसेरे भाई [97]

❖ बैठे बैठे बात बनाना [98]

❖ बिवाई फटना [99]

❖ नाक रगड़ना [100]

❖ मिठुराई का खेल [101]

❖ कंठ खुलना [102]

❖ लुटिया डुबोना [103]

❖ सौ–सौ गोते खाना [104]

❖ पसीना छूटना [105]

❖ तीन रंग के तेरह टुकड़े होना [106]

❖ घिग्घी बंधना [107]

❖ साँप सूंघ जाना [108]

❖ अक्किल फूटना [109]

भाषा के उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक मे ंयह माना जा सकता है कि नागार्जुन ने जिस काव्य भाषा की रचना की है, जिस शब्दावली का चयन किया, वह उनकी काव्य–कुशलता को जहाँ प्रदर्शित करती है, वहीं युगीन प्रवृत्तियों का परिचय भी देती है। कुल मिलाकर नागार्जुन की काव्य संवेदना पर जो युग परक प्रभाव पड़ा वह कवि के अभिव्यक्ति विधान और संवेदना दोनों को एक साथ प्रभावित करता है।

ब. युगान्तर प्रभाव

नागार्जुन ज़नवादी कविता की कवि–परंपरा के श्रेष्ठ कवि है। उनकी कविता जन–जीवन का सच्चा चित्र अपनी परिधि में समेटे है। ध्यातव्य है कि जनवादी कविता अपने समय की परिस्थितियों और विचारधाराओं की देन है। जनवादी कवियों ने युगीन परिस्थितियों और संदर्भों को अपनी बेलौंस भाषा में प्रस्तुत करते हुये कविता को एक नयी भाव– भूमि दी थी। नागार्जुन जैसे कवि ने अपनी परंपरा की पूरी रक्षा करते हुये अपने समाज को पूर्ण न्याय दिलाने की निरंतर कोशिश की। नागार्जुन सहित जनवादी कवियों ने जो दिशा एवं परंपरा तय की उसका आगे के काव्य–युगों पर किसी न किसी रूप में प्रभाव पड़ा। आधुनिक हिन्दी कविता की परंपरा में प्रत्येक काव्य–युग अपने पूर्ववर्ती काव्य–युगों की संवेदना को या तो अस्वीकार करके निर्मित हुआ है या स्वीकार करके विस्तार करते हुए। जहाँ तक जनवादी कविता की संवेदना का प्रश्न है निःसंदेह इस युग की संवेदना पर मार्क्स की विचारधारा, गांधी का प्रभाव, तत्कालीन राजनैतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक आदि प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव इतना व्यापक और गहरा था कि इसने आगे की कविता धारा को भी किसी–न –किसी रूप में अवश्य प्रभावित किया। इसका कारण यह रहा कि जिस शोषित और पीड़ित वर्ग के लिये जनवादी कवियों ने संघर्ष किया, जिस दलित और शोषित मानवता के उत्थान का संकल्प इस युग की कविता में मिलता है, वह इतना महान व्रत था कि आगे के कवियों ने भी इसी भावना को अपना आधार बनाया।

देखने की बात यह है कि मानवता के जिस विराट् रूपक की रचना जनवादी कवियों ने की और जिस निरीह प्राणी (मानव) के उत्थान का कार्य कविता के माध्यम से किया, आगे की कविता भी इसी वस्तु को अपना आधार बनाकर चली। समकालीन कविता जो बहुत से कवियों ने जनवादी कविता की धारणाओं को बहुत अंशों में स्वीकारा और उसमें कुछ–न–कुछ नया जोड़कर समाज के विविध संवेदनात्मक रूप को आपकी कविता के माध्यम से व्यक्त किया।

मानना पड़ेगा कि नागार्जुन का अकेला व्यक्तित्व जनवादी कविता का एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसने समकालीन कविता और सत्तर, अस्सी, उससे आगे के दशकों की कविता को नवीन काव्य–विषय/वस्तु दिया। कविता के जिस विराट् कैनवस की रचना नागार्जुन ने की उसके अनेक रूपों का विस्तार आगे की कविता में दिखायी पड़ता है।

नागार्जुन की काव्य संवेदना: परवर्ती प्रभाव

जनवादी कविता अपनी जिस रचनात्मक ऊर्जा और आवेश के लिये ख्यात है, उसमें उसके कवियों की भूमिका प्रासंगिक है। नागार्जुन ने अकेले इस युग में जिस चेतना का प्रवाह किया, वह प्रासंगिक है शोषित, पीड़ित जनता के हितों की जो आवाज नागार्जुन ने उठायी वह आगे की कविता में सुनायी पड़ती है। नागार्जुन ने श्रमजीवी समाज को उसके अधिकार दिलाने का जो संघर्ष लिया, वह आगे के कवियों ने भी जारी रखा। इस परंपरा के कवियों में लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, लीलीधर मंडलोई, ज्ञानेन्द्रपति, राजेश जोशी आदि प्रमुख हैं। इन समकालीन कवियों ने नागार्जुन की जनवादी परंपरा का न केवल सम्मान किया अपितु आम आदमी की जिंदगी को और नजदीक से देखने/परखने का कार्य भी किया।

समाकलीन कविता का सर्वोत्तम रूप नागार्जुन की संवेदना के प्रभाव स्वरूप देखा जा सकता है। इस युग की जो सर्वोत्तम कविता लिखी गई वह परसंबोधी कविता है। वह चाहे धूमिल की कविता हो चाहे अन्य कवियों की कविता हो। दरअसल समकालीन कवि ने आम आदमी की बात करते हुए आधुनिक चेतना द्वारा परिकल्पित आमूर्त मानव के मिथक को तोड़ा और उसके बाहर जाकर ऐसे आदमी की तलाश की, जो मानव से छोटा निम्नस्तरीय और गली कूचे का आदमी था। यह शब्दान्तर महत्वपूर्ण रहा, इसलिये 'मोचीराम' लुकमान' अली' मुसद्दीलाल', 'रामलाल' और अल्लारखी जैसे शब्द आ गये।

वस्तुंतः 60–70 के दशक की कविता या एक व्यापक अर्थ में समकालीन कविता भारतीयता की खोज की कविता है। वह व्यक्ति के ऐतिहासिक आयाम के खोज की कविता है। न तो कविता इतिहास से बाहर है और न संदर्भो से जुड़ा हुआ मनुष्य उसके बाहर है, इतिहास से पछाड़ खाता हुआ, टकराता हुआ, इतिहास और सामाजिक स्थितियों को बदलने की कोशिश में लगा हुआ मानव है यही चेतना इस युग की कविता के केन्द्र में सक्रिय रही है।

वस्तुतः जनवादी कविता के युग में जो आंदोलन जन–जीवन की संवेदना के लिये आरम्भ हुआ उसने नयी कविता के आंदोलन को/उसके प्रभाव को खण्डित कर दिया। साढोत्तरी कविता नयी कविता से सर्वथा भिन्न आंदोलन है। अब विद्रोह,

क्रान्ति, विसंगति, विघटन और आतंक उसके लिये अनुभव न रहकर जीवित संस्कार बन गये। इन कवियों के लिये राजनीति जीवंत सच्चाई है। डॉ. गोविन्द राजनीश ने इस संपूर्ण परिवेश पर विचार करते हुये लिखा है– "साढोत्तरी कविता का परिवेश विद्रोह के लिये उर्वर बना था। नयी कविता के मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और लक्ष्मीकांत वर्मा ने युग की विसंगतियों और विडबनाओं को देखा था, युग की मूल्यहीनता का अनुभव किया था। मुक्तिबोध में मोहभंग की स्थिति थी। पर वे समकालीन कविता से सीधे जुड़ जाते है। दूसरी ओर विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती और कुंवर नारायण जैसे कवि भी है, जो मूल्यहीनता को मिथकों के सहारे व्यंजित करके नयी अर्थवत्ता खोजने का संकेत भर देते है। लेकिन साढोत्तरी कवियों ने इससे एक कदम आगे बढ़कर अपने सम्पूर्ण इतिहास और परिवेश से विदोह किया।[110]

साढोत्तरी /समकालीन कवियों में घूमिल, कमलेश, देवेन्द्र कुमार आदि ऐसे कवि है, जिन्हें युग की विडबंनाओं और विकृतियों का गहरा अहसास है। इस युग की कविता ने अपने युग की संवेदना को गहन रूप से अनुभूत किया है। इस सदर्भ में डॉ रजनीश की मान्यता प्रासंगिक है– "साढ़ोत्तरी कविता ने अपने युग की विसंगतियों की जितनी गहन पहचान की है, उतनी पूर्ववर्ती काव्यान्दोलन नहीं कर पाये थे।[111] "दूधनाथ सिंह की जनमत के कौन अंधकार में" और हेमन्त शेष की 'बुझते हुये ठंडे सपने के अंत में' आक्रामकता का जो भाव है वह पूर्ववर्ती जनवादी पंरपरा की प्रेरणा का प्रभाव है। वस्तुतः ये संवेदनाओं पूरी पीढ़ी की संवेदनाएँ हैं। इस दृष्टि से यह कविता जीवट और दिलेरी की कविता है। जनवादी चेतना या बहुत व्यापक अर्थ में आम आदमी की जीवनगत् संवेदना के चित्रण का क्रम कविता में निरंतर गतिमान है। सातवें दशक की कविता, जिसमें संवेदनात्मक सक्रियता के साथ नागार्जुन भी विद्यमान थे वस्तुता उन सभी विसंगतियों से जुड़ी है, जो जनवादी चेतना को मथती है। रघुवीर सहाय की कविता इस युग में एक नवीन चेतना का संकेत देती है आज के राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक यथार्थ का सही दस्तावेज उनकी कविताओं में मिलता है। समसामयिक चेतना और संवेदना का आत्मसात् रघीवीर सहाय, घूमिल, चंद्रकांत देवताले, लीलघर जगूड़ी, कमलेश, श्रीराम बर्मा, नीलाभ, आदि ने किया है। धूमिल की 'पटकथा', प्रमोद सिन्हा की 'तलघर', लीलाधर जगूड़ी की 'अनैतिक' कमलेश की 'जरत्कारू' आदि कवितायें आज के तनाव, समय की विद्रूपताओं,

विसंगतियों, राजनीतिक दुरभिसंधियों, विडंबनाओं और आज के आदमी की नियति को अधिक उजागर करती हैं। सर्वेश्वर का काव्य युग के यथार्थ के छंद का काव्य है। उनकी कविता मे अंतर्मुखता और बहिर्मुखता, आत्मीयता, और अनात्मीयता, ग्राम्य और नगरीय चेतना कहीं टकराती और कहीं जुड़ती चली जाती है।

इस बात का संकेत पूर्व में कर दिया गया है कि जनवादी कविता घनघोर अनास्था की देन रही है। यही अनास्था और विद्रोह आगे के काव्य युग में भी दिखायी पड़ती है। समकालीन कवियों के लिये राजनीति ही सबसे गतिशील, प्रत्यक्ष एवं कठोर सच्चाई रही है। इसलिये इनकी कविता ने केवल समकालीन दुनिया की पहचान को गहरा किया है अपितु परिवेश जन्य विसंगतियों को खोलकर रख दिया है।

राजनीति से जूझने की जो तटस्थता नागर्जुन की रचनाओं मे दिखायी पड़ती है। वह समकालीन कविता के कवियों में भी व्याप्त है। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसे अनेक संदर्भ हैं जो समकालीन कविता में देखे जा सकते हैं।

संवेदना के विविध रूप एवं प्रभाव निरूपण

कहना न होगा कि नागार्जुन ने जिन विषयों को अपनी कविता के लिये चुना उसको आगे किसी–न–किसी रूप में अपनाया गया। संवेदना के इन विविध रूपों का यदि विश्लेषण किया जाय तो ज्यादा प्रासंगिक होगा।

राजनैतिक चेतना के प्रति असंतोष का गहन भाव जो नागार्जुन के मन में व्याप्त था वह बाद के कवियों में और अधिक गहरे असंतोष के साथ दिखायी पड़ता है। राजनीति से जूझना इन कवियों का / आज के कवियों का अनिवार्य एवं अपेक्षित कवि–कर्म हो गया है –

अपने यहाँ
संसद तेल की एक धानी है।
जिसमें आधा तेल है –
आधा पानी है।[112] (पटकथा)

धूमिल कृत 'पटकथा' की ये पक्तियाँ लोकतांत्रिक संस्था की सर्वोत्तम और विश्वनीयता का नग्न रूप प्रस्तुत करती हैं। इसी क्रम में ओम प्रकाश निर्मल की 'कुछ हो रहा है' कविता की पंक्तियाँ भी देखी जा सकती है –

'राजनीति' एक 'देह व्यापार' हो गई है
'संसद की सीढ़ी' याने 'हर की पैड़ी' याने
'राजनीति पंडों का हरिद्वार' हो गई है।[113] ('कुछ हो रहा है)

विद्रोह की चेतना, जिस जनवादी कवियों ने सत्य की शोध/स्थापना का प्रमुख आधार बनाया था, उसे परवर्ती रचनाकारों ने नयी मनः स्थिति के साथ स्थापित किया। समकालीन कवियों की विद्रोह चेतना प्रमुख है। इस विद्रोह के कुछ कारण भारतीय परिवेशजन्य थे और कुछ अंतर्राष्ट्रीय चेतना से जुड़े थे। भारतीय परिवेश की परिस्थितियों और विसंगतियों सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिजन्य थी। स्वाधीनता के बाद सरकार द्वारा जन-जीवन का स्तर सुधारने की जो योजना थी, वह एक सिरे से ध्वस्त हो गई। राजनीतिक विद्रूपता अपने चरम पर पहुँच गई। भारत पर आक्रमण हुआ चीन का। महंगाई और गरीबी के पाटों में जनता पिसने लगी। दूसरी तरफ विज्ञान की भयावह शक्ति से मानवीय सत्ता संकुचित होने लगी। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि युवा पीढ़ी में विक्षुब्धता बढ़ गयी। इस कारण विद्रोह का एक बड़ा वातावरण तैयार हुआ, जिसको इस युग के कवियों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और चित्रित किया। इस युग की विद्रोह की जो कविताऐं सामने आयीं उनमें भाषा की तल्खी और स्वर का पैनापन अधिक था। इसका सशक्त उदाहरण इन पंक्तियों में दिखायी पड़ता है –

'सिर्फ
एक लावा
जो कुर्सियों के आस-पास
फूटेगा
नक्शा बदलने के लिये
काफी है।[114]

x x x x x (लीलाधर जगूड़ी, 'इस व्यवस्था में')

सन् 1960 के बाद जो सबसे अच्छी और सर्वोत्तम कविता लिखी गयी, वह पर-संबोधी कविता है। वह चाहे मुक्तिबोध की कविता हो चाहे धूमिल की हो। वह किसी 'तुम' के तलाशती हुई कविता है। 'तुम' वह है जो वाह्य यथार्थ है, एक सच्चाई है, एक सामाजिक वास्तविकता है सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई उसके साथ अपने

रिश्तों को तलाशती हुई कविता है। उस 'तुम' के साथ कई स्तरों पर जो रिश्ते बनते हैं, समकालीन कविता उन रिश्तों के खोज़ की कविता है। 'तुम' के साथ जो रचना और कवि के जटिल संबंध हैं, उन संबंधों की गहराई में बैठने की कोशिश करने वाली कविता है।

ध्यान देने की बात है कि नागार्जुन ने इस 'तुम' को अपनी काव्य –संवेदना में गहरा स्थान दिया था। उन्होंने तुम की स्थिति का व्यापक विश्लेषण करते हुये लिखा है–

वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन ?
उनींदी घड़ियों में चुरती है
वे हुलसित हैं
अपनी ही फसलों में डूब गये हैं
तुम हुलसित हो
चितकबरी चांदनियों में खोये हो
उनको दुख है
तरूण आम की मंजरियों को पाला मार गया है
तुमको दुख है
काव्य– संकलन दीमक चाट गया है।[115]

x x x (वे और तुम)

इस पूरी कविता में 'तुम' के जो विविध रूप हैं जो समाज के प्रत्येक वर्ग (शोषित, पीड़ित, दलित) से आएं हैं उनको कवि ने आवाज दी है। इसी व्यापक स्वरूप को कविता में समकालीन कवियों ने पुनः नयी ऊर्जा के साथ वाणी दी है। इन कवियों ने 'तुम' की पीड़ा के गहन बोध को अनुभूत करने का प्रयास किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि कस्बों और गाँवों में रहने वाला 'तुम' भी कविता की व्यापक परिधि में

सम्मिलित हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि इन कवियों ने आम–आदमी के दुःख दर्द की बातें कीं –

दस ग्यारह साल के लड़के को
होना चाहिये।
छठी या सातवीं जमात में
x x x
कौन चुरा कर ले जाता है
उसके हिस्से की किताबें
(वह कल–पुर्जो पर ग्रीस लगाता है)
कौन चुरा कर ले जाता है
उसके हिस्से के खिलौने
(वह फुटपाथ पर पालिश का खोखा लगाता है)
किसने चुरा ली हैं
उसकी उमंग भरी यात्राएँ
(वह रेलगाड़ी में गाता है,
भीख के लिये हाथ फैलाता है) [116]
x x x x x (राजेश जोशी)

राजेश जोशी की उपर्युक्त कविता में जिस 'तुम' की पीड़ा व्यक्त है। वह नागार्जुन की परंपरा /प्रभाव का प्रतिरूप ही है।

जिस 'तुम' अथवा आम आदमी को कविता में समकालीन कवियों ने चित्रित किया वह आज की संवेदना का साक्षी है। समकालीन कवियों ने मध्यवर्ग के शिक्षित समुदाय और उच्चवर्गीय परिधि से बाहर उस व्यापक जन समुदाय को अपनी रचना धर्मिता का लक्ष्य बनाया जो नागार्जुन की कविता का केंद्रीय समुदाय है। इसी वर्ग की पीड़ा, जो आम शोषित, पीड़ित व्यक्ति की वेदना थी, को नागार्जुन ने अपनी वाणी द्वारा अभिव्यक्ति दी थी। "समकालीन कवियों ने इसी कारण आम आदमी की बात करते समय आधुनिक चेतना द्वारा परिकल्पित अमूर्त मानव के मिथक को तोड़ा और उसके बाहर जाकर ऐसे आदमी की तलाश की, जो मानव से छोटा, निम्नस्तरीय और गली–कूँचे का आदमी था। वह मानव से ज्यादा ठोस और ज्यादा सच्चा आदमी था।[117]

ध्यातव्य है कि इसी ठोस और सच्चे आदमी की संघर्ष गाथा नागार्जुन और जनवादी कविता के अन्य कवियों में हैं। और यही संवेदना बाद के समकालीन कवियों में दिखती है। समकालीन कविता में लुकमान अली, मोचीराम, नगई भरा, मुसद्दीलाल आदि जैसे पात्र इसी संवेदना के प्रतीक हैं। इन नामों के साथ जुड़ी हुई संपूर्ण वास्तविकता है और उस वास्तविकता से टकराता हुआ आज का कवि है, जिसकी चेतना का धरातल पहले के कवियों से भिन्न है। इसके लिये धूमिल की 'किस्सा जनतंत्र' कविता का एक अंश द्रष्टस्थ है–

'औरत
गवें–गवें उठती है– गगरी में
हाथ डालती है
फिर एक पोटली खोलती है
उसे कढपत में झाड़ती है
लेकिन कढवत का पेट भरता ही नहीं
परतमुही (पैथन तक नहीं छोड़ती)
x x x x x
चौक में खोयी हुई औरत के हाथ
कुछ भी नहीं देखते
वे केवल रोटी बेलते हैं और,
बेलते रहते हैं
एक छोटा सा जोड़–भाग
गश खाती हुई आग के साथ–साथ
चलता है और चलता रहता है
पड़कू को एक ' छोटकू को आधा
परवत्ती– बालकिशन आधे में आधा
कुल रोटी छै।[118]
x x x x x

इसमें निम्नवर्गीय परिवार की गरीबी, अभाव ग्रस्तता और बेबसी मूर्त हो उठी है। गगरी का खाली होना, कढवत का पेट न भरना, पैथन को भी काम में लेना,रोटी

बनाने के साथ–साथ बँटवारे का जोड़–तोड़ चलना, स्थिति की दयनीयता और आम आदमी के दर्द को एक साथ व्यंजित कर जाते हैं।

वस्तुतः वर्ग–विषमता और मामूली आदमी के दर्द ने समकालीन कवियों को जनवादी चेतना की ओर उन्मुख कर दिया। उन्होंने युगीन विसंगतियों और विडंबनाओं का वस्तुपरक रूप में देखा है। स्थितियों को व्यक्तिवादी रूझान से वस्तुपरकता की ओर ले जाने का और उनके खोखलेपन को बेनकाब करने का प्रयास समकालीन कवियों की संवेदना को परंपरावादियों की संवेदना से अलग करता है।

असंतोष और परिणाम स्वरूप आवेश की स्थिति जो जनवादी कविता की मूल–चेतना थी, उसका स्वरूप परिवर्तित और विकसित हुआ आगे चलकर समकालीन कवियों में भी दिखायी पड़ता है। इन कवियों धूमिल, कमलेश, देवेंन्द्र कुमार आदि ऐसे कवि हैं, जिन्हें युग की विडंबनाओं, विकृतियों और विसंगतियों का गहरा अहसास है पर उनमें भावावेश, आक्रोश और उत्तेजना का जो स्वरूप है वह विशिष्ट है इन कवियों ने जनतंत्र की ध्वस्त होती परंपरा से गहरा असंतोष व्यक्त करते हुए अपने आवेश की अभिव्यक्ति की है। धूमिल की कविता 'शहर में सूर्यास्त' के अंतर्गत इस बेदना का आवेशात्मक असंतोष दिखायी पड़ता है।

'इस देश के बातूनी दिमाग में
किसी विदेशी भाषा का सूर्यास्त
फिर सुलगने लगा है
लाल हरी झण्डियाँ
जो कल तक शिखरों पर फहरा रही थीं
वक्त की निचली सतहों में उतरकर
स्याह हो गयी हैं और चरित्रहीनता
मंत्रियों की कुर्सी में तब्दील हो चुकी है
और हवा में एक चमकदार गोल शब्द
फेंक दिया है– जनतंत्र
जिसकी रोज़ सैकड़ों बार हत्या होती है।
और हर बार
वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा हैं।[119]

x x x x x

दूधनाथ सिंह की 'जनमत के मौन अंधकार में' और हेमंत शेष की 'बुझते हुए ठंडे सपनों के अन्त में' में भी इस व्यापक संवेदना को देखा जा सकता है कहना होगा कि यही आक्रोश और विद्रोह जनवादी कविता की भी मूलशक्ति थी और यही भावना समकालीन कविता के कवियों की सामर्थ्य और सृजन प्रेरणा का आधार भी है।

युगान्तर प्रभाव और युवा पीढ़ी की संवेदना :

नागार्जुन की कविता ने आगे के रचनाधर्मी मानस को प्रभावित किया, इसमें संदेह नहीं है। इसका प्रभाव युवा कवियों की ऊर्जा पर भी पड़ा और परिणाम स्वरूप विद्रोह और क्रान्ति की चेतना और अधिक ऊर्जा के साथ फूटी। असंतोष और आक्रोश की चेतना इस युग में और अधिक दिखायी पड़ती है। कारण यह है कि युवा कवियों के पास स्वच्छ पारदर्शी दृष्टि है जो भारतीय लोकतंत्र के हर पहलू, कमजोरी और दैन्य को सामने ला देती है। यह कहीं खेद, कहीं खीज और कहीं सीधे सवाल–जबाब पर उतर आती है –

'क्या दिया तुमने ?
महज जयहिन्द
फकत फाकाकशी, आँकड़े
बस आसमानी आँकड़े
और गुत्थम गुत्थई राशन की कसी कतारें
बेरोजगारी[120]

x x x x x (केशनी प्रसाद चौरसिया)

केशनी प्रसाद की ये पँक्तियाँ लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति असंतोष की गहरी बेदना को व्यक्त करती हैं। स्पष्ट है कि "आक्रोश ही युवा कविता की सृजन–शक्ति और सामर्थ्य है। युवा कवि के अनुभव आज के जीवित संस्कारों से सीधे टकरा रहे हैं। युवा कवि को मालूम है कि राजनीति के घुसपैठियों ने शब्दावलियाँ बदल–बदल कर लंबे– चौड़े वायदों से जनता को बहकाया है। जनता मूर्खों की तरह उस ओर आशा लगाती रहती है।" प्रमोद सिन्हा की' तलधर इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। देवेन्द्र कुमार की कविता 'बीस साल बाद' की ये पंक्तियाँ व्यवस्था से उत्पन्न असंतोष का अन्यतम उदाहरण हैं –

'क्या मैं पूछ सकता हूँ
कि आपके संविधान के छाते के नीचे
कितने लोग आ सकते हैं ?
बरसों पहले आपको इसे बता देना चाहिये था।
जिसे बीस बरसों बाद, आपसे मुझे पूछना पड़ रहा है।[121]

x x x x x

इस संदर्भ में डॉ. रजनीश की स्थापना महत्वपूर्ण है कि "युवा कविता ने जो आज की स्थितियों से टकराने की कोशिश की है उससे न केवल कविता के मुहावरे में परिवर्तन आया है, बल्कि भाषा और शिल्प की दृष्टि से कविता जन–सामान्य की कविता का रूप धारण करती जा रही है। भाषा के अलंकरण, प्रतीकात्मकता और बिंबधर्मिता को गौण मानते हुए युवा कवियों ने बोलचाल की भाषा में अपने भावों को व्यक्त किया है। इसी से वह आज के पाठक की जानी– पहचानी कविता है। युवा कविता की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि है। साथ ही इसमें व्यक्ति –सत्य और समय–समय में सही तालमेल स्थापित किया है और यह भी कम महत्वपूर्ण तथ्य नहीं कि सातवें दशक की युवा कविता की प्रवृत्तियां की आठवें दशक की कविता को प्रेरित कर रहीं हैं।[122]

इस युग की कविता को अपनी सशक्त आवाज देने वाले कवियों में रघुवीर सहाय की संवेदना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रासंगिक है कि नागार्जुन की संवेदना का बहुत बड़ा हिस्सा सहाय की कविताओं में भी दिखायी पड़ता है। सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने के कारण रघुवीर सहाय की कविता महत्वपूर्ण है–

'पूंछेगा संसद में भोला भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय–हाय करता, हाँ–हाँ करता हुआ,
हें हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिये एक जुट होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को।" [123]

x x x x x (एक अधेड़ भारतीय आत्मा)

कवि की ये पंक्तियाँ अव्यवस्था और असंतोष की भावना को व्यक्त करती हैं। ध्यातव्य है कि जिस राजनैतिक अव्यवस्था और असंतोष को जनवादी कवियों ने अनुभव किया था उसे बाद की कविता में निरंतर स्वर मिलता रहा।

यह ध्यान देने की चीज है कि जिस प्रकार की राजनैतिक परिस्थितियाँ आजादी के पूर्व और आस–पास थीं, जिसका प्रभाव नागार्जुन और अन्य जनवादी कवियों पर पड़ा, उसी प्रकार की राजनैतिक परिस्थितियाँ 70–80 के दशक के आस–पास थीं। विचित्र उतार–चढ़ावों वाला यह दशक अजीब रहा, जिसमें 1971 का चुनाव, पाक युद्ध और विभाजन, बांग्लादेश का निर्माण, 1975 का आपातकाल, 1977 मे जनता दल का शासन और अंततः फिर इंदिरा गांधी की वापसी, जयप्रकाश का सार्वजनिक अपमान, युवा आन्दोलन की प्रखरता, आदि घटनाएं शामिल रहीं।

पूर्व में इस बात का संकेत किया जा चुका है कि जनवादी काव्य–धारा को प्रभावित करने वाली भी ऐसी ही परिस्थितियाँ रहीं, जिसने उन कवियों को रचना का विषय/वस्तु प्रदान किया था। अस्तु यह देखा जा सकता है कि तीसरे–चौथे दशक से राजनैतिक स्तर पर जो विसंगतियाँ दिखायी पड़ती थीं उसी तरह की परिस्थितियाँ आगे भी दिखायी पड़ती हैं। जिसके कारण समकालीन कविता और बाद के कवियों पर जनवादी चेतना का प्रभाव बहुत अंशों में व्याप्त है। साढोत्तरी कविताओं में व्यंग्य/आक्रोश की व्याप्ति इसका सजग एवं सतर्क उदाहरण है।

आठवें दशक की कविता, जो तत्कालीन राजनैतिक परिवेश की देन थी, में भी आक्रोश और आवेश का स्वर प्रचुर मात्रा में मिलता है वस्तुतः जनतंत्रीय व्यवस्था के प्रति जनवादी कविता का आक्रोश आठवें दशक तक भी उसी आवेश के साथ दिखायी पड़ता है। इस आवेश का उदाहरण धूमिल की 'संसद से सड़क तक' कविता में मिलता है। इस जनतंत्रीय देश में 'समाजवाद' की अवधारणा को खण्डित होते देख युवा कवियों की विद्रोही चेतना सजग हो उठी। इसकी प्रतिक्रिया कविताओं के माध्यम से व्यक्त हुई। धूमिल की स्पष्ट मान्यता है–

"मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।"

x x x x x (संसद की सड़क तक)

जबकि वीरेन्द्र कुमार को समाजवाद एक गणितीय सवाल– सा लगता है जिसका हल अत्यन्त जटिल है–

" सौ समाजवादी नल
एक देश को,
चालीस साल में
समाजवाद से भर पाते है
और चार सौ भ्रष्टाचारी नल
उसे पाँच साल में
खाली कर देते हैं।
यदि दोनों नल
साथ खुले हों
तो क्या देश कभी समाजवाद से भरेगा ?
देखें इस सवाल को
कौन हल करेगा।"[124]

x x x x x

चंद्रकांत देवताले भी इसी तरह की सच्चाई को बेवाक ढंग से प्रस्तुत करते हैं–

" प्रजातंत्र की रथयात्रा निकल रही है
औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है
गुंडों और नोटों की ताकत से हतप्रभ लोग
खामोश खड़े हैं
मैं भी खामोश खड़ा हूँ और काँप रहा हूँ"[125]

x x x x x

वस्तुतः जनवादी कविता जिस श्रमशील जन–जीवन को उसके लक्ष्य तक पहुँचाना चाहती थी, उसका दुःख–दर्द बांटना चाहती थी उसे समुचित न्याय दिलाने का काम बाद में समकालीन कवियों ने भी किया। इस परंपरा में शैलेश जैदी, उपेन्द्र कुमार, विनोद चन्द्र पाण्डेय, अरुण कमल, इब्बार रब्बी, राजेश जोशी, कुमार विकल, स्वप्निल आदि का नाम उल्लेखनीय है। कुल मिलाकर काव्य वस्तु और रचनाधर्मिता के धरातल पर नागार्जुन की कविता का प्रभाव बाद की साढोत्तरी और समकालीन

तथा बीसवीं शताब्दी के बाद तक दिखायी पड़ता है। लोकवादी दृष्टि, जन–जीवन की संवेदना का विराट् रूप जो जनवादी कविता में दिखायी पड़ता है उसका प्रभाव युवा कवियों पर भी अनेक रूपों में दिखायी पड़ता है।

भाषायी प्रवृत्ति और प्रभाव निरूपण :

समकालीन रचनाकारों और परवर्ती रचनाकारों को भाषा की एक समृद्ध परंपरा मिली। बीसवें दशक के आरंभ में काव्य– भाषा की महत्ता और अस्तित्व पर जो बहस आरंभ हुई, वह काफी महत्वपूर्ण है। ध्यातव्य है कि द्विवेदी युग भाषा– परिष्कार का युग भी माना जाता है। इसके बाद काव्य– भाषा की महत्ता और अस्तित्व पर जिस कवि ने सबसे अधिक काम किया, निराला थे। निराला ने काव्य भाषा की सर्जनात्मकता के लिये सबसे अधिक प्रयास किया। दरअसल काव्य भाषा के स्तर पर लोक–संवेदना को चित्रित करने की परंपरा सर्वप्रथम निराला ने ही शुरू की थी। इस संवेदना को आगे बढ़ाने का कार्य जनवादी और प्रगतिशील कवियों ने किया। इनमें सर्वाधिक व्यापक प्रयास नागार्जुन जैसे जनकवि का रहा। इस बात में कोई संदेह नही है कि समकालीन कविता और उसके बाद की कविता भाषा में जो प्रभाव व्याप्त है उसमे निराला और नागार्जुन की बहुत बड़ी भूमिका है।

नागार्जुन की पचास वर्षों मे लिखी कविताओं के विश्लेषण से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि 'निराला' के बाद भाषा को लेकर नूतन प्रयोग नागार्जुन ने ही किया है। काव्य– भाषा के स्तर पर नागार्जुन जितने परंपरावादी हैं, 'बादल को घिरते देखा है' और 'सिंदूर तिलकित भाल', उतने ही आधुनिक, प्रगतिशील और क्रान्तिकारी भी। उन्होंने अपनी कविताओं में मैथिली शब्दों तक का खुलकर प्रयोग किया है। नागार्जुन अपनी व्यंग्यधर्मी– क्रान्तिकारी कविताओ में भाषा के पूरे वेग को झोंक देते हैं। ये शब्द साधारण तथा रोजमर्रा अनुभव से लिये हुये हैं जो बातचीत के ढंग में व्यंग्य में बदल जाते हैं। वे बातचीत के लहजे में तुक/बिट का निराला की तरह ही अक्रामक प्रयोग करते हैं। नागार्जुन सच्चे अर्थों में जनता से जनता की भाषा में लिखने वाले क्रान्तिकारी और औघड़ शब्द साधक कवि हैं। उनकी कविता की तरह ही उनकी काव्य–भाषा में भी विविधता और विलक्षणता है यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति राग से लेकर मानवीय राग तक की सजल कविताएं रची हैं। उनकी व्यंग्य मिश्रित भाषा में दुःख और संताप रिसता है। उन्होंने कविता के किये परंपरा से अर्जित

भाषा के साथ ही साथ जनता की भाषा का इस्तेमाल किया। 'बाकी बच गया अण्डा' शीर्षक कविता इसका उदाहरण है–

पाँच पूत भारत माता के,
दुश्मन था खूँखार
गोली खाकर एक मर गया,
बाकी बच गये चार।
चार पूत भारत माता के,
चारों चतुर प्रवीन।
देश निकाला मिला एक को,
बाकी बच गये तीन।
तीन सपूत भारत माता के
लड़ने लग गये वो
उनमें से एक अलग हो गया,
बाकी बच गये दो।
दो पूत भारत माता के
छोड़ पुरानी टेक।
कुर्सी से एक गया चिपक
अब बाकी बच गया एक।
एक पूत भारत माता का
हाथ में लिये झण्डा
पुलिस पकड़ कर जेल ले गयी,
बाकी बच गया अण्डा।

x x x x x ('बाकी बच गया अण्डा')

वर्णन की परंपरा, भाषा की सहजता / सरलता और अभिव्यक्ति का जैसा विधान नागार्जुन की इस कविता में दिखायी पड़ता है, वही आगे चलकर अन्य कवियों में दिखयी पड़ता है। समकालीन कविता की भाषा इसका अन्यतम उदाहरण मानी जाती है।

शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, केदार नाथ सिंह, त्रिलोचन, मुक्तिबोध

आदि की भाषा पर समान्तर रूप से जनवादी चेतना का प्रभाव देखा जा सकता है।

केदारनाथ अग्रवाल सहज मानवता बोध और आत्मीय प्रवृत्ति के कवि हैं। उनकी काव्य–भाषा में यथार्थ और परंपरा का सामंजस्य दिखायी पड़ता है। जीवन–व्यापार से जुड़ी शब्दावली का प्रयोग उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। व्यंग्य, विद्रोह आवेश आदि की चेतना उनकी कविताओं मे सर्वत्र दिखायी पड़ती है।

प्रगतिशील परंपरा के कवियों में त्रिलोचन शास्त्री की काव्यभाषा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविता में मेहनती, मजूदर, किसानों के साथ ही सामाजिक रूप से बंचितो की भाषा भी दिखायी पड़ती है। उनकी कविता में भारतीय जनमानस की भाषा का बोध मिलता है। यह शोषकों, पूंजीपतियों, साम्राज्यवादियों, अत्याचारियों विलायती पुत्रों की भाषा नहीं है। कुल मिलाकर जनवादी चेतना की भाषा का विस्तार–बोध उनकी काव्य–भाषा में मिलता है।

इस स्थिति में शमशेर की काव्यभाषा और नागार्जुन के अलावा त्रिलोचन हिन्दी में भाषायी समृद्धि के सबसे बड़े कवि हैं। त्रिलोचन की भाषा में स्थानीयता का रंग है ठीक वैसे ही, जैसे नागार्जुन में मैथिली रंग। त्रिलोचन की काव्य–भाषा में निराला और नागार्जुन की ही तरह लोक–चेतना का जादू सा है।

मुक्तिबोध इस परंपरा के एक और उदाहरण हैं। यद्यपि उनकी काव्य–भाषा जटिल और अति बौद्धिक है किंतु उसमें शोषण और अत्याचार से संघर्ष की चेतना झलकती है। दरअसल नागार्जुन, निराला और मुक्तिबोध तीनों ही अपने–अपने तरह से युगीन काव्य–प्रवृत्तियों और भाषायी संवेदना का प्रतिनिधित्व करते हैं और शोषण की शक्तियों का मुकाबला करते हैं।

नागार्जुन की ही मिट्टी की उपज हैं युवा कवि आलोक धन्वा। इनकी कविता की भाषा बेहद मंजी हुई है। यह इस कदर मंजी हुई है कि उसमें से स्थानीयता, जनवदीयता के सारे रंग गायब हो गये हैं। आलोक धन्वा की भाषा में न तो सादगी आ पाती है और न ही व्यंग्यात्मकता। इनकी कविता की भाषा साधारण होते हुये भी शिल्प के आंतक से इतनी भरी हुई हैं कि पाठक तक कविता सीधे संप्रेषित नहीं हो पाती। आलोक धन्वा चमकदार शब्दों को कविता में प्रयुक्त करते हैं और भाषायी बोध को कुछ क्लिष्ट बना देते हैं, लेकिन संप्रेषणीय में वह कुछ सीमा तक सार्थक है। 'पतंग' शीर्षक कविता इस प्रभाव/चेतना का उदाहरण है–

करते थे सफाई

पहाड़ी के नीचे वाली कलारी के पास

अब ऐसे में क्या करता कल्लू

उसने तुरंत अपनी

पगड़ी उतार

जजमान के पावों से लगायी

फिर गले मिले

दोनों समधी

देख रामा ने दूर से

डलिया झाड़ू वहीं रख

पहुँची पास

घूंघट किया समधी को

पूछा बेटी–जमाई

की कुसलात

फिर कालरी के पास चट्टान पर बैठे तीनों

जने

बैठ गये आप–पास दोनों घर, दोनों गांव

दोनों परिवार'

x x x x x 'अतिथि कथा'

भाषा की आत्मीयता का ऐसा सहज संसार कम कवि रच पा रहे हैं। ध्यातव्य है कि यह भाषा बोध युवा कवियों के यहां ज्यादा सुरक्षित है जो किसी–न–किसी रूप में निरंतर सामने आ रहा है।

साठोत्तरी कवियों की काव्यभाषा समकालीन काव्य–भाषा के संदर्भ में बेहद मौजू है। इन कवियों की भाषा जनवादी परंपरा का प्रभाव व्यापक रूप में पड़ा। खासतौर पर रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदाननाथ सिंह की काव्य–भाषा की बनावट और उसकी ताकत ध्यातव्य है ये कवि मध्यवर्ग के प्रतिनिधि हैं। आजादी के बाद जिस मोहभंग का शिकार पीढ़ी दर पीढ़ी हुई उसे अपनी आवाज इन कवियों ने दी। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन कवियों ने आगे के दशकों (लगभग 21वीं शता0 के आरंभ तक) के कवियों विशेषकर अरुण कमल, ज्ञानेन्द्र पति,

राजेश जोशी, मंगलेश डबराल आदि पर तो जनवादी काव्य भाषा का व्यापक प्रभाव दिखाया पड़ता है।

इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डेय की मान्यता प्रासंगिक है कि ''समकालीन रचनाकारों को समृद्ध भाषा–परंपरा मिली है, जिसे सँवारने–सजाने का काम मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध ने किया, निराला ने उसे नयी दिशा दी। मुंशी प्रेमचन्द्र यद्यपि गद्य–विद्या के रचनाकार थे लेकिन भाषा की सर्जनात्मक शक्ति को निखारने में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। पंत की सूक्ष्म शब्द –चेतना की सराहना की गयी है, अज्ञेय ने शब्द प्रयोग में तद्भव की प्रवृति को प्रतिष्ठित किया, मुक्तिबोध ने बोलचाल की शब्दावली को काव्यात्मक ऊँचाइयो तक पहँचाया। नागार्जुन, त्रिलोचन शमशेर आदि अन्य रचनाकारों ने भाषिक संरचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया।''[126]

समकालीन कवियों ने कुछ विशिष्ट भाषिक प्रयोग, जिन पर जनवादी कवियों का प्रभाव व्याप्त है, प्रस्तुत है–

'सुख को सह जाने की थकन
कन–कन तुम्हें जीकर
तिरछी धूप का सिंकाव
अकारण उचटाव
x x x x x
अगहन की कोहरीली भोर ?
निंदियारा, सुकुँवार, खटिया पर लेटे–लेटे,
x x x x x (सपना अभी भी'–धर्मवीर भारती)
दिन बार–बार फिर वही कुरै देता हैं ऊबी हुई ताजगी।'' [127]
x x x x x ('एक समय था'–रघुवीर सहाय)

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जनवादी कविता की भाषा विशेषकर नागार्जुन की भाषा का प्रभाव बाद की पीढ़ी के कवियों पर पड़ा। यह प्रभाव अनेक रूपों में सामने आता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की जनवादी कविता जो भारतीय सहित्य में जनोन्मुखी संवेदना की सशक्त प्रतीक है, उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति परंपरा का प्रभाव आगे के युगों में भी विस्तृत हुआ। इस युग

के प्रतिनिधि कवि नागार्जुन, जिन्हौने निराला की तरह भाषा के नये रूपों की खोज की और भाषा में लोक–जीवन की सरस प्रस्तुति की, उसी संवेदना और अभिव्यक्ति प्रणाली का प्रभाव बाद के कवियों पर विशेष रूप से पड़ा। उनमें भी समकालीन और अनेक युवा कवि इस प्रभाव से युक्त दिखायी पड़ते हैं। यह प्रभाव –निरूपण आज भी पर्यवेक्षण की गहन मांग करता है।

संदर्भ सूची

1. नागार्जुन की कविता (डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव) पृ. 83
2. भारत का इतिहास (अंतोनोवा बोगर्द तथा कोतात्स्की) पृ. 548–551
3. वही पृ. 552
4. वही पृ. 556
5. वही पृ. 570
6. वही पृ. 573
7. वही पृ. 576
8. वही पृ. 593
9. वही पृ. 607
10. वही पृ. 609
11. वही पृ. 614
12. वही पृ. 619
13. वही पृ. 620
14. वही पृ. 620
15. वही पृ. 624–635
16. वही पृ. 656
17. वही पृ. 729
18. हिन्दी कविता और आधुनिकता पृ. 65–66
19. जन–कवि पृ. 42
20. नागार्जुन पृ. 56
21. वही पृ. 274
22. वही पृ. 258
23. वही पृ. 11
24. वही पृ. 27
25. वही पृ. 70
26. वही पृ. 43
27. वही पृ. 46
28. वही पृ. 68
29. वही पृ. 221
30. वही पृ. 44
31. वही पृ. 280

32. वही — पृ. 28
33. वही — पृ. 300
34. वही — पृ. 96–97
35. वही — पृ. 97
36. वही — पृ. 25
37. वही — पृ. 250–251
38. वही — पृ. 290
39. जनकवि — पृ. 40
40. वही — पृ. 40–41
41. वही — पृ. 41
42. नागार्जुन–संपादक सुरेश चन्द्र त्यागी — पृ. 83
43. नागार्जुनः चुनी हुई रचनाएं — पृ. 197
44. वही — पृ. 215
45. वही — पृ. 216
46. वही — पृ. 134
47. वही — पृ. 133
48. वही — पृ. 202
49. समकालीन कविता का यथार्थ — पृ. 28
50. संतरगें पंखों वालीः नागार्जुन — पृ. 32
51. हजार–हजार बांहों वाली — पृ. 54
52. सममकालीन कविता का यथार्थ — पृ. 32
53. नागार्जुनः चुनी हुई रचनाएँ — पृ. 24
54. वही — पृ. 24
56. वही — पृ. 30
56. वही — पृ. 30
57. वही — पृ. 33
58. वही — पृ. 52
59. वही — पृ. 77
60. वही — पृ. 73
61. वही — पृ. 99
62. वही — पृ. 151
63. वही — पृ. 161

64. वही पृ. 170
65. वही पृ. 172
66. वही पृ. 178
67. वही पृ. 200
68. वही पृ. 200
69. वही पृ. 267
70. वही पृ. 268
71. वही पृ. 270
72. वही पृ. 270
73. वही पृ. 271
74. वही पृ. 272
75. वही पृ. 273
76. वही पृ. 274
77. वही पृ. 91
78. वही पृ. 19
79. वही पृ. 23
80. वही पृ. 90
81. वही पृ. 152
82. वही पृ. 157
83. वही पृ. 158
84. वही पृ. 238
85. वही पृ. 243
86. वही पृ. 249
87. वही पृ. 40
88. वही पृ. 43
89. वही पृ. 47
90. वही पृ. 53
91. वही पृ. 62
92. वही पृ. 76
93. वही पृ. 82
94. वही पृ. 97
95. वही पृ. 114

96. वही पृ. 134
97. वही पृ. 210
98. वही पृ. 230
99. वही पृ. 17
100 वही पृ. 59
101 वही पृ. 59
102 वही पृ. 121
103 वही पृ. 136
104 वही पृ. 149
105 वही पृ. 158
106 वही पृ. 187
107 वही पृ. 246
108 वही पृ. 276
109 वही पृ. 206
110 समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना पृ. 6
111 वही पृ. 7
112 वही पृ. 10
113 वही पृ. 10
114 वही पृ. 11
115 नागार्जुन ग्रंथावली पृ. 145
116 समकालीन हिन्दी कविता और संवेदना पृ. 13
117 वही पृ. 14
118 वही पृ. 14–15
119 वही पृ. 27–28
120 वही पृ. 41
121 वही पृ. 42
122 वही पृ. 43
123 वही पृ. 44
124 वही पृ. 107
125 आग हर चीज में बतायी गयी थी (चन्द्रकांत देवताले) पृ. 85–87
126 समकालीन काव्य पृ. 36
127 वही पृ. 37

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

उपसंहार एवम् परिलब्धि

जनवादी कविता और नागार्जुन : समग्र मूल्यांकन

मूल्यांकन की आवश्यकता :

भारतीय साहित्य की परंपरा में जनवादी कविता की उपलब्धियाँ प्रासंगिक हैं। जनवादी सहित्य सीधे मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़ा है। यह सहित्य यथास्थितिवाद का विरोधी है। तथा जन–गण को शोषित और उत्पीड़ित करने वाली व्यवस्था को समाप्त करने वाली क्रान्ति का पक्षधर है। इस क्रान्ति के अगुवा कवियों में कवि नागार्जुन की संवेदना सर्वोच्च है। नागार्जुन आधुनिक हिन्दी कविता के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपनी क्रान्तिकारी चेतना से समाज की दिशा को परिवर्तित करने का प्रयास किया। ध्यातव्य है कि निराला और नागार्जुन दो अकेले ऐसे युगकवि है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज और जीवन की दिशा को बदलने का प्रयास किया। इस प्रयास में वे युगकवि सिद्ध होते हैं।

आधुनिक युग के समीक्षकों ने जनवादी साहित्य को नये सिरे से मूल्यांकन की आवश्यकता को समझने का प्रयास किया है। उदाहरणस्वरूप डॉ0 मैनेजर पाण्डेय ने 'शब्द और कर्म' नामक अपनी समीक्षात्मक कृति के अंतिम अध्याय 'शब्द और कर्म' में एक हिन्दी लेखक को उद्धत किया है। उद्धरण इस प्रकार है– "साहित्य शब्द है, कोरा शब्द नहीं, अर्थ पूर्ण शब्द है। लेकिन अंततः वह शब्द है। क्रान्ति शब्द नहीं कर्म है। शब्द और कर्म दो अलग–अलग चीजें हैं।"[1]

डॉ0 पाण्डेय ने इस टिप्पणी पर लिखा है। कि "जब भी साहित्य में सामाजिक परिवर्तन का स्वर उभरता है, साहित्य का जनवादी स्वरूप विकसित होने लगता है।, सहित्य में जनता की आवाज सुनाई पड़ने लगती है, शब्द और कर्म की दूरी घटने लगती है, क्रान्तिकारी साहित्य का विकास होता है, तो शब्द और कर्म की एकता से चिंतित साहित्यकार तरह–तरह के नये नारों और सिद्धान्तों के सहारे उस एकता को खण्डित करने की कोशिश करने लगते है।"[2]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डॉ0 मैनेजर पाण्डेय जनवादी –साहित्य

में शब्द और कर्म की एकता के पक्षधर है। डॉ. पाण्डेय, मार्क्सवादी विचारधारा के पोषक और समर्थक हैं। समकालीन आलोचना के संदर्भ में उनका मत यह है कि " कई बार जनता की राजनीतिक, सामाजिक, आकांक्षाऐं सांस्कृतिक रूपों में व्यक्त होती हैं, इसलिये आलोचना को जनता की राजनीतिक आकांक्षाओं को पहचानने और संस्कृति के विभिन्न रूपों में उनकी अभिव्यक्ति को देखने–परखने का प्रयत्न करना होगा। जनता के राजनीतिक, सामाजिक संघर्षों की प्रगति और जनवादी संस्कृति तथा साहित्य की प्रगति को एक दूसरे से जोड़ कर देखने वाली आलोचना ही वर्तमान दौर के विचारधारात्मक संघर्ष में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकती है।[3]

इसी पुस्तक के एक अन्य लेख में डॉ0 पाण्डेय ने 'जनवादी या प्रगतिशीलता के पर्याय के रूप में 'वाम' शब्द के संदर्भ में रेडिकल या मूलगामी प्रवृत्तियों की चर्चा हुई है और समाजवादी कविता के संग्रह भी निकले हैं, लेकिन 'वाम' कला या 'वाम' साहित्य की चर्चा अभी कहीं देखने में नहीं आयी हैं। 'वाम' या 'दक्षिण' का प्रयोग व्यावहारिक राजनीति में, विशेषतः दलगत राजनीति के संदर्भ में होता है।[4]

निष्कर्ष यह है कि जनवादी साहित्य (जिसमें जनवादी कविता भी सम्मिलित है।) को कुछ लोग वामपंथी साहित्य मानते हैं, और इस प्रकार जनवादी साहित्य को लेकर कभी–कभी भ्रमपूर्ण स्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं। इन्हीं भ्रमपूर्ण स्थितियों का, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय ने निराकरण करने का प्रयास किया है। इस प्रकार जनवादी साहित्य का वास्तविक स्वरूप क्या है ? इसके कवियों की मूल संवेदना का स्वरूप क्या है ? यह मूल्यकंन की अपेक्षा करता है।

मूल्यांकन के आधार :

समकालीन जनवादी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में जनवादी कविता के मूल्यांकन का आधार क्या हो, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस संदर्भ में प्रायः मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव की दिशा क्या है ? या दूसरे शब्दों में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव की दिशा क्या है ? या दूसरे शब्दों में मार्क्सवादी चिंतन ने कला और साहित्य को किस रूप में प्रभावित किया है यह महत्वपूर्ण है। इस प्रकरण पर विचार करना इसलिये आवश्यक है कि नागार्जुन की काव्य –चेतना पर मार्क्स की विचारधारा और चिंतन का व्यापक प्रभाव माना गया है। इस पूरे प्रकरण पर विचार करने के लिये माओ की विचारधारा को समझना जरूरी है। माओ–से–तुंग द्वारा 2 मई 1942 को 'साहित्य

और कला के संबध में येनान–गोष्ठी के समक्ष 'दिये गये भाषण' में प्रकट विचारधारा का चिंतन/विश्लेषण जरूरी है इस भाषण का मुख्य विषय जापानी साम्राज्यवाद का विरोध, चीन की जनता की मुक्ति और जनगण तथा लेखकों और साहित्यकारों की एकता है। माओ के भाषण का सारांश इस प्रकार है–

1. सामंती, संस्कृति और दलाल पूँजीवादी संस्कृति, ये दोनों साम्राज्यवाद की चेरियाँ हैं।

2. जनमुक्ति के लिये जनता, लेखकों तथा कलाकारों का एक जुट होना आवश्यक है।

3. लेखकों के दायित्व और दृष्टिकोण के संदर्भ में माओ के विचार–

   क. लेखकों द्वारा जनविरोधी कार्यक्रमों का विरोध एवं पर्दाफ़ाश करना।

   ख. जनता को क्रान्तिकारी विचारों एवं कार्यक्रमों के समर्थन के लिये शिक्षित करना। इसके लिये आवश्यक है कि लेखक एवं कलाकार जनता को भलीभाँति समझे तथा जनता की सजीव एवं समृद्ध भाषा से अच्छी तरह परिचित हो लें क्योंकि बहुत से लेखक और कलाकार खोखला जीवन व्यतीत करते हैं और उन्हें जनता का अत्यन्त निकट से ज्ञान नहीं होता है।

4. लेखक में जन–शैली का तात्पर्य यह है कि लेखकों और कलाकारों के विचार, मजदूर, किसान और सैनिक जन–गण के विचारों से एकाकार होने चाहिये। जनता की भाषा को समझे बिना साहित्यिक सृजनशीलता की बात करना निरर्थक है।

5. साहित्य और कला आखिर किसके लिये, इस प्रश्न का उत्तर देते हुये माओ ने महान् क्रान्तिकारी लेनिन के सन् 1905 के एक वक्तव्य को उद्धृत किया है। "हमारे साहित्य एवं कला को लाखों –करोड़ों मेहनतकश लोगों की सेवा करनी चाहिये।"

6. लेनिन के आदर्शो के आधार पर माओ ने साहित्य की तीन कोटियों का निर्धारण किया –

   क. सामंती कला एवं सहित्य – जमींदार वर्ग के लिए होता है,

   ख. पूँजीवादी कला एवं सहित्य– पूँजीवादी वर्ग ,, ,, ,, ,, ,,

ग. जनवादी कला एवं साहित्य– विशाल जन समुदाय अर्थात् सर्वहारा के लिये होता है।

माओ की व्यवस्था के अनुसार मजदूर, किसान, सैनिक और शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग के लोग सर्वहारा के अंतर्गत आते हैं। बुद्धिजीवी भी निम्न पूँजीपति वर्ग के अंतर्गत ही आते हैं। माओ के अनुसार साहित्य निम्न पूँजीपति वर्ग के हितों के अनुरूप नहीं होना चाहिये अपितु विशाल जन–समुदाय अर्थात् किसानों और मजदूरों के हितों के अनुरूप होना चाहिये।

7. जनवादी सहित्य की विशेषतायें, उसके स्वरूप एवं आदर्शों के सदंर्भ में माओ ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं –

जनता का जीवन साहित्य के लिये कच्चामाल के समान होता है, जो अनगढ़ होते हुये भी अत्यन्त प्राणवान् और समृद्ध होता है, इसलिये कलाकारों और साहित्यकारों को जनता के जीवन से सीधे जुड़ना चाहिये। जनता का जीवन साहित्य और कला का अनंत एवं एकमात्र स्रोत है।

इस संदर्भ में माओ ने यह भी कहा है कि "हमें किसी भी हालत में प्राचीन रचनाकारों और विदेशियों की विरासत को हरगिज़ ठुकराना नहीं चाहिये, अथवा उसे उदाहरण के रूप में इस्तेमाल करने में हरगिज़ आना–कानी नहीं करनी चाहिये। चाहे वे रचनाऐं सामंती वर्ग अथवा पूँजीपति वर्ग ही क्यों न हो।"[5]

कदाचित् माओ का उद्देश्य यह है कि लेखक को अतीत और परंपरा के परिप्रेक्ष्य में अपने को जाँचते–परखते रहना चाहिये।

7. साहित्य और कलाएँ आवश्यक हैं, क्योंकि "साहित्यिक रचनाओं और कलाकृतियों में प्रतिबिंबित होने वाला मानव–जीवन अपेक्षाकृत ऊँचे धरातल पर, अपेक्षाकृत तीव्र, अधिक केंद्रित, अधिक विशिष्टतापूर्ण और आदर्श के निकट होता है xxx X xxx क्रन्तिकारी कला साहित्य को चाहिये कि वह वास्तविक जीवन से ही विभिन्न प्रकार के पात्रों का निर्माण करे तथा इतिहास को आग बढ़ाने में आम जनता की मदद करे।"[6] जनवादी लेखक और कलाकार "ऐसी रचनाओं का सृजन करते हैं जो जनता को जागृत करती हैं, उसमें उत्साह भर देती हैं तथा उसे एकताबद्ध हो जाने और अपने आस–पास के वातावरण का रूपान्तर कर

देने हेतु संघर्ष करने के लिये प्रेरित करती हैं।'' [7]

9. माओ ने 'कला कला के लिये' सिद्धान्त का खण्डन किया है। उनकी दृष्टि में '' सर्वहारा –वर्ग का कला साहित्य, समूचे सर्वहारा क्रान्तिकार्य का एक अंग है।[8]

1.0 इस प्रकार माओ के विचार में साहित्य, क्रान्ति का एक अंग हैं तथा ''कला और साहित्य राजनीति के मातहत होते हैं, लेकिन वे खुद भी राजनीति पर अपना गहरा प्रभाव डालते हैं।''[9] राजनीति से माओ का आशय सर्वहारा वर्ग के प्रति राजनीति से है।

11. माओ ने समाजवादी यथार्थवाद का पक्ष लिया है और राष्ट्र–विरोधी, विज्ञान–विरोधी, और जनविरोधी साहित्य की निंदा की है।

12. जनवादी साहित्य का मुख्य कार्य उन तमाम अंधकारपूर्ण शक्तियाँ का पर्दाफाश करना है जो जनता को नुकसान पहुँचाती हैं। माओ ने व्यंग्य प्रधान साहित्य का समर्थन किया है, ऐसा मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये। यह ध्यान में रखना चाहिये कि साहित्य और कला के संबंध में माओ की विचारधारा का संदर्भ हमारे देश के संदर्भों से नितांत भिन्न है। प्रसंगतः यह भी उल्लेख है कि मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक और जनवाादी धारा के अग्रणी रचनाकार नागार्जुन ने सन् 1962 के चीनी आक्रमण के बाद कम्युनिष्ट पार्टी की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था। उन्होंने जय प्रकाश नारायण की 'संपूर्ण क्रान्ति' का समर्थक किया, क्रान्ति के समर्थन में वे जेल भी गये, परंतु माओ तथा जयप्रकाश की संपूर्ण क्रान्ति की उन्होंने कटु आलोचना भी की है। इस संदर्भ में ''खिचड़ी विप्लव देखा हमने'' शीर्षक उनकी रचना द्रष्टव्य है।

नागार्जुन राष्ट्रीय मार्क्सवाद के समर्थक हैं। कहना यह है कि मार्क्स, लेनिन और माओ के विचारों और आदर्शों को हमें अपने देश और समाज के संदर्भ में ढ़ालना चाहिये, तभी यह फलप्रद हो सकता है। नागार्जुन ने अपनी रचनाओं के द्वारा यही प्रयास किया। नागार्जुन ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मार्क्स, लेनिन, माओ आदि के विचारों के समन्वित स्वरूप को आत्मसात् किया और भारतीय परिवेश एवं संदर्भो के अनुकूल उनका प्रयोग करते हुए साहित्य कर्म संपादित किया।

यह विदित तथ्य है कि इन विचारकों और चिंतकों ने सर्वहारा वर्ग और आम आदमी को जीवन की जिस संवेदना को साहित्य में स्थापित करने की वकालत की, शोषित और पीड़ित जनता की मुक्ति के लिये जो आदर्श स्थापित किया, जनवादी कवियों (नागार्जुन आदि) ने उसे प्रतिपादित किया, इस पूरी व्यवस्था में नागार्जुन ने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया, वह यह कि उन्होंने भारतीय परंपराओं की मर्यादा को पहचाना, भारतीय लोक –जीवन की संवेदना को अनुभूत किया, आम आदमी (जिसकी परिधि में किसान, मजदूर, पीड़ित, शोषित आदि आते हैं) की तकलीफ और दर्द को पहचाना और सब कुछ को समेटते हुये एक विशाल भारतीय बिंब रचा जिसमें अपनी माटी की महक भी मिलती है, अपने लोगों का दर्द मिलता है, यथार्थ का विश्लेषण भी मिलता है और सब कुछ को सहने की शक्ति भी। प्राचीन और अर्वाचीन आदि के संतुलन और समन्वय को साहित्य के माध्यम से सही दिशा देना रचनाकार का लक्ष्य है। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निम्नलिखित अभिमत नितांत प्रासंगिक प्रतीत होता है –

"कर्म सौंदर्य के जिस स्वरूप पर मुग्ध होना मनुष्य के लिये स्वाभाविक है और जिसका विधान कवि–परंपरा बराबर करती चली आ रही है, उसके प्रति उपेक्षा प्रकट करने और कर्म–सौंदर्य के एक–दूसरे पक्ष में ही –केवल प्रेम और भातृभाव के प्रदर्शन और आचरण में ही काव्य का उत्कर्ष मानने का जो एक नया फैशन टॉलस्टाय के समय से चला है, वह एक देशीय है। दीन और असहाय जनता को निरंतर पीड़ा पहुँचाते चले जाने वाले क्रूर आततायियों को उपदेश देने, उनसे दया की भिक्षा माँगने और प्रेम जताने तथा उनकी सेवा शुश्रुषा करने में ही कर्तव्य की सीमा नहीं मानी जा सकती, कर्म क्षेत्र का एक मात्र सौंदर्य नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण दो पक्ष हैं, और बराबर रहेंगे। काव्य–कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौंदर्य के विलास में दिखायी पड़ती है।"[10]

नागार्जुन की रचनाओं में यह समन्वय सर्वत्र दिखायी पड़ता है।

उपलब्धियाँ -वैचारिक क्रान्ति नवीन मूल्यों एवं आदर्शो की स्थापना

जनवादी कविता और केवल जनवादी कविता ही नहीं, किसी कालखण्ड में लिखे जाने वाले साहित्य की सीमाओं का मूल्यांकन करना, खतरे से खाली नहीं

होता। यह कार्य वस्तुतः सुधी समीक्षकों का है, किंतु इतना विनम्र निवेदन कर देना उचित है कि नागार्जुन ने बिना किसी वाद या विचारधारा को अपनाए हुये केवल मानव–सृष्टि के कल्याणार्थ सब कुछ किया। अतः यह भ्रम निराधार है कि नागार्जुन दल विशेष की नीतियों और सिद्धान्तों के पक्षधर हैं। साहित्य अपने आप में महान् होता है। साहित्य का विषय मनुष्य है और मनुष्य से बढ़कर ईश्वर की सृष्टि में कुछ भी नहीं है। इसलिये जो साहित्य इस दिशा में सक्रिय है, उसकी सफलता और श्रेष्ठता निर्विवाद है। जनवादी कविता और नागार्जुन जैसे कवियों की संवेदना में अदना आदमी है। अदना आदमी के दुख–दर्द का चित्रण, उसके दुख–दर्द का निराकरण के लिये सत्य मार्ग अवलम्बन नागार्जुन के साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है उनकी कविता ने निश्चय की समाज को झकझोर दिया है, नये आदर्श उपस्थित किये हैं, यह उसकी सफलता का रहस्य है।

क्षण भंगुर कविता में समय कैसे व्यंग्य करता है। और नारे लगाता है।? क्लासिक्स क्या होता है ? सामयिकता रचना में कैसे कालजयी होती है ? भाव शब्द –संपदा के स्रोत कहाँ–कहाँ होते है ? संवेदन, संपृक्ति, अतीत, वर्तमान, राग, विद्रोह, प्रकृति, गाँव आधुनिकता किस बला का नाम है ? कवि और कविता का व्यक्तित्व किन सक्रियताओं के चलते अभिन्न होता है ?– यह सब नदी की तरह बहती, उफनती, कूल–किनारों को सरसब्ज करती नागार्जुन की कविता बेहतर बता सकती है।

नागार्जुन व्यापक अर्थों में व्यक्ति नहीं हैं, एक समूचा जन–चरित्र हैं। किताबी लोग दबी जुबान से–और कई बार खुले तौर पर भी –नागार्जुन का उपहास भले करें किंतु नागार्जुन की संवेदना अत्यंत प्रासंगिक है नागार्जुन इसलिये नागार्जुन हैं कि वे जनता के विवेक का ही नहीं उसके आवेशों का भी, उसकी खूबियों का ही नहीं, कमजोरियों का भी, शाश्वत का ही नहीं तत्काल का भी, शोषण का ही नहीं राग और सौंदर्य का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। कई बार वे इन अभिजात्यों की प्रशंसा और आदर भी करते हैं जिन्होंने जीवन के ऊँचे मानक काय किये हैं और कला, सौदर्य तथा विचारों को समृद्धि दी है।

लगभग 40–50 वर्षों तक हिंदुस्तान की जो राजनीति रही, समाज की, गरीब आदमी की जो हालत रही, जितनी तरह के अपघात आम आदमी के साथ हुए और दुनिया के नक्शे पर भी जो ऊधमें मचाई गई वे सब या उनमें से अधिकांश नागार्जुन

की कविताओं में एक चित्रशाला की तरह देखी जा सकती हैं चित्रों के मुर्दाखाने की तरह नहीं, साक्षात्कार की चेतना से संपन्न दस्तावेजों की तरह। इनमें नागार्जुन की तकलीफ, घृणा, क्रोध, उत्तेजना, और बदलाव की तीव्र आकांक्षा एक अग्नि–पिंड की तरह दहक रही है।

जहाँ तक कवि नागार्जुन की दल– बद्धता का प्रश्न है तो वह किसी साँचे में ढलने वाले नहीं है। नागर्जुन –हर तरह की चौखट से इन्कार का नाम है। इसलिये उन्हें किसी खेमें में बांधने की जरूरत नहीं है। वे दरअसल बौद्ध नहीं हैं, करूणा द्रवित मनुष्य हैं, वे कम्युनिष्ट नहीं हैं, प्रगतिशील हैं, वे ज्ञान और संस्कृति के सार्थवाह नहीं हैं, लोकाकांक्षा के सहचर हैं। शायद इसलिये नागार्जुन का कर्म–क्षेत्र और काव्य–क्षेत्र परिपाटी जनित दृष्टि के लिये अनेक तरह के बेमेलों, विरोधों और करणीय–अकरणीयों का तालमेल है।

नागार्जुन की वास्तविक प्रकृति को उद्‌धाटित करते हुये प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है – " पहले भी एक ऐसा कवि और आदमी हुआ था– कबीर। सारे धार्मिक पाखण्डों और आडंबरों की भर्त्सना करने वाले कबीर, वर्णकट्‌टर रामानंद के शिष्य होने को क्यों व्याकुल हुए ? और सीढियों के अंधेरे में सिर पर पैर रखने से क्यों कृतकृत्य हुए ? धर्माचारों की खिल्ली उड़ाते हुये क्यों परम आध्यात्मिक हुए ? शब्द और पोथी को बेकार मानते हुये भी औपनिषदिक वेदांत के मध्यकालीन प्रवक्ता प्रतीत हुऐ ? फक्कड़ कबीर की भाषा, चिंता और कहन में बहुत सा बेमेल मिला हुआ है क्योंकि वे बहुश्रुत थे, संत और लोक–समागम करते थे, आँखिन देखी कहते थे। नागार्जुन भी बहु पठित हैं, लोक–जीवन से सीधे जुंड़े हुये हैं। दोनों लोक साक्षात्कार को सिद्धान्तों से गलत नहीं करते। सिद्धान्तों और जुड़ावों से मिलने वाले लाभों की वजह से सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। इसलिये अवसर पंडितों की समझ से यह बात बाहर है कि नागार्जुन का 'स्टैंड' क्या है।"[11]

अंतत : पिछले पृष्ठों में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत जनवादी कविता की परंपरा और नागार्जुन के काव्य का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। नागार्जुन की काव्य–चेतना का एक विशेष स्वरूप है, जिसका मूल मार्क्सवादी विचारधारा, लेनिन एवं रूस की क्रान्ति एवं माओ के विचारो तथा भारतीय परिवेश में ढूढ़ा जा सकता है।

नागार्जुन की कविता के केन्द्र में जनमुक्ति की अवधारणा है जनवाद मूलतः एक विचारधारा या आइडियोलॉजी के रूप में हिंदी के समकालीन लेखन में विकसित होती प्रतीत हुई है। जनवादी कविता अपने व्यवस्था–विरोध एवं विद्रोही तेवर तथा व्यंग्यात्मकता के लिये प्रसिद्ध है। नागार्जुन की कविता इन्हीं संवेदनाओं की वाहक है इस संवेदना की अभिव्यक्ति के लिये, आम आदमी की पीड़ा को वाणी देने के लिये नागार्जुन ने जिस भाषा को अपनाया वह अपने आप में एक नये काव्य–भाषा युग की सूत्रपात करती है। इसका व्यापक प्रभाव बाद के कवियों पर भी पड़ा। लगभग 20वीं सदी के अंत तक और युवा कवियों की कविता पर नागार्जुन की काव्य–चेतना का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है, जिसका विश्लेषण पिछले अध्यायों में किया गया है।

अंततः यही कहा जा सकता है कि जनवादी कविता की परंपरा को समृद्ध करने में नागार्जुन की चेतना का प्रभाव विशिष्ट है। यह प्रभाव परिवर्ती पीढ़ी पर भी कई रूपों में दृष्टव्य है जिसका मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक और अपेक्षाणीय है क्योंकि कवि स्वंय घोषणा करता है–

प्रतिबद्ध हूँ, जी हां प्रतिबद्ध हूँ –
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
सँकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ.......
अविवेकी भीड़ की भेड़िया धसान के खिलाफ......
अंध बधिर–'व्यक्तियों ' को सही राह बतलाने के लिये ....
अपने आपको भी व्यामोह से बारंबार उबारने के खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हां शत प्रतिशत प्रतिबद्ध हूँ
x x x
सम्बद्ध हूँ, जी हां संबद्ध हूँ– सचर अचर सृष्टि से ...
x x x
आबद्ध हूँ, जी हां आबद्ध हूँ स्वजन परिजन के प्यार की डोर में .....
x x x x x (प्रतिबद्ध हूँ)[12]

यह कविता स्वयं में नागार्जुन के व्यापक आयामों की ओर इशारा करती है। यह सब उनकी अपनी स्वीकारोक्तियाँ या औपचारिक बयान नहीं है, उनके व्यक्तित्व और रचना का भी सत्य है।

xxx xxx xxx xxx xxx xxx xxx xxx xxx xxx xxx

संदर्भ सूची

1.	शब्द और कर्म, डॉ. मैनेजर पाण्डेय	पृ. 183
2.	वही	पृ.188
3.	वही	पृ.70
4.	वही	पृ.94–95
5.	माओत्से–तुंग, चुनी हुई कृतियाँ–अनु0 राम आसरे	पृ.89–130
6.	वही	पृ.106
7.	वही	पृ.107–108
8.	वही	पृ.108
9.	वही	पृ. 114
10.	वही	पृ.115
11.	वही	पृ.116
12.	नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ	पृ.214

संदर्भ ग्रंथ सूची

उपजीव्य ग्रंथ

काव्य संग्रहः,

1. खिचड़ी विप्लव देखा हमने
2. तालाब की मछलियां
3. तुमने कहा था
4. पुरानी जूतियां का कोरस
5. युगधारा
6. भष्मांकुर
7. पत्रहीन नग्नगाछ
8. सतरंगे पंखो वाली
9. हजार–हजार बांहो वाली
10. नागार्जुन रचनावाली
11. नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ

उपस्कारक ग्रंथ

1. लम्बी कविताओं का रचना विधान, सम्पादक– नरेन्द्र मोहन
2. सातवें दशक की कविता का शब्द विधान– डॉ. सुधा राजे
3. समकालीन कविता की भूमिका– डॉ. विशम्भर नाथ उपाध्याय
4. समकालीन साहित्य और सिद्धान्त– डॉ. विशम्भर नाथ उपाध्याय
5. फिलहाल– डॉ. अशोक वाजपेयी
6. आलोचना और आलोचना– डॉ. इन्द्रनाथ गदान
7. आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचार धारा– डॉ. उर्मिला जैन
8. कवि कर्म और काव्य भाषा– डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव
9. नई कविता, नन्द दुलारे वाजपेयी
10. समकालीन कविता की भूमिका– डॉ. मंजुल उपाध्याय
11. आधुनिक परिवेश और नवलेखन– डॉ. शिव प्रसाद सिंह
12. नागार्जुन– डॉ. सुरेश चन्द्र त्यागी

13. समकालीन कविता में व्यंग्य– डॉ. हरिनारायण मिश्र
14. नई कविता और अस्तित्ववाद– डॉ. रामविलास शर्मा
15. सरोज स्मृति– डॉ. निराला
16. काव्य संकलन– गिरिजा शंकर माथुर
17. काव्य संकलन– डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन'
18. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर–
19. चिन्तमन मीमांसा– डॉ. दिनेश चन्द्र द्विवेदी।
20. चिन्तन का तात्विक विवेचन– डॉ. एन. डी. समाधिया
21. भारत में मार्क्सवाद– विष्णु गोपाल वर्मा
22. हिन्दी काव्य में मार्क्सवाद– विष्णु गोवाल वर्मा
23. साहित्य दर्पण
24. सम्मेलन पत्रिका– डॉ. विजय कुमार शुक्ल
25. नागार्जुन की कविता– अजय तिवारी
26. पहल पुस्तिका– विष्णु चन्द्र शर्मा
27. हिन्दी की प्रगतिशील कविता– डॉ. रणजीत
28. नागार्जुन– व्यक्तित्व और कृतित्व– डॉ. प्रकाश चन्द्र भट्ट
29. कलम– करण सिंह चौहान
30 .अभिप्राय– शम्भू नाथ
31. समकालीन हिन्दी कविता– विश्वनाथ तिवारी
32. कवितान्तर (दूर्वांचल) अज्ञेय
33. कविता के नये प्रतिमान– डॉ. नामवर सिंह
34. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ– नामवर सिंह
35. हिन्दी के प्रमुख कवि– रचना और शिल्प– डॉ. अरविन्द पाण्डेय
36. नागार्जुनः एक चिन्तन– देवराज
37. भारत की आजादी– सुमति अैयर
38. समीक्षा दर्शन– डॉ. एन. डी. समाधिया
39. नागार्जुन की कविता– डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव,
40 भारत का इतिहास– अंतोनोवा, बोगर्द, लेनिन तथा कोतात्स्की
41. हिन्दी कविता और आधुनिकाता– डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डेय

42. जनकवि– विजय बहादुर सिंह
43. समकालीन कविता का यर्थाथ– डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव,
44. समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना – डॉ. गोविन्द रजनीश
45. आठवे दशक की हिन्दी कविता में समसामयिक बोध– डॉ. नामदेव उत्तकर
46. काव्य संकलन– चन्द्रकान्त देवताले
47. समकालीन काव्य संपादक– डॉ. सुरेश चन्द्र पाण्डेय
48. शब्द और कर्म– डॉ. मैनेजर पाण्डेय
49. माओत्से तुंग, चुनी हुई कृतियाँ अनुवादक राम आसरे
50. चिंतामणि, भाग–1, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(स) पत्र पत्रिकाए

1. सम्मेलन पत्रिका
2. हंस
3. सरस्वती
4. धर्मयुग
5. पहल
6. उत्तरार्द्ध
7. उत्तर गाथा
8. शोध धारा
9. जनसत्ता
10. दैनिक आज
11. दैनिक जागरण
12. विश्व–बन्धु